समाजक्रान्ति

और

हिन्दुस्थान

मूल लेखक

डा० गजानन श्रीपत खैर

काशी विद्यापीठ, बनारस

प्रथम संस्करण)
१०००

१९९३

{ मूल्य अजिल्दका
(१॥)

प्रकाशक—
मन्त्री श्रीकाशी विद्यापीठ
बनारस छाउनी

मुद्रक—
माधव विष्णु पराड़कर
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी
६४६९-९३

प्रस्तावना

गत अगस्त मासके अन्तमें इस ग्रन्थके लेखक श्री खेर जीका एक पत्र मिला। उसमें उन्होंने अपना परिचय दिया; काशीमें, दिसम्बर सन् १९३० में, मेरे गृहमें अतिथि रहनेकी याद दिलाई; सन् १९३१ में अमेरिका और यूरोपमें अपने भ्रमणकी चर्चा की; वहाँ पाये अनुभवोंका, मराठीमें लिखकर, पुस्तकके रूपमें छपानेका हाल बतलाया; तथा यह लिखा कि काशी विद्यापीठकी ओरसे उसका हिन्दी अनुवाद प्रकाश किया जा रहा है, और आकांक्षा प्रकट की कि मैं उसके लिये प्रस्तावना लिख दूँ। इसीके आसपास काशी विद्यापीठके प्रकाशन विभागसे पुस्तकके छपे फर्मोंकी एक प्रति भी मेरे पास आई।

इसके बाद ही मुझको असेम्बलीके कामसे शिमला जाना पड़ा। वहाँ अवकाश भी नहीं, बीमार भी रहा। मनने कई बेर चाहा कि श्री खेर जीसे क्षमा माँग लूँ; पर उन्होंने अपने पत्रमें यह भी लिखा था कि पुस्तकके चतुर्थ खण्डमें लिखे विचारोंमें और तुम्हारे विचारोंमें कुछ सादृश्य मिलेगा; इस प्रलोभनमें पड़ा, कि भला मेरे 'दक़ियानूसी' 'पश्चाद्गामी', 'पुराणप्रिय', जीर्ण-शीर्ण, विचारोंका, नई पुश्तके एक सज्जनने, पाश्चात्य देशोंमें भ्रमण करनेके बाद भी, किसी भी अंशमें समर्थन किया—उसको देखना चाहिये। फर्मोंको अपने पास पड़ा रहने दिया। मध्य अक्तूबरमें शिमलासे रुग्णावस्थामें लौटा। प्रायः नवम्बरके अन्तमें कुछ स्वस्थ हुआ। तौ भी, वयस् वृद्ध, शक्ति क्षीण, अन्य कार्योंका बाहुल्य—इन कारणोंसे रुचि रहते भी, विलम्ब करके भी, पुस्तकको आद्योपान्त नहीं पढ़ सका। परन्तु अधिकांश पढ़ा, और शेष पृष्ठोंको उलट-पलट कर देख लिया।

लेखकने पृष्ठ ४२, ४४, ६१ पर अमेरिकाके; पृ० ६८, ६९, ७३, ७८ पर रूसके; पृ० १२१ पर जर्मनीके; पृ० १६८, १६९ पर इटलीके, मुख्य मुख्य नगरोंमें जानेकी चर्चा की है; पृ० २५३-२५६ से जान पड़ता है कि ब्रिटेन और फ्रांसकी भी यात्रा की।

पश्चिमीय मानव संसारमें सामान्यतः, और तत्तद्देशमें विशेषतः, सामाजिक और वैयक्तिक जीवनके शैक्षिक, कौटुम्बिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सभी अङ्गों अंशोंमें, जो लहरें उठ रही हैं और जो उथल-पुथल मचा है, उसके विषयमें ग्रन्थकर्त्ताको, इस देशाटनसे जो जानकारी मिली, उसका निष्कर्ष उन्होंने इस पुस्तकमें, अपने विवेचनों, तर्कों, मतोंके साथ, रख दिया है।

बहुत सी मनोरञ्जक और जाननेके योग्य बातें एकत्र की हैं; यथा, अमेरिकामें बच्चोंके न्यायालय, सुधारगृह, वृद्धाश्रम, जेलोंमें अध्ययनकी सुविधा, गृहहीनोंके लिये रातमें सो रहनेके ठिकाने, रोटी तरकारी बेचनेके यन्त्र, बैलगाड़ीसे हवाई जहाज़ तककी यानके उपकरणोंमें क्रमिक उन्नति, रूसका श्रमजीवी समाज, वहाँके पुराने और नये जेलोंका हाल, ऐतिहासिक बातें, रूसके स्त्री-समाजकी अन्य सब देशोंसे भिन्नता, उसकी पुरानी और नई अवस्थाका भेद, तबकी और अबकी स्त्रियाँ, तेरह मिनटमें विवाह, रूसी और अंग्रेज़के स्वभाव, अंग्रेज़ और अमेरिकन, काले गोरेका भेद इंग्लैंड और अमेरिकामें बहुत और फ्रांस और रूसमें नहीं, रूसमें पारलौकिक धर्म और विश्वासका विरोध, रूसमें शिक्षाकी व्यापकता और निरक्षरोंका अभाव, जर्मनीमें हिटलर-पूजा, रूसकी औद्योगिक यान्त्रिक उन्नति, तथा वहाँकी अन्य बहुत सी बातें, जर्मनीमें सैनिकवादका प्रसार, तथा बेजोड़ स्वच्छता सफ़ाई, लन्दनके ग़रीब, नारी-जीवनके इतिहासकी मंज़िलें,* अंग्रेज़ोंकी विशेषताएँ, नई पुश्तके युवकोंकी मनोवृत्ति; ऐसी ऐसी बहुतेरी बातोंका रोचक वर्णन किया है।

यत्न, मैं प्रायः चालीस वर्षसे करता आ रहा हूं; और कांग्रेसके नेताओंका ध्यान, "स्वराज" की रूपरेखा जनताको बतलानेकी परम आवश्यकताकी ओर, दिलानेका यत्न विशेषकर प्रायः सोलह वर्षसे कर रहा हूँ। खेद है कि पर्याप्त बुद्धिबल, वाग्बल, लेखनीबल मेरे पास नहीं है, और इस हेतुसे अबतक उन भावोंका संक्रमण, नयी पुश्तके चित्तमें, नहीं कर सका। श्री खेरकी कुछ श्रद्धा प्राचीन धर्मतत्त्वोंमें है, यह ऊपर उद्धृत वाक्योंसे, तथा स्थान स्थानपर अन्य वाक्योंसे, झलकती है। कांग्रेस सोशलिस्ट दलके नेता लोग भी यह मानने लगे हैं, कि रूसी या अन्य किसी भी प्रकारकी सर्वथा नकल, "मक्षिकास्थाने मक्षिका", भारतके लिये हितकर नहीं है।

अन्तमें यह लिख देना चाहिये कि श्री खेरने, अपने प्रत्यक्षदृष्टके आधारपर, यह ग्रन्थ लिख कर, इस विषयपर ज्ञानकी खोज करनेवाले भारतीयोंका बड़ा उपकार किया है। पश्चिममें तो सैकड़ों ग्रन्थ इन विषयोंपर प्रतिवर्ष छपते रहते हैं; भारतमें अभी बहुत कम हैं। महीनों तक, पचासों पाश्चात्य पुस्तकोंके, और अंग्रेज़ी दैनिक साप्ताहिक अखबारों और मासिक पत्रिकाओंके, परिशीलनसे जो ज्ञान प्राप्त हो सकता है, उसका सार इस छोटेसे ग्रन्थके एक सप्ताहके अध्ययनसे हो जायगा; तथा पश्चिमकी नयी विचारधाराओं और सामाजिक व्यवस्थाओंका प्रभाव भारतपर कितना पड़ रहा है, कितना पड़ना चाहिये, और कितना न पड़ना चाहिये, इसपर विवेकपूर्वक विमर्श परामर्श करनेके लिये सामग्री भी और प्रेरणा भी मिलेगी। ग्रन्थ विस्तृत प्रचारके योग्य है।

काशी, २७ मार्गशीर्ष,
१९९३ वि०

भगवान्दास

भूमिका

'संसारकी समाज क्रान्ति' यह नाम जो इस पुस्तकको दिया गया है, उसमें पाठकोंको संभवतः अतिव्याप्ति दोष देख पड़ेगा, किन्तु किञ्चित् विचार करनेसे उनका भ्रम दूर हो जायगा। यद्यपि पाश्चात्य देशोंके सम्बन्धमें ही इसमें विचार किया गया है, फिर भी यह मानना पड़ता है कि उक्त देशोंमें प्रचलित विचारोंका प्रभाव आज सारे संसारपर पड़ रहा है, इसीका खयाल कर पुस्तकका यह नाम रखा गया है। इसी तरह 'क्रान्ति' शब्दसे केवल राजनीतिक क्रान्तिका ही अभिप्राय नहीं है। आज जगद्-व्यापी समाजमें जो सार्वांगिक परिवर्त्तन हो रहे हैं, उनके वेगकी कल्पना पाठकोंको कराना यही हमारा उद्देश्य है।

पाश्चात्य समाजका निरीक्षण करते समय प्रत्येक क्षण हमारे देश या हमारे समाजकी दृष्टिसे इसका क्या अर्थ है, यही प्रश्न लेखकके मनमें उठा करता था। स्थलविशेषका विचार करते समय हिन्दुस्थानका प्रश्न कभी ओझल नहीं होने पाया।

उपलब्ध समयके भीतर प्रत्यक्ष निरीक्षण, भेंट, तथा सम्भाषण इत्यादि द्वारा जो बातें मालूम हो सकीं, उन्हींको लिपिबद्ध करनेका प्रयत्न इसमें किया गया है। पाठकोंको इसमें शुद्ध यात्रा-वर्णन न मिलेगा और भरसक उन बातोंसे भी बचनेकी कोशिश की गयी है जो अन्य ग्रन्थों द्वारा जानी जा सकती हैं। समाज तथा उसके मूलमें काम करनेवाली विचार-धारा और इससे भी अधिक हमारे देशपर पड़नेवाला सम्भवनीय परिणाम—यही इस ग्रन्थका मुख्य विषय है।

हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें इस तरहकी अनेक पुस्तकें पाश्चात्य भाषाओं-में विद्यमान हैं। किन्तु देशी भाषाओंमें अभीतक ऐसे ग्रन्थ बहुत कम प्रकाशित हुए हैं। संसारकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए इनकी संख्यामें वृद्धि होना वाञ्छनीय है।

हमारे समाजमें ऐसे लोग भी हैं जो उपहास करते हु
उठेंगे कि 'पाश्चात्य देशोंपर नज़र डालनेसे हमें लाभ ही क्या
है ? हमारी परिस्थिति उनसे बिलकुल भिन्न है।' संसारमें व
मची हुई है, इसकी परवाह न कर आँख मीचे हुए अपने पुर
चलते रहनेके कारण ही आज हमारी यह अवनति हुई है। य
में हम इस स्थितिसे बचना चाहते हों तो हमें आँखें खोलक
ओर दृष्टि डालनी चाहिये और प्रभावशाली विचारों तथा अ
शिक्षा लेते हुए उन्हें अपनी विचारधारा, ध्येय एवं कार्यक्रम
स्थान देना चाहिए। ऐसा न करनेसे संसार और हमारे दे
अन्तरमें कमी होनेकी आशा कदापि नहीं की जा सकती।

पूनेके अनाथ-विद्यार्थी-गृहमें बारह वर्षतक शिक्षासम
कर चुकनेके बाद मनमें यह विचार आया कि पाश्चात्य देशों
जो उन्नति की है उसकी जानकारी वहाँ जाकर प्रत्यक्ष रूप
जाय। अतः अमेरिकामें दो वर्ष रहकर शिक्षा प्राप्त करने औ
बातोंका निरीक्षण करनेके बाद मैंने इंग्लैण्ड, रूस, जर्मनी, इट
देशोंमें भी थोड़ा थोड़ा समय व्यतीत किया और वहाँकी
स्थिति तथा शिक्षापद्धतिका अवलोकन किया। खर्चका अ
मैंने स्वयं उपार्जित किया और आधा अनाथ विद्यार्थी गृहने ए

प्रत्येक देशके समाज, उसकी संस्थाओं और राजनीति
आदिका परीक्षण किये बिना वहाँकी शिक्षा-प्रणालीका मर्म स
आ सकता। पाश्चात्य समाजका परिचय इस ग्रन्थमें कराया ग
वहाँकी शिक्षा-पद्धतिकी समीक्षा-परीक्षा एक स्वतन्त्र पुस्तकमें क
'पाश्चात्य देशोंकी शिक्षा-पद्धति' इस नामसे यह पुस्तक शीघ्र
शित करनेका प्रबन्ध हो रहा है।*

* अब यह पुस्तक भी मराठी भाषामें प्रकाशित हो गयी है
अनाथ-विद्यार्थी-गृहसे एक रुपयेमें मिल सकती है।

मुझे आशा है कि सामान्य, सुशिक्षित, जिज्ञासु एवं विवेकशील पाठकोंको यह रचना मनोरंजक तथा विचारपूर्ण प्रतीत होगी। विविध हलचलोंसे भरे हुए आजके संसारमें आँख खोलकर रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको इसमें दी हुई सामग्री तथा विचारावली विशेष रूपसे उपयोगी प्रमाणित होगी।

प्रत्येक देशकी हलचलके मूलमें प्रायः वहाँके सामाजिक तथा राजनीतिक ध्येय एवं सिद्धान्त ही विद्यमान रहते हैं। उनकी जानकारी हो जानेसे समाचारपत्रोंमें वहाँके आन्दोलनोंके सम्बन्धमें प्रतिदिन प्रकाशित होनेवाली खबरें अच्छी तरह समझमें आने लगती हैं। इस ग्रन्थका अवलोकन करनेसे पाठकोंको विदित हो जायगा कि संसारके विविध आन्दोलनोंके मूलमें कौन-सी विचारधारा काम कर रही है।

लेखक

हितकारी समझता हूँ; तथा उससे विरुद्ध प्रकारोंको हानिकारी मानता हूँ। वह तथ्य तत्त्व कृषिप्रधान सभ्यताको भी लागू हैं, और यंत्रप्रधान सभ्यताको भी, क्योंकि मनुष्यकी आध्यात्मिक आधिदैहिक प्रकृति (सैकालोजी–फिसियालोजी) के अनुकूल हैं। अध्यात्मशास्त्रके विरुद्ध जो कोई भी प्रकार बर्त्ते जायंगे वह निष्फल दुष्फल होंगे।

या वेदबाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥
उत्पद्यंते च्यवंते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ (मनु)

"वेदांत अर्थात् अध्यात्मशास्त्रके विपरीत और प्रतिकूल जो दृष्टियां और स्मृतियां, समाज-रचना आदिके विषयमें हैं, वे आज पैदा होती और कल मरती रहती हैं, जैसे बरसाती छत्राक (कूकरमूते); उनमें दीर्घकाल पर्यन्त परीक्षित स्थिरता नहीं होती"। "दृष्टियां," "स्मृतियां"—के बहुवचनकी सार्थकता इससे प्रमाणित होती है कि "सोशलिज़्म" और "फैसिज़्म" के बीसियों भेद बखाने जा रहे हैं। रूसकी ओर सारे मानव संसारकी आंख लगी हुई है। सारा मानव समाज दो दलोंमें विभक्त हो रहा है, एक सोशलिस्ट "काम्युनिस्ट" और एक "फ़ैसिस्ट"। भारतीय नई पुश्तका ध्यान रूसी प्रकारके गुणोंकी ही ओर अधिक आकृष्ट और उसीपर मुग्ध हो रहा है; पर रूसके प्रबन्धमें प्रायः प्रति वर्ष कोई न कोई गम्भीर परिवर्त्तन हो जाता है। अभी, इसी दिसम्बर मासमें, सारे "कान्स्टिट्यूशन" का कायापलट कर दिया गया है। विवाह-के पुनः स्थायी बनानेपर जोर दिया गया है, और विशेष प्रकारके निजी वैयक्तिक परिग्रह, "प्राइवेट प्रापर्टी", रख सकनेकी अनुमति दी गई है। हाँ, जो पूँजीवादी देशोंमें पूँजीकी "अति" हो गई है, उसका नियंत्रण रूसमें अब भी कर रक्खा है, जैसा उचित ही है, और जैसा प्राचीन भरतीय समाजमें दूसरे प्रकारोंसे किया जाता था। पारलौकिक विश्वास

और धर्मके विरोधमें भी कुछ ढिलाई अब रूसमें आई है, और, यद्यपि पाठशालाओंमें इनका विरोध सिखाया जाता है, पर अपने अपने घरोंके भीतर अपनी अपनी रुचियोंके अनुसार पूजा पाठ करनेमें विघ्न अब प्रायः नहीं किया जाता, क्योंकि, कई वर्षके घोर प्रयत्न और तनातनी और मारापीटीके बाद, सोवियट-शासकोंने भी पहिचान लिया कि यह पारलौकिक भाव मनुष्यके हृदयसे निर्मूल नहीं किया जा सकता। जबतक मनुष्य को दुःख और मृत्युका अनुभव और भय है, तबतक उसका हृदय पारलौकिक अदृष्ट अवलम्बोंका सहारा अवश्य ढूँढेगा ही।

यहाँपर यह भी लिख देना चाहिये, कि मेरे ऐसे घरमें बैठे हुए आदमीको निश्चयसे यह ज्ञान नहीं हो सकता, कि रूसकी ठीक ठीक क्या अवस्था है। दूसरोंके, सो भी प्रायः अंग्रेजोंके ही, और अंग्रेजीमें, लिखे वर्णनोंपर ही भरोसा करना पड़ता है; और इन वर्णनोंकी यह दशा है, कि अपनेको आँख देखी लिखनेवाले कहते हुओंके लेखोंमें भी अंधेरे-उजालेका सा अन्तर है; एक सर्वथा बुरा बतलाता है, एक सर्वथा भला; तो, ऐतिहासिक तथ्यान्वेषणके मूल नियमके अनुसार, ऐसा ही मान लेता हूँ कि बीचकी बात ठीक होगी, कुछ भला होगा, कुछ बुरा होगा। द्वंद्वमय प्रकृतिका अटल नियम भी है कि अंधेरा-उजाला, दिन-रात, बुराई-भलाई, गुण-दोषका साथ अटल है; तीव्र सुखके साथ तीव्र दुःख, मध्यमके साथ मध्यम, मन्दके साथ मन्द; एक विशेष गुणके साथ एक विशेष दोष लगा ही रहता है; सर्वथा गुणमय, सर्वथा दोषमय, कोई पदार्थ वा प्रकार नहीं। ग्रन्थसे ऐसा मालूम होता है कि श्री खेर जीने रूसके दो प्रधान नगर ही देखे, लेनिनग्राड और मास्को; केवल इनके देखनेसे सारे अति विशाल देशका हाल नहीं मालूम हो सकता। मेरे मनमें ऐसा आता है कि क्रमशः रूस भी प्राचीन भारतके वर्णधर्मके तात्त्विक तथ्योंको पहिचानेगा और उसकी ओर आवेगा। इसपर अपने अंग्रेजी ग्रन्थोंमें लिख चुका हूँ, यहाँ अधिक विस्तारका अवसर नहीं है।

लेखकके नीचे लिखे विचारोंमें मेरी सर्वथा सम्मति है; यथा, "समाजके सामने सबसे अधिक आकर्षक ध्येय रखकर, शिक्षा द्वारा उसे आबद्ध करनेका प्रयत्न भारतीय राष्ट्रके पुनर्निर्माणकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, अतः अमेरिकाने (अथवा अन्य देशोंने) जिन साधनोंका प्रयोग किया है उनसे भारतको विशेष लाभ उठा सकनेकी सम्भावना है" (पृ० ५)—"साधनों"का, "साध्यों" का नहीं। "अब तो इस बातपर विचार करनेकी आवश्यकता है कि सब धर्मोंके सहयोग एवं परस्परकी सहिष्णुतासे अध्यात्मकी ज्योति किस तरह अखण्ड रखी जा सकती है" (पृ० २२)। "वस्तुओं और फ़ैशनोंके साथ पाश्चात्य विचार भी तीव्रतासे हमारे (भारतीय) समाजमें घुस रहे हैं······शिक्षित-लोगोंको समीक्षा करके समझ लेना चाहिये कि उन विचारों का स्वरूप क्या है, उनमेंसे कौन कौन त्याज्य हैं, कौन उचित संस्कारके बाद ग्राह्य हैं, और कौन प्रतीकार करनेके योग्य हैं, इसका निर्णय हो जाना चाहिये" (पृ० १८२–१८३)। "संसारके सामने आज यह प्रश्न उपस्थित है कि समाजशासनकी आदर्शपद्धति कौन सी हो सकती है।······विचारशील हिन्दुस्थानियोंको सोच रखना चाहिये कि यदि कोई 'वरं ब्रूहि' कहे, या उनके हाथमें शासनसत्ता आ जाय, तो वे किस पद्धतिका अवलम्बन करेंगे ? किसी पद्धतिके प्रचलित होनेसे बहुत वर्ष पूर्व ही उसके सम्बन्धमें अच्छी तरह विचार कर लेना आवश्यक होता है" (पृ० १८७)। "कोई भी शासन-प्रणाली समान रूपसे सब समाजोंके अनुकूल नहीं हो सकती···हमें अभीसे विचार रखना चाहिये कि हिन्दुस्थानियोंकी मनोवृत्तिके अनुकूल कौन सी शासन-प्रणाली हो सकती है" (पृ० १८८)। "अपने देश (भारत) के युवकोंका आज यदि समाजको उपयोग नहीं हो रहा है तो उसमें दोष युवकोंका नहीं है, किन्तु उनकी मनोवृत्तिको पहचानकर उनके सामने आकर्षक निश्चय तथा व्यावहारिक कार्यक्रम न रखनेवाले प्रौढ़ वर्गका है" (पृ० २७३)।

"आज दुनियामें 'भौतिक उन्नति अथवा आध्यात्मिक उन्नति ?' की बहस नहीं रही, सबका निर्णय यही है कि इन दोनोंका समन्वय होना चाहिये" (पृ० २७६)। "वैदिक कालमें आर्यों में ऐहिक जीवनके प्रति जो उत्साह और प्रयत्नवाद था उसका समाजमें पुनः निर्माण होना चाहिये, और इस प्रयत्नवाद तथा फल-प्राप्तिकी सीमा कहाँ है यह जानने के लिये उच्च तत्त्वज्ञानको अवगत करना चाहिये। ऐसी आध्यात्मिक भूमिकापर स्थित रहकर हम पश्चिमवालोंके सांसारिक जीवन और ऊँची रहन-सहनकी कल्पनाको ग्रहण कर लें तो मानो हम उनसे भी कुछ अधिक कर दिखावेंगे" (पृ० २७८)। "धर्मनेता यदि चाहते हों कि समाजवादको स्वीकार करनेवाला युवक वर्ग निरीश्वरवादी और जड़वादी न हो तो उन्हें चाहिये कि······धर्मकी ऐसी नयी व्याख्या करें जो नये समाजशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान और भौतिक विज्ञानसे मेल खाती हो। धर्मको अब ऐसा रूप मिलना चाहिये जिसमें बुद्धिप्रधान, समीक्षक, और आधुनिक विज्ञानकी जानकारी रखनेवाले अन्तःकरणोंका भी समाधान हो सके" (पृष्ठ २८१) इत्यादि।

श्री खेरने ऐसे वाक्योंमें जो साधनीय एष्टव्य कहे हैं, जो इच्छा प्रकट की है, उनकी सिद्धि, उनकी पूर्त्ति, का प्रकार स्वयं नहीं दिखाया है, जैसा पहिले कहा जा चुका है। "ऐहिक-प्रयत्नवाद और त्यागवाद", "भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति", अर्थात् (प्राचीन शब्दोंमें) अभ्युदय और निःश्रेयस, बुभुक्षा और मुमुक्षा, दुनिया और दीन, व्यवहार धर्म और संन्यास धर्म, का समन्वय कैसे हो सकता है; धर्मकी नयी व्याख्या, बुद्ध्यनुकूल, तर्कप्रमाणित, न्यायसिद्ध क्या हो सकती है और होनी चाहिये; 'तत्त्वज्ञानकी आध्यात्मिक भूमिपर समाजरचना कैसे हो सकती है और होनी चाहिये – इन प्रश्नोंका उत्तर, (अपनी बुद्धिके भरोसे नहीं) प्राचीन ऋषियोंके उपदेशोंके भरोसेपर, उन्हींके शब्दोंके, नवीन पाश्चात्य विज्ञान सम्मत शब्दोंमें, अनुवादके द्वारा, हिन्दी और अंग्रेजी ग्रन्थोंमें दिखानेका

विषय सूची

पहला विभाग

अमेरिका—तीन सौ वर्षोंकी नयी संस्कृति

दूसरा विभाग

रूस—पन्द्रह वर्षोंकी क्रान्ति

तीसरा विभाग

जर्मनी, इंग्लैण्ड और इटली—प्राचीन संस्कृतिकी सुरक्षा

चौथा विभाग

संसार और भारतवर्ष—वर्तमान विचार-प्रवाह

पहला विभाग

अमेरिका—तीन सौ वर्षोंकी नयी संस्कृति

और

हिन्दुस्थान

पहला अध्याय

अमारकन संस्कृतिका स्वरूप

भारतमें ऐसी कथा आयी है कि अर्जुनने पाताललोककी
थी और वहाँ उन्होंने उलूपी नामकी राजकुमारीसे
के लिए
अवसर
विवाह किया था। एक भारतीय ग्रन्थकारने इसपरसे यह अनुमान किया है कि इतिहासकी दृष्टिसे ऐसा प्रतीत होता है कि अर्जुन अमेरिका
ो और वहाँ 'रेड इंडियन' (रक्त चर्मवाली) जातिके
जवंशसे उन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया था। महा-
मयासुरका नाम भी आया है, जो अपनी शिल्पकलाके
हुत प्रसिद्ध था। पाण्डवोंने उसकी सहायतासे एक
हल तैयार कराया था जिसमें अनेक आश्चर्यपूर्ण दृश्यों-
ना की गयी थी। अमेरिकाकी रेड इंडियन जातिमें
यके लोग भी हैं, जिनकी शिल्पकलाके नमूनेपर वहाँ
रतें बनवानेका उपक्रम हो रहा है। शिकागोकी प्रद-
ता ही एक मंदिर मय लोगोंकी कारीगरीके नमूनेके
तैयार कराया गया था। अमेरिकामें कुछ शहरों,
और नदियोंको रेड इंडियनोंकी भाषामें प्रचलित नाम

दिये गये हैं। उनमें और आर्यभाषाके शब्दोंमें बहुत समानता दृष्टिगोचर होती है, उदाहरणार्थ कुछ नाम ये हैं—केयुग सरोवर, अस्टबुला शहर, अशोक बाँध इत्यादि। इन सब बातोंसे उक्त अनुमानकी पुष्टि होती है। जो हो, इसका अंतिम निश्चय करनेके लिए आवश्यक है कि कोई भारतीय विद्वान्, जिसे आर्यभाषाओंका अच्छा ज्ञान हो, वहाँ जाकर ताम्रजातीय संस्कृतिका अध्ययन करे और जहाँतक संभव हो इस सम्बन्धमें पूरी छानबीन करे।

यूरोपीय अधिवासियोंने अमेरिकामें प्रवेश कर वहाँकी भूमि रेड इण्डियनोंके हाथसे छीनकर अपने हाथमें कर ली और गत तीन सौ वर्षोंके भीतर वहाँ एक अभूतपूर्व संस्कृतिकी प्रतिष्ठा कर दी। उन्होंने उजाड़ जंगलोंको नन्दन-वनमें परिणत कर दिया। जहाँ हिंसक जन्तु रहते थे, वहाँ बड़े बड़े नगरोंका निर्माण कर दिया। प्राकृतिक शक्तिसे प्रचुरमात्रामें बिजली तैयार कर डाली और उससे नौकरकी तरह हर एक काम कराने लगे। जहाँ पहले पगडण्डियाँतक न थीं वहाँ प्रशस्त मार्ग बना डाले और जहाँ कभी मनुष्यका प्रवेशतक नहीं हुआ था, वहाँ रेल-मार्गोंकी सहायतासे लोगोंकी बस्ती बसाकर अपनी संस्कृति फैलानेका काम जारी कर दिया।

अरण्यकी जगह नन्दनवन

प्राचीन समयमें आर्य लोग हिन्दुस्थानमें प्रवेश कर धीरे धीरे दक्षिणकी ओर बढ़ते हुए सिंहलद्वीपतक बस गये। इसी इतिहासकी आवृत्ति, एक बड़े अंशमें, अमेरिकामें भी हुई। नये प्रदेशोंपर अधिकार जमानेका काम पिछली शताब्दीमें ही पूरा हो चुका था। इस समय नैसर्गिक सम्पत्तिको मानव-सुखके लिए रूपान्तरित करनेका प्रयत्न हो रहा है। जंगलों, खेतों और

खानोंकी उपजको मानव-बुद्धि एवं यंत्रोंकी सहायतासे भौतिक सम्पत्तिके रूपमें परिणत कर दिया है। यह कार्य इतनी शीघ्रतासे और ऐसे उत्साहके साथ किया गया है कि इसीके कारण अमेरिका आज संसारभरमें सबसे अधिक सम्पत्तिशाली देश बन गया है, यहाँतक कि यूरोपके सभी शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रोंको उससे ईर्ष्या होने लगी है।

यूरोपीय राष्ट्रोंकी दो हज़ार वर्ष पुरानी अपनी संस्कृति, भली बुरी जैसी भी हो, है और उनकी अपनी परम्परा है। इसी संस्कृतिके बलपर उनकी मनोवृत्ति अमेरिकाको तुच्छ समझने और उसे संस्कृतिहीन एवं परम्पराहीन कह कर दोष-दृष्टिसे उसपर विचार करनेकी है।

अमेरिका यूरोपीय राष्ट्रोंका महाजन है, इस कारण उनका यह भाव और भी तीव्र हो गया है। हिन्दुस्थानके पीछे छः हज़ार वर्षोंकी संस्कृतिका इतिहास पड़ा हुआ है और यहाँके रहनेवाले हम लोग रूढ़ि तथा परम्पराके गुलाम हैं, ऐसा हम अक्सर कहा करते हैं, किन्तु यदि अमेरिकाकी दृष्टिसे देखा जाय तो यूरोपीय राष्ट्र भी भारतकी ही तरह अपनी अपनी रूढ़ि-परम्पराके गुलाम प्रतीत होंगे। अगले दो हज़ार वर्षोंके बाद अमेरिकाकी भी यही हालत होगी। जो हो, तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करने पर यदि हम यह कहें कि अमेरिकन लोग रूढ़ि-मुक्त हैं तो इसमें कोई हर्ज न होगा। इसीसे वे लोग प्रत्येक क्षेत्रमें नये नये प्रयोग करनेको तैयार रहते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति ही अमेरिकाकी उन्नतिका मूल कारण है, यह बात हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिये। समाज-रचना, आर्थिक संघटन, शिल्पकला, मानवी जीवन-पद्धति एवं समाज-व्यवहार—इन सब क्षेत्रोंमें वहाँ नूतन दृष्टिसे सभ्यताकी उन्नति करनेका प्रयत्न

किया जा रहा है। नये ढंगसे समाज-रचना करनेका कार्य जहाँ जारी है, ऐसे अमेरिका, रूस आदि देशोंकी पद्धतियोंके गुण-दोषोंकी समीक्षासे भारतको विशेष शिक्षा मिल सकती है।

अमेरिकन समाजका स्वरूप

अमेरिकन संस्कृतिका अभ्ययन करनेवालोंको वहाँके समाजकी एक विशेषता ध्यानमें रखनी चाहिये। साधारणतया बहुतसे राष्ट्रोंकी स्थिति ऐसी है कि वर्ण, भाषा, परम्परा एवं संस्कृतिकी दृष्टिसे वहाँके समाजका स्वरूप एकसा ही होता है। अमेरिकाकी स्थिति इससे भिन्न है। धार्मिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक कारणोंसे प्रेरित होकर यूरोपके अनेक देशोंके निवासी आ आकर अमेरिकाके किनारे बस गये और बादमें धीरे धीरे चारों तरफ फैल गये। बसनेके लिए आये हुए भिन्न भिन्न जातिके लोगोंके सम्मिश्रणसे अमेरिकन समाजका निर्माण हुआ है। उसमें अंग्रेज़, फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी, ग्रीक, इटैलियन, चीनी और जापानी—इन सभी लोगोंका समावेश हुआ है। कुछ लोगोंकी तो अभी पहली ही पीढ़ी चल रही है पर कुछ लोगोंको वहाँ गये हुए दो-तीन पीढ़ियाँ बीत चुकी हैं। मूलदेशसे आयी हुई भाषा, परम्परा, संस्कृति, रहनसहन, विचारशैली एवं कलाका अस्तित्व पहिली एक-दो पीढ़ियोंतक तो क़ायम रहता है, किन्तु बादमें वह धीरे धीरे अमेरिकाकी विराट संस्कृतिमें विलीन हो जाता है। यहाँकी आबादीमें ३०-४० प्रतिशत लोग ऐसे ही हैं जो बाहरसे आकर स्थायी रूपसे बस गये हैं और जिनके लिए अभीतक पूर्णरूपसे अमेरिकन बनना बाकी ही है। विविध वृत्तियों और विभिन्न संस्कृतियोंवाले इन लोगोंको एक ही संस्कृतिकी शिक्षा देकर उनका एक राष्ट्र बनाना, यही अमेरिकाके सामने एक स्थायी प्रश्न है। अमेरिकाके गुण-दोषोंका विचार

करते समय वहाँकी समाजरचनाकी इस कठिनाईका खयाल अवश्य रखना चाहिये। एक भाषा, एक संस्कृति एवं एक वर्णके होनेके कारण जो लाभ. यूरोपीय राष्ट्रोंको प्राप्त है, वह अमेरिकाको नहीं है।

भारतीय दृष्टिसे इसका महत्त्व

भारतकी दृष्टिसे यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है। जो लोग यह कहा करते हैं कि हिन्दुस्थान स्वराज्यके अयोग्य है, वे अपनी बातका समर्थन करनेके लिए यहाँ पायी जानेवाली भाषा, वर्ण, एवं धर्म-सम्बंधी विभिन्नताका उल्लेख किया करते हैं। इन लोगोंका तर्क स्वीकार कर लेने पर तो अमेरिका भी स्वतंत्रताके अयोग्य ठहरा दिया जाना चाहिये, किन्तु इसके विपरीत उसने इन सब कठिनाइयोंका सामना कर भौतिक सामर्थ्यके क्षेत्रमें यूरोपीय राष्ट्रोंको भी मात कर दिया है। कारण यह है कि समाजमें दृष्टिगोचर होनेवाली विभिन्नताओंपर ज़ोर न देकर अमेरिकाने शिक्षा द्वारा उसे एक ही ध्येयमें आबद्ध करनेका प्रयत्न किया है। सार्वजनिक शिक्षाके लिए अमेरिका जितना रुपया खर्च करता है, उतना अकेले रूसको छोड़कर अन्य किसी देशमें खर्च नहीं किया जाता। भारतीय समाजमें जो विविधता वर्त्तमान है, वह आज भी एक ध्येयसे निबद्ध नहीं होने पायी है और न वह अभीतक राष्ट्रके प्राणोंमें घुलमिल ही सकी है। समाजके सामने सबसे अधिक आकर्षक और ऊँचा ध्येय रखकर शिक्षा द्वारा उसे आबद्ध करनेका प्रयत्न यहाँकी प्रस्थापित सत्ताने आजतक किया ही नहीं। भारतीय राष्ट्रके पुनर्निर्माणकी दृष्टिसे यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, अतः अमेरिकाने जिन साधनोंका प्रयोग किया है उनसे भारतके भी विशेष लाभ उठा सकनेकी संभावना है।

दूसरा अध्याय

सुख-समृद्धि कैसे हुई ?

अमेरिकामें भ्रमणके निमित्त जानेवाले व्यक्तिका ध्यान एक बातकी ओर सबसे पहले जाता है। वह है प्राकृतिक दृश्योंकी भिन्नता और मानवी संस्कृतिकी एकरूपता। 'संयुक्तराज्य' (अमेरिका) का क्षेत्रफल हिन्दुस्थानका दुगुना है। हिन्दुस्थानके दक्षिणसे उत्तरकी ओर जाते समय प्रकृतिके जैसे विभिन्न रूप देख पड़ते हैं, वैसे ही यहाँ भी दृष्टिगोचर होते हैं। कहींपर महाराष्ट्र जैसे पहाड़ी क्षेत्र हैं, तो कहीं उत्तर भारतकी तरह विस्तृत मैदान भी हैं। कहींकी भूमि अत्यन्त उर्वरा है, तो कहीं रेतीले प्रान्त फैले हुए हैं। उत्तरके कई राज्य बहुत ठंडे हैं तो दक्षिणी भागमें कई प्रदेश जाड़ेमें भी हिन्दुस्थानकी तरह उष्ण अथवा समशीतोष्ण रहते हैं। तात्पर्य यह कि वहाँके प्रत्येक राज्य (स्टेट) एवं प्रत्येक प्रान्तमें प्राकृतिक दृश्योंकी स्वाभाविक विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

प्रकृतिकी विविधता

जब हम प्रकृतिकी ओरसे मुँह फेरकर मानव-सृष्टिपर नज़र डालते हैं तब हमें ठीक इसकी उलटी बात देख पड़ती है। यदि अतिशयोक्तिसे काम लिया जाय तो हिन्दुस्थानमें कोस कोसभरकी दूरीपर भाषा, वेशभूषा, शिल्पकला, रहनसहन और समाजके बाह्य स्वरूपमें अन्तर देख पड़ता है। मद्रासवालोंकी पोशाक दूसरी, वहाँके मन्दिरोंकी बनावट दूसरी और वहाँके घरोंकी

मानवसृष्टिकी एकरूपता

रचना भी निराली होती है। इसी तरह बम्बई, कलकत्ता, लाहौर, आदि प्रत्येक स्थानकी अपनी अपनी विशेषता है, इसीसे जब हम थोड़े समयके लिए कहींकी यात्रा करते हैं, तब हमें यह समझनेमें देर नहीं लगती कि हम कहाँ हैं। इसके विपरीत अमेरिकाका हाल है। एक छोरसे दूसरे छोरतक—न्यूयार्कसे सानफ्रांसिस्कोपर्यन्त—यात्रा करने पर वहाँके शहरों एवं रहनसहनमें ज़रा भी अन्तर नहीं देख पड़ता। यदि कोई यात्री अमेरिकाके किसी बड़े शहरमें घूम फिरकर देखे तो बाह्य स्वरूपपरसे उसे ऐसा प्रतीत हुए बिना नहीं रह सकता कि मैं न्यूयार्कमें ही हूँ। बड़े शहर प्रायः एक सदृश हैं, उसी प्रकार छोटे छोटे गाँव-खेड़े भी एकसे हैं। प्रत्येक गाँवमें प्रायः वही बँधी हुई बातें देखनेको मिलती हैं—चौराहेपर गेसोलीन स्टेशन, 'हर एक माल दो आने' के ढंगकी दूकानें, एक ही तरहके सिनेमा-गृह, भोजनालय, उपाहारगृह (रेस्टोरां), बाल काटनेकी दूकानें और मोटर लारियोंके खड़े रहनेके स्थान। उसी तरह प्रत्येक गाँवमें स्कूल, पुस्तकालय, प्रदर्शनालय, वाइ० एम० सी० ए० जैसी संस्था और चिकित्सालय आदि अकसर मिलेंगे। छोटे बड़े प्रायः सभी गाँवोंमें रास्तोंपर तथा घरोंमें बिजली लगी हुई है। छोटे गाँवोंतकमें ट्रामगाड़ीकी सुविधा विद्यमान है। प्रायः एक ही चीज़ और एक ही कारखानेके बड़े बड़े विज्ञापन दीवारोंपर लिखे नज़र आते हैं। मिठाईकी दूकानपर जाकर देखिये तो न्यूयार्क शहरमें जो कैंडी मिलती है वही लगभग हजार मील दूरके गाँवमें भी मिलेगी। मासिक पत्रिकाओंकी दूकानोंके संबंधमें भी यही अनुभव होता है।

अमेरिकामें दृष्टिगोचर होनेवाली यह एकरूपता यात्रियोंकी दृष्टिसे असुविधाजनक एवं उद्वेगजनक होती हुई भी नागरिकोंके

लिहाज़से सुविधामय और सौभाग्यसूचक है। भारतके किसी छोटे गाँवमें रहनेवाला व्यक्ति कलकत्ता-बम्बईमें रहनेवाले नागरिकके सुखों और सुविधाओंकी स्पर्द्धा करता है और उसके हृदयमें इस बातकी बड़ी इच्छा रहती है कि जन्ममें कमसे कम एक बार तो इन शहरोंको जानेका अवसर मिले। 'भाई, मैं कलकत्ते या बंबई जाना चाहता हूँ' इस उक्तिमें भी जनसामान्यका यही भाव परिलक्षित होता है। अमेरिकामें बड़े शहरके रहनेवालोंको जो सुविधाएँ प्राप्त हैं, वही सारे देशके छोटे छोटे नगरोंके निवासियोंको भी उपलब्ध हैं। हाँ, आबादीके लिहाजसे इसमें अपवाद ज़रूर देख पड़ते हैं। हर रोजके जीवनमें प्रयुक्त होनेवाली चीजें, मनोरंजनकी सामग्री और शिक्षाकी सुविधाएँ सारे देशमें मौजूद हैं। देशके किसी कोनेमें रहनेवाला भी इन सब चीज़ोंसे लाभ उठा सकता है। मैं एक बार सप्ताह भरके लिए एक ग्राममें गया। लगभग ढाई-तीन हज़ारकी उसकी आबादी रही होगी। फिर भी वहाँ नगरमें मिलनेवाली सभी सुविधाएँ प्राप्य थीं। सुन्दर और साफ सड़कें, बिजलीकी रोशनी, सप्ताहमें दो बार सिनेमा या टाकीज़, मेसन्स लॉज, प्रायः सबके पास मोटर, प्रेस, स्थानीय समाचार-पत्र, मदरसा आदि सभी आवश्यक चीजें इस छोटेसे ग्राममें मौजूद थीं। मध्यम श्रेणीके हरएक गृहस्थके घर रेडिओ, पियानो, सुन्दर गलीचे, फरनीचर, स्नानागार, नये तरीकेसे बने हुए चूल्हे, ग्रंथालय, मासिकपत्रिकाएँ आदि चीजें देखनेमें आती हैं। नगरसे सैकड़ों कोस दूर ग्राममें रहनेवाला रातको घर पहुँचने पर रेडिओ द्वारा न्यूयार्क या शिकागोका उत्कृष्ट संगीत, प्रमुख राष्ट्रनायकोंका भाषण या रविवारको प्रसिद्ध

सामान्य नागरिकों-का भाग्य

धर्मोपदेशकका प्रवचन सुन सकता है। अमेरिकाके प्रेसिडेंटका भाषण आरंभ होने पर शहर और ग्रामके सभी लोग एक ही समय उनका भाषण सुन सकते हैं। अमेरिकावालोंने लोकशिक्षण और संस्कृति-वर्धनके पर्याप्त साधन निर्माण कर सब जगह इनका प्रचार कर रखा है। एक ग्रामवासीने मुझसे कहा था कि जब महात्मा गांधी राउंडटेबिल कांफ्रेंसमें इंग्लैंड गये थे तो उसने रेडिओ द्वारा उनका भाषण सुना था।

अमेरिकावालोंने इन सब सुविधाओंका कैसे निर्माण किया है, यह बात विचारणीय है। आर्थिक क्षेत्रमें अमेरिकाका मुख्य कार्य बहुत बड़े पैमानेपर वस्तुओंका उत्पादन (मास प्रॉडक्शन) करना है। इस मुख्य तत्त्वका प्रतिपादक हेनरी फोर्ड है। उसकी महत्वाकांक्षा है कि अमेरिकाके प्रत्येक किसानके पास एक मोटर गाड़ी अवश्य हो और वह उसे अल्प मूल्यमें ही प्राप्त हो सके। यह इसीका परिणाम है कि आज २५-३० वर्ष बाद अमेरिकामें चार आदमी पीछे एक मोटर गाड़ी है। अगर ऐसा कहा जाय कि प्रत्येक परिवारके पास एक गाड़ी है तो कोई अत्युक्ति न होगी। फोर्डका यह एक उदाहरण हुआ। उद्योग-धन्धेके प्रत्येक क्षेत्रमें अमेरिकाने यही सिद्धान्त बरता है। वहाँके लोग यंत्रोंकी उन्नति कर थोड़े समय और अत्यल्प व्ययमें अत्यधिक वस्तुएँ तैयार करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं। प्रत्येक कारखानेमें खोजके लिए एक अलग विभाग (रिसर्च डिपार्टमेण्ट) रखा गया है। उसमें कार्य करते हुए बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ अपने परिश्रम और खोजके सहारे तरह तरहके विचित्र यंत्र बनानेमें समर्थ हुए हैं। इन

समृद्धिकी महत्वाकांक्षा

लोगोंने यांत्रिक कौशल* के कामको चरम सीमातक पहुँचा दिया। चीज़ें सस्ती होनेके लिए मज़दूरीमें बचत होनी चाहिये और इस बचतके लिए बिना मज़दूरोंकी सहायताके आप ही आप चलनेवाले†(आटोमेटिक) यन्त्रोंका आविष्कार होना चाहिये। उस देशमें इस प्रकारके छोटे बड़े यन्त्र कोने कोनेतक पहुँच गये हैं। जिस कामके लिए पहले दो-ढाई सौ मनुष्योंकी आवश्यकता होती थी, वही काम आप ही आप चलनेवाले यन्त्रकी सहायतासे अब एक ही मनुष्य अच्छी तरह कर लेता है। महायुद्धके समयमें कारखानोंमें मनुष्योंकी बहुत कमी हो गयी थी। तब ऐसे यन्त्रोंके आविष्कारमें बहुत उत्तेजना मिली। वस्तु-समृद्धिकी ओर अमेरिकाका ध्यान विशेष था। उसका वह उद्देश्य सिद्ध हो गया है। इससे देशमें अब जीवनोपयोगी असंख्य वस्तुएँ निर्माण होने लगी हैं। वे वस्तुएँ केवल नगरोंमें ही सीमित न होकर गाँव गाँवमें खेतिहरों और मजदूरोंकी झोपड़ियोंमें पहुँचने लगी हैं। यान्त्रिक समृद्धिके उत्कर्षका यह एक उज्ज्वल पहलू है; किन्तु इसका दूसरा पहलू भी है जो सदोष है। वह है—बेकारी और आर्थिक विषमता। परन्तु आर्थिक तत्वज्ञानका वह स्वतन्त्र प्रश्न है।

व्यक्तियों व वस्तुओंकी अखण्ड गति

वस्तु-समृद्धिके साथ ही अमेरिकाने वाहनोंकी विपुलता भी कर दी है। एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि समस्त अमेरिकामें कांक्रीटकी मजबूत सड़कें बन गयी हैं। इस कारण मोटरके द्वारा सुखसे यात्रा की जा सकती है। देशके कोने कोनेतक रेलके मार्ग बन जानेसे कारखानोंमें जो माल तैयार होता

* Technology. † Mass Production.

है, वह फौरन देशभरमें पहुँचा दिया जाता है। न्यूयार्कमें भोजन करने बैठिये, आपके थालमें देशकी आठों दिशाओंमें बननेवाली वस्तुएँ परोस दी जायँगी। इस प्रकार वहाँ वस्तुओं और व्यक्तियोंको अखण्ड गति प्राप्त हो गयी है। एक ही प्रान्तमें जिनका जन्म हुआ हो और उसी प्रान्तमें उन्होंने कई पीढ़ियाँ बिता दी हों, ऐसे कुटुम्ब उस देशमें बहुत कम मिलेंगे। वहाँके लोगोंकी बस्ती गतिशील है। इस कारण अमेरिकन समाजकी रीति-नीति और जीवन-पद्धति प्रायः एक सी हो गयी है।

सारांश, नैसर्गिक दृष्टिसे अमेरिकामें भी भारतवर्षकी तरह बहुत विविधता है। परन्तु वस्तु-समृद्धि, वाहनोंकी विपुलता और गतिशील लोक-स्थितिके कारण उस देशके बाह्य जीवनमें समता और सारूप्य आ गया है।

तीसरा अध्याय

लोकतंत्रका व्यापक स्वरूप

अमेरिकाका जन्म स्वातन्त्र्य-युद्धके कारण हुआ है। यह सर्वसामान्य ऐतिहासिक सिद्धान्त है कि राष्ट्रकी आरम्भिक अवस्थामें जो तत्त्व प्रचलित होते हैं, उन्हींकी छाया राष्ट्रके इतिहासपर दूरतक फैल जाती है। किसी समय अमेरिका इंग्लैण्डका एक उपनिवेश मात्र था। परन्तु इंग्लैण्डकी मनोवृत्ति सदा ही स्वार्थ और बनिऔटी चालोंसे भरी रहती है। उसी मनोवृत्तिके

इंग्लैण्डके विरुद्ध स्वातन्त्र्य-युद्ध

कारण अमेरिकन लोगोंमें असन्तोष फैल गया। समानता और लोकतंत्रके सिद्धान्तके आधारपर अमेरिकाने इंग्लैण्ड-के विरुद्ध स्वातन्त्र्य-युद्ध छेड़ दिया और उसमें विजय प्राप्त की। उसी समयसे अमेरिकाके स्वतन्त्र जीवनका आरम्भ हुआ। इंग्लैण्डके जुल्मसे अमेरिका मुक्त हो गया और अब भी अमेरिकन राजनीतिज्ञ सावधान रहते हैं कि किसी एकतन्त्र सत्ताका जुल्म फिर अमेरिकापर न हो। 'दि लेस गवर्नमेंट दि बेटर' (शासन जितना कम हो उतना ही अच्छा) इस सिद्धान्तके अनुसार अमेरिकाने अपनी राजनीतिक शृंखला ऐसी बनायी है कि राजसत्ता अल्पसंख्यक व्यक्तियोंके नहीं, किन्तु बहुजन-समाजके हाथमें रहे।

साधारण जनताको अवसर

अमेरिकन लोकतंत्रकी भित्ति है मानवी समता। सबको समान अवसर मिलनेसे प्रत्येक व्यक्तिका उत्कर्ष हो सकता है और साधारण मनुष्योंमेंसे भी असाधारण पुरुष उत्पन्न हो सकता है, यह अमेरिकन लोगोंकी धारणा है। अब भी लोगोंमें यह महत्त्वाकांक्षा बनी हुई है कि हर एक मनुष्य अमेरिकाका अध्यक्ष हो सकता है और इसी दृष्टिसे वे अपनी योग्यता बढ़ाते रहते हैं। साधारण मनुष्यका भी अपनी प्रसुप्त शक्तियोंपर दृढ़ विश्वास रहता है। इन्हीं कर्तृत्व-शक्तियोंका विकास होनेके लिए वहाँ सबको समान अवसरोंके प्राप्त होनेका सिद्धान्त प्रस्थापित हुआ है। राजनीतिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र, शिक्षाक्षेत्र, आदि सबमें सबको समान अवसर मिलनेसे आजतक अमे-रिकाके साधारण मनुष्योंमेंसे असाधारण पुरुषोंका प्रादुर्भाव हो सका है। इसी कारण इस देशका 'लैण्ड आफ ऑपारच्यू-निटी' (उन्नतिका समान अवसर प्रदान करनेवाली भूमि')

इन गौरवपूर्ण शब्दोंसे वर्णन किया जाता है। यूरोपकी समाज-रचनामें सत्ताधारी श्रेष्ठ पुरुषोंके पैरोंतले साधारण लोग कुचले जाते हैं, किन्तु जब वे अमेरिका पहुँचते हैं, तब उन्हें आत्मोन्नतिका सुअवसर मिल जाता है।" इसीसे जनप्रवाह यूरोपसे अमेरिकाकी ओर प्रवाहित होता गया।

व्यवहारमें समताका अनुभव

मानवी समता और सुअवसरकी स्वतन्त्रता, लोकतंत्रके इन दो मूलभूत सिद्धान्तोंकी छाया अमेरिकनोंके जीवन और विचारोंपर फैली हुई है। सर्वसाधारणकी शिक्षाके बिना लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त यूरोपीय राष्ट्रोंसे पहले अमेरिकाने जाना है और तदनुसार सारे समाजको शिक्षित बनानेके लिए उसने प्राथमिक और उच्च अनिवार्य शिक्षाकी व्यवस्था की है। यूरोपमें उच्च शिक्षा पानेमें अमीरोंके लड़के ही समर्थ हो सकते हैं। अमेरिकाने अमीर-गरीब सबके लिए निःशुल्क शिक्षाका प्रबन्ध कर दिया है। इस प्रबन्धसे गरीबोंको भी अपनी उन्नति करनेका सुभीता हो गया है। इस प्रकार शिक्षाक्षेत्रमें अमेरिका लोकतंत्रका सिद्धान्त काममें ला सका है।

मानवी समताका सिद्धान्त भी वहाँ व्यवहारमें पद पदपर देख पड़ता है। अमेरिकन लोग इस बातके लिए सदा सावधान रहते हैं कि इंग्लैण्डकी तरह अमेरिकामें अमीर-उमरावों (लार्ड्ज़, ड्यूक्स) का दल तैयार न हो जाय। धनी-निर्धन, श्रेष्ठ-कनिष्ठ, उच्च-नीच आदि भेद यथासम्भव दृग्गोचर न हों, इसकी उन्हें चिन्ता रहती है। काम समाप्त होते ही मालिक अपने नौकरके साथ बराबरीका बर्ताव रखता है। प्रोफेसर अपने छात्रके साथ समता और आदरका व्यवहार करता है। इस व्यवस्थासे निम्न श्रेणीके काम करनेवाले साधारण मनुष्य-

में भी स्वाभिमान और आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है, क्योंकि वह जानता है कि संसार उसके साथ बराबरीके नाते बरत रहा है। कनिष्ठताकी भावना (इनफीरियारिटी काम्प्लेक्स) न रहनेके कारण वह अपने अफसरसे हिचक नहीं रखता और निडर होकर बातें करता है। मानवी-स्वभावके विचारसे यह नियम सर्वत्र लागू नहीं हो सकता, यह बात सही है, किन्तु वहाँका यह सामान्य नियम है। रेलमें भी वहाँ पहिला, दूसरा या तीसरा दर्जा नहीं होता। एक ही दर्जेमें सब यात्रा करते हैं। इंग्लैण्डकी स्थानिक सवारियों (ट्यूब) में भी वर्गभेद है, परन्तु अमेरिकामें नहीं है। साधारणतः सिनेमा-थियेटरोंमें भी दो ही दर और दर्जे होते हैं। अदना आदमी भी आगेकी कुर्सीपर श्रीमान्‌के कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर बैठ सकता है। सारांश, सम्पत्ति और दर्जेके विचारसे यद्यपि अमेरिकामें वर्गपद्धति उत्पन्न हो रही है, तथापि सामाजिक जीवनमें उसका यथा-सम्भव निर्मूलन करनेकी अमेरिकनोंमें स्वाभाविक प्रवृत्ति देख पड़ती है।

अमेरिकन लोकतंत्रका व्यापक स्वरूप जनसाधारणके जीवनका सर्वाङ्गीण विकास करना और उनके सुख-सुभीतेके साधन प्रस्तुत करना है। इस लक्ष्यको मान लेने पर हर एक सार्वजनिक हितका कार्य करते समय नेताओंकी यही दृष्टि रहती है कि इस कार्यसे जनसाधारण और गरीबोंको क्या सुख होगा और उनका कितना हित होगा। वहाँ यह मत्सरयुक्त भाव नहीं है कि सुख और विलास श्रीमान् ही भोगा करें और गरीब दिन-रात मेहनत-मजदूरी करें, आधे पेट रहें तथा केवल शरीर ढँकनेके लिए ही कपड़ा पहनें। वहाँके लोग सोचा करते हैं कि श्रीमानोंको जो

जनसाधारणके हितकी दृष्टि

सुख-सुविधाओंकी वस्तुएँ प्राप्त हैं, वे अथवा वैसी ही गरीबोंको भी किस प्रकार प्राप्त हों। फोर्डकी कर्तृत्वशक्तिके प्रभावसे गरीब खेतिहर और मजदूर भी मोटर रख सकता है। चाहे मजदूरके पास दो बार खानेके लिए अन्न भले ही न हो, किन्तु वह मोटर रखता है! यह चमत्कार वहीं देख पड़ता है। छुट्टीके दिन विश्राम तथा खेलकूद करनेके लिए सरकारने, व्यापारियोंने और परोपकारी संस्थाओंने पास पास अनेक उद्यान बनाये हैं। चाहे कितना ही गरीब युवक क्यों न हो, सप्ताहमें एक बार वह सिनेमा देख आता है। सन् १९२९ से ही अमेरिकामें मंदी ('डिप्रेशन') है, परन्तु साधारण गरीबोंका रहन-सहन और पोशाक देखकर विदेशी इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि इन्हें किसी बात की कमी है। न्यूयार्क संसारके बहुत बड़े नगरोंमें है। वहाँकी जनसंख्या साठ लाख है। परन्तु वहाँकी व्यवस्था यह है कि पाँच सेंट किराया देकर अदना आदमी भी उस विशाल नगरके एक छोरसे दूसरे छोरतक जा सकता है। जो यात्री अमेरिकामें कुछ वर्षोंतक रह चुका है वह जब यूरोप जाता है, तो दोनों जगहोंके समाजका उक्त विरोध तुरन्त उसके ध्यानमें आ जाता है।

सबको योग्यता दिखानेका सुभीता

समाज-व्यवहारके दो परस्पर विरोधी तत्त्व हैं—लोकतन्त्र और एकतन्त्र। लोकतन्त्रके सिद्धान्तानुसार अखिल समाजका व्यवहार हो, इसीका प्रयत्न अमेरिकन समाज कर रहा है। कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूर भी तो विकास-क्षम मानव हैं। उनके मस्तिष्कमें विचारोंको स्थान है, कारखानेके उत्कर्षमें उनका उपयोग कर लेना चाहिये, यही अमेरिकन कारखानेवाले चाहते हैं। इसीसे कारखानोंके सुधारमें मजदूरोंकी क्या क्या

सूचनाएँ हैं, इसपर सञ्चालक बराबर ध्यान दिया करते हैं। मैंने अमेरिकन कारखानेके एक अधिकारीसे पूछा कि अमेरिकन कारखानोंकी सफलताका क्या कारण है? उसने दो उत्तर दिये। एक तो यह कि हम मजदूरोंकी शारीरिक शक्तिकी तरह उनकी मस्तिष्क-शक्तिका भी उपयोग कर लेते हैं। दूसरा यह कि अन्य सब व्यवहारोंमें भी हम इस सिद्धान्तको काममें लाते हैं। वहाँके कारखानोंका प्रधान अधिकारी केवल स्वयंप्रसूत आज्ञाएँ निकालकर सबको यन्त्रोंकी तरह नहीं चलाता; वह अधीनस्थ लोगोंके साथ विचार-विनिमय करता और अपने तथा उनके अच्छे विचारोंको मिलाकर सबकी बुद्धिमत्ताका यथेष्ट उपयोग कर लेता है। इस पद्धतिसे उसे स्वाभाविक रूपसे सबकी सहकारिता और सहानुभूति प्राप्त होती है। अमेरिकाके नये प्रेसिडेंट रूजवेल्टने अपने मन्त्रिमण्डलमें सब प्रकारके लोगोंको चुना है। उसमें युनिवर्सिटियोंके प्रोफेसर हैं, यशस्वी व्यापारी हैं और पेशा करनेवाले राजनीतिक नेता भी हैं। वे सबके तात्त्विक और व्यावहारिक विचारोंकी छानबीन कर तथा राष्ट्रके असामान्य बुद्धिमानोंका उपयोग कर राजशासनकी व्यवस्था करते हैं।

अमेरिकन जनतन्त्रकी इस प्रकार व्यापक रूपरेखा है। यह अमेरिकन समाजका अनुकरणीय और उज्ज्वल पहलू है। दूसरा

अवसरस्वातंत्र्यका दुरुपयोग

पहलू ठीक इससे विपरीत है। स्वतन्त्रता, समता और अवसर-स्वातंत्र्यका जब अच्छे कामोंके लिए उत्तरदायित्व समझकर उपयोग किया गया, तब तो समाजकी बराबर उन्नति ही हुई और जन-साधारणका भी कल्याण हुआ; परन्तु जब स्वतन्त्रता, समता और अवसर-स्वातंत्र्यका स्वार्थी लोगोंने अपना मतलब साधने-

के लिए उपयोग किया, तब अमेरिकन समाजका बहुत ही अपकर्ष हुआ और जनतन्त्र तथा सर्वसाधारणके हितके लक्ष्यसे अमेरिकन समाज च्युत हो गया। अमेरिका उर्वर और सम्पन्न देश है। वहाँ कर्तृत्वशक्तिका विकास करनेका अवसर प्राप्त होनेके कारण कार्नेगी, फोर्ड, राकफेलर जैसे लोग चमक उठे और उन्होंने राष्ट्रकी आधिभौतिक सम्पत्तिकी वृद्धि की। परन्तु वह सब सम्पत्ति उनकी अपनी मिलकियत हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रकी नब्बे प्रतिशत सम्पत्ति मुट्ठीभर लोगोंके हाथ आ गयी और जो देश राजसत्ताके विरुद्ध है, उस देशके ये ही लोग राजा बन गये, और वे तैल-पति, लौह-पति* कहे जाने लगे। कारखानेदारोंने मजदूरों और शास्त्रज्ञोंके परिश्रम तथा बुद्धिमत्ताका उपयोग कर अपना उत्कर्ष कर लिया, परन्तु उन्होंने मजदूरों तथा शास्त्रज्ञोंको उनका उचित अंश नहीं दिया। इस प्रकार साधारण लोगोंको राजनीतिक कार्यक्षेत्रमें आगे बढ़नेका अवसर अवश्य मिला; परन्तु इस अवसर-स्वातंत्र्यका कितने ही लोगोंने दुरुपयोग कर, लोकहितकी उपेक्षा कर, अपने ही पाकिट गरम कर लिये।

स्वातन्त्र्य उत्तरदायित्वपूर्ण कैसे हो, समानता लोकहित-कारी कैसे हो और अवसर-स्वातन्त्र्य नैतिक बन्धनोंसे कैसे आबद्ध हो, ये ही तीन प्रश्न अमेरिकन समाजके सम्मुख हैं और उनको हल करना उसने आरम्भ कर दिया है।

---

* Oil King, Iron King.

चौथा अध्याय

कालके साथ धर्मसंस्थाकी अभिवृद्धि

यूरोपसे जाकर लोग अमेरिकामें बसने लगे, इसके कई कारण हैं। कितने ही लोग तो इस उद्देश्यसे वहाँ जाकर बस गये कि व्यक्तिगत मतके अनुसार उन्हें धर्माचरण करनेमें स्वतन्त्रता प्राप्त हो। तभीसे अमेरिकामें धर्मस्वातन्त्र्यकी प्रथा प्रचलित हुई। जो राजनीतिक दल अधिकारारूढ़ हो, वह अपने धर्मका पक्ष लेकर दूसरोंपर जोर-जबर्दस्ती न करे, इस विचारसे अमेरिकन शासनव्यवस्थामें धर्मसे राजनीति पृथक् कर दी गयी है। सरकारी स्कूलोंमें धर्मकी शिक्षा नहीं दी जाती। धर्म-शिक्षाकी व्यवस्था बालकोंके अभिभावक अपनी इच्छाके अनुसार कर सकते हैं। जिस स्कूलमें किसी एक ही धर्मके विद्यार्थी हों, उन्हें बाइबिल पढ़नेकी आज्ञा दी जाती है, परन्तु उसपर कोई व्यक्तिगत मतके अनुसार भाष्य नहीं कर सकता। कैथोलिक पन्थी बड़े धर्मनिष्ठ होते हैं। उन्होंने अपने अलग स्कूल-कालेज खोले हैं। उन्हें सरकारी खजानेसे सहायता नहीं मिलती। बहुसंख्यक लोग प्रोटेस्टैण्ट हैं और उनसे कम कैथोलिक पंथी तथा उनसे भी कम यहूदी या ज्यू लोग हैं।

धर्म और राजनीति

साहित्य, डाक्टरी, इंजीनियरिंगकी ही तरह धर्माध्ययन करनेके लिए भी कालेज या विद्यालय हैं। उन कालेजोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको एम्. ए., पी-एच. डी. तक पदवियाँ मिलती हैं। इसके बाद वे धर्मोपदेशकका कार्य कर सकते हैं। सारांश, धर्मोपदेशक होनेकी इच्छा

धार्मिक विद्यालय

रखनेवाले व्यक्तिको आधुनिक उच्च शिक्षाकी सब सुविधाओंके साथ साथ ऊपरसे धर्म-शिक्षा भी मिलती है। इस धर्मशिक्षामें तुलनात्मक धर्मशिक्षा (कम्पैरेटिव रिलीजन्स) की भी एक शाखा रहती है। धर्मोपदेशक होनेवालोंको वहाँ भी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। इन धर्मपीठोंमें दी जानेवाली शिक्षाका संकुचित या व्यापक होना विशिष्ट शिक्षा-संस्थाओंकी नीति तथा शिक्षकोंके स्वभाव-वैचित्र्यपर निर्भर करता है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्रकी प्रगतिशील संस्थाओं और व्यक्तियोंका प्रभाव आनेवाले पच्चीस सालकी धर्मशिक्षापर अधिक मात्रामें पड़ेगा। धर्मका केन्द्र समझे जानेवाले भारतमें साधारण धर्माधिकारियोंका ज्ञान कुछ थोड़ीसी संहिताओंतक ही मर्यादित रहता है। सो भी उनके अर्थके ज्ञानका अंतर्भाव उसमें शायद् ही होता हो। अर्थ समझते हुए वेदाध्ययन करनेवाले पंडित थोड़े ही हैं और आधुनिक शिक्षाके साथ साथ धर्मशिक्षा ग्रहण करनेवाले तो और भी कम हैं। इस कार्यक्रमसे धर्म और अध्यात्मका उत्कर्ष किस प्रकार होता है यह स्पष्ट ही है। अध्ययन और शिक्षाप्रणालीकी दृष्टिसे अमेरिकन धर्मोपदेशककी शिक्षा अधिक व्यापक होती है। हम लोगोंको, जो आध्यात्मिक उन्नतिमें आगे बढ़े हुए हैं, अपनी धर्मशिक्षाकी व्याख्या और भी अधिक विस्तृत करनेका जो उपदेश अमेरिकासे मिलता है, वह विशेष महत्त्वका है। आधुनिक शिक्षा, शास्त्र, संस्कृति, राजनीति, समाजके भीतर होनेवाली हलचल इत्यादिकी दृष्टिसे अमेरिकन धर्मोपदेशक सतत सजग एवं सुसंस्कृत होते हैं। इसीसे उनके व्याख्यान सुननेके लिए प्रायः विद्वान् और शिक्षित लोग ही जाते हैं। शिक्षा, सामाजिक नीति, युद्ध अथवा शांति, समाजवाद या लोकतंत्र इत्यादि राजनीतिक प्रश्नोंके संबंधमें भी

ये धर्मोपदेशक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं। नतीजा यह होता है कि सामान्य जनतापर उनका अच्छा नैतिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्तिगत जीवनके लिए यह धर्माधिकारी समाजके व्यक्तियोंपर निर्भर नहीं रहता। स्थानीय धर्मसंस्था (चर्च) ही उसका रोटीका सवाल हल करती है। इस कारण वह समाजमें स्वाभिमानके साथ रह सकता है। जजमानके सम्मुख सिर नीचा करनेकी उसे आवश्यकता नहीं।

अमेरिकन चर्चोंका कार्यक्षेत्र

चर्चका कार्यक्षेत्र प्रार्थनातक ही मर्यादित नहीं है। 'चर्च' का अर्थ दिन दिन अधिक व्यापक हो रहा है। आध्यात्मिक जीवन मानसिक जीवनपर और मन शारीरिक स्वास्थ्यपर निर्भर है। इसलिए शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्यका अंतर्भाव भी आध्यात्मिक कार्यक्रममें किया जाता है। आजकल जो चर्च खोले जाते हैं उनमें प्रार्थना और व्याख्यानके लिए जगह तो सुरक्षित है ही पर उससे भी दुगुनी तिगुनी जगह और और कार्योंके लिए सुरक्षित रहती है। इसमें युवकोंके लिए कसरतकी व्यवस्था, तैरनेके तालाब, स्नानगृह, उपाहारकी व्यवस्था, चर्च-मंडलके लिए कमरे, कलाओंका अध्ययन करनेके लिए छोटासा स्टूडियो इत्यादि व्यवस्था रहती है। प्रार्थनाके लिए न आनेवाले सज्जन भी उपर्युक्त व्यवस्थाओंका उपयोग कर सकते हैं। मूल कल्पना यह है कि मनुष्यको ऊपर लिखे कार्योंसे मानसिक स्वास्थ्य और सुखकी प्राप्ति होना ही उसके अध्यात्म-मार्गमें लगनेके समान है। इन व्यापक कार्यक्रमोंके कारण धर्मोपदेशको रुक्ष समझने-वाली युवक-मण्डलीको भी चर्चके नैतिक क्षेत्रमें आनेका अवसर मिलता है और धीरे धीरे वह अध्यात्मशील बन जाती है।

धार्मिक विश्वासकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि अमेरिकामें वृद्ध और युवावर्गमें विरोध है। वृद्ध पीढ़ी धर्ममतकी दृष्टिसे अधिक संकुचित वृत्तिकी है। ईसा और ईसाई धर्मके बाहर 'मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता, यह उनकी दृढ़ भावना है। उसीका उपसिद्धान्त विदेशोंमें धर्म प्रचारार्थ गये हुए पादरियोंको आर्थिक सहायता देकर उत्साहित करना और गैर-ईसाइयोंको ईसाई बनाना है। इसके विपरीत तरुण दलकी वृत्ति अधिक विनयपूर्ण तथा उदार है। ईसाई धर्म संसारका एक पंथ है पर उसके सिवा संसारमें और और धर्म भी प्रचलित हैं जो उतने ही महत्वपूर्ण एवं उसकी बराबरीके हैं। मिशनरियोंका विदेशोंमें जाकर लोगोंका धर्म-परिवर्तन कराना अहम्मन्यता और अन्यायका प्रदर्शन करना है। 'पादरियोंका धर्म-प्रचार' शीर्षक विषयपर अनेक गिर्जाघरोंमें मेरे व्याख्यान हुए। उस समय वहाँ उपस्थित कुछ युवक-युवतिओंके मुँहसे जो उद्गार निकले वे महत्वपूर्ण और सुचिन्ह-दर्शक हैं। एक शिक्षित युवतीने कहा 'आपने हमारे धर्म-प्रचारकोंके संबंधमें जो स्पष्ट बातें कही हैं उन्हें मैं पसंद करती हूँ।'* एक और नगरमें कालेजमें पढ़नेवाला एक युवक कहने लगा कि 'हम लोगोंकी यह धारणा हो गयी है कि सत्यका ज्ञान केवल हमें ही है, दूसरे लोग कुछ नहीं जानते और इसी धारणाके कारण हम लोगोंमें एक प्रकारका दंभ उत्पन्न हो गया है' † सारांश यह कि संकु-

युवावर्गका धर्म

---

* I appreciate your frank remarks on our missions.

† We are the most conceited people on earth and believe that we alone know the truth and none else.

चित और घमंडी धर्मवृत्तिके लोग हमारे देशकी तरह वहाँ भी हैं, किन्तु तरुणवर्गमें नयी प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है। ईसाई धर्मका, हिंदू धर्मका, मुसलिम धर्मका या और किसी विशिष्ट धर्मका संसारमें प्रसार होना चाहिये, ये बातें कहनेके दिन अब गये। अब तो इस बातपर विचार करनेकी आवश्यकता है कि सब धर्मोंके सहयोग एवं परस्परकी सहिष्णुतासे अध्यात्मकी ज्योति किस तरह अखंड रखी जा सकती है।

ऐसी ही उदार प्रवृत्तिके धार्मिक नेता अमेरिकामें उत्पन्न हो रहे हैं और उनके मतकी छाप सामान्य जनतापर भी धीरे धीरे पड़ रही है। उनके समाजमें ऐसे लोगोंकी भी संख्या काफी है जो चर्चमें जाना पसन्द नहीं करते पर जिन्हें हम धर्मप्रेमी कह सकते हैं। इन लोगोंका प्रभाव धर्मसंस्थापर न होकर व्यक्तिगत आध्यात्मिक जीवनपर अधिक है।

आबादीकी दृष्टिसे कैथोलिक और यहूदी लोग अल्पसंख्यक समूह माने गये हैं। किन्तु वहाँ शासन-व्यवस्थामें धर्मके अनुसार भेद नहीं किये गये हैं। तात्विक दृष्टिसे और प्रति दिनके कामकाजमें भी धर्म भेदको अधिक महत्व नहीं दिया जाता। खास खास धर्मके लोग अल्पसंख्यक हैं, इस कारण कौंसिलोंमें या शासन-कार्यमें उनके लिए स्थान सुरक्षित रखे जाते हों ऐसी बात नहीं है। हर एक मनुष्य अपनी योग्यताके अनुसार ही राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें अपना उपयुक्त स्थान बना लेता है। सामान्यतया यह सब होते हुए भी धर्म-भेदकी भावना सर्व-साधारणके हृदयसे हमेशाके लिए दूर हो गयी हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। राष्ट्रपतिकी जगहके लिए प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक दो उम्मीदवार खड़े हुए हों तो कैथोलिकके चुने

अल्पसंख्यकोंका प्रश्न

जानेकी संभावना साधारणतया कम ही है। आल् स्मिथ् नामक एक उम्मीद्वार इसी कारणसे राष्ट्रपति न हो सका। पर वह प्रांतका अध्यक्ष निर्वाचित् हो गया। यह सब होते हुए भी अल्प-संख्यक समूहोंने पृथक् निर्वाचनकी माँग कभी पेश नहीं की, क्योंकि वैसा करना राजनीतिक तत्वोंके विरुद्ध समझा जाता है।

सारांश यह कि धर्म अब ऐसी संस्थाके रूपमें नहीं रह गया है जो धीरे धीरे अपने आप नष्ट हो जाय। वह जिन्दा रहे, इसीलिए नेताओंने उसमें आधुनिक समयोपयोगी परिवर्तन करना शुरू किया है। इस कारणसे नयी पीढ़ीको यह नवीन धर्म आकर्षक प्रतीत हो रहा है।

पाँचवाँ अध्याय

स्त्रियोंका जीवन और कुटुंब-प्रथा

अतिथि-सत्कारकी प्रवृत्ति

अमेरिकामें भारतीय स्वतंत्रतापूर्वक रह सकते हैं। अत्यंत ऊँचे दर्जेके मनुष्यका साथ मिलनेके लिए अपना भी दर्जा ऊँचा चाहिये, यह बात सत्य होते हुए भी वहाँके अच्छे लोगोंसे परिचय प्राप्त करनेमें अधिक कठिनाई नहीं पड़ती। अन्य संस्कृतिवाले मनुष्यके प्रति अमेरिकन स्त्रियोंका मन दूषित नहीं रहता। हिंदुस्थानी विद्यार्थियोंको भी उनकी सहायता मिल जाती है। वे अपने समाजको विदेशियोंकी दृष्टिमें अच्छा दिखलाना चाहती हैं और उन्हें ऊपर ऊपरके दोष देखकर ही न जाने देकर अपनी

संस्कृतिकी अच्छीसे अच्छी बातें दिखानेके लिए उत्सुक रहती हैं। इस दृष्टिसे भारतीय लोगोंको घर बुलाकर अतिथि-सत्कार करने और इसके लिए अपना समय, श्रम, तथा धन खर्च करनेमें अमेरिकन स्त्रियोंको गर्व मालूम होता है। इसी प्रकार विदेशी संस्कृतिका परिचय प्राप्त करने और विदेशियोंके विचार जाननेकी दृष्टिसे उनके साथ जानपहिचान करनेकी भी उनकी इच्छा रहती है। यही कारण है कि अमेरिकन समाजमें हिलमिलकर उनकी स्थितिका सूक्ष्म निरीक्षण करनेका अच्छा मौका बाहरवालोंको मिल जाता है।

भारतमें स्त्रियों और पुरुषोंके बीच जो विशेष अन्तरसा मालूम पड़ता है, वैसा वहाँ नहीं मालूम होता क्योंकि वहाँ स्त्री और पुरुष हरएक प्रसंगपर एक दूसरेसे मिलते जुलते रहते हैं। अमेरिकन स्त्रियोंमें बातचीत और व्यवहारमें संकोचका अभाव, चपलता, ढिठाई, साफ सुथरा रहना, सौंदर्याभिरुचि, पुरुषोंके साथ चाहे जिस क्षेत्रमें कार्य करनेको तैयार रहना, यात्राका शौक, कष्ट-सहिष्णुता, अपने ध्येयके लिए अपने ही ऊपर जिम्मेदारी लेनेकी तत्परता, निर्भयता, इत्यादि गुण विशेष रूपसे दिखलाई देते हैं।

प्रमुख गुणदोष

दोषकी दृष्टिसे देखने पर वहाँकी स्त्रियोंमें दो-तीन दोष खास तौरपर देख पड़ते हैं। संभव है ये दोष न हों, केवल भिन्न संस्कृतिके दृष्टिकोणसे उनकी तरफ देखनेके कारण ही हमें ये दोषवत् मालूम पड़ते हों। दोषोंका उल्लेख यहाँ कर देनेका मुख्य कारण यह है कि जिसमें वहाँकी बातोंका अंधानुकरण हम लोग न करें। वहाँकी स्त्रियोंका बनना-ठनना कभी कभी सीमाके बाहर हो जाता है। आधे आधे घंटेके बाद मुँहमें पाउडर लगाकर आईनेमें देखना भारतीय दृष्टिको अच्छा नहीं लगता। इसी तरह

कपड़ों वगैरहपर वहाँकी स्त्रियाँ बहुत खर्च करती हैं। ज़ेवरोंकी विविधतापर उनका बड़ा ध्यान रहता है। पर ज़ेवरोंकी उनकी अभिरुचि हमें पसंद न होगी। वहाँकी स्त्रियोंका तीसरा दोष उनकी अविवाहित रहनेकी प्रवृत्ति है, यद्यपि यह प्रवृत्ति व्यापक रूपसे प्रचलित नहीं है। कुछ व्यवसाय ऐसे हैं कि एक बार उनमें पड़कर आर्थिक स्वातंत्र्य मिलते ही वहाँकी स्त्रियोंको विवाह करनेकी आवश्यकता ही नहीं मालूम पड़ती। मुझसे जो जो स्त्रियाँ मिलीं, वे सब ऊँचे दर्जेकी और शीलवती थीं। पर सर्वसाधारणमें यदि यह प्रवृत्ति फैल गयी तो समाजके लिए इसका परिणाम अनिष्टकर होनेकी संभावना है।

गत पचीस-तीस वर्षोंसे वहाँकी स्त्रियोंको ऊँचे ऊँचे पद प्राप्त होने लगे हैं। पर इस अधिकार और जिम्मेदारीको वे अभी अच्छी तरहसे नहीं निभा सकी हैं। अधिकार-प्राप्तिके साथ गर्व और अहंकार ये दो दोष उनमें उत्पन्न होते हैं, विनय और उपकार-बुद्धि नहीं देख पड़ती। इसका कारण यह है कि स्त्रियोंमें अबतक एक प्रकारकी जो हीनत्वकी भावना थी, इससे अधिकार-पदपर वे अपना हक़ नहीं समझती थीं। संभव है कि ऐसी स्थितिमें अधिकार-पद मिलते ही बड़प्पन दिखानेकी यह मानसिक प्रवृत्ति हो सकती है। यह प्रवृत्ति शीघ्र ही नष्ट होगी। एक और दोष उनमें यह है कि वे पुरुषोंकी बराबरी करनेके लिए उनकी बाहरी बातोंका अनुकरण करतीं हैं (जैसे सिगरेट पीना)। यह भारतीय दृष्टिको अच्छा नहीं लगता। वहाँकी प्रौढ़ और समझदार स्त्रियोंमें सौभाग्यसे यह प्रवृत्ति नहीं देख पड़ती, वे विचार, बौद्धिक विकास, ध्येयनिष्ठा, कर्त्तव्यशीलता, सामाजिक दायित्वकी जानकारी इत्यादि पुरुषोंके गुणोंका अनुकरण करतीं हैं।

विद्या, कला और संस्कृतिकी दृष्टिसे अमेरिकाकी स्त्रियाँ पुरुषोंके बराबर ही हैं, ऐसा कहा जा सकता है। पहले विद्याके

सुसंस्कृत जीवन

क्षेत्रको ही लीजिये। स्त्रियाँ शिक्षक हैं, प्रोफेसर हैं, ग्रन्थकार हैं, पत्रोंकी संवाददात्री हैं, पत्रकार हैं, अन्वेषक हैं। नया नया ज्ञान प्राप्त करनेकी उनमें हवस है। मैं जब वहाँ था, तब मेरे पास दो स्त्रियां संस्कृत सीखनेके लिए आती थीं। उनमें एक बूढ़ी नर्स थी और सिर्फ हवसके लिए बुढ़ौतीमें भी संस्कृत सीखना चाहती थी। वह कहती 'नाटक-सिनेमामें क्या कम पैसा बरबाद होता है? वही अगर इधर खर्च किया जाय तो कुछ नयी बात तो आ जायगी'। दूसरी स्त्री अधेड़ थी और एक जगह 'प्राइवेट सेक्रेटरी' के पदपर नियुक्त थी। वेदान्तका थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त करनेकी उसे बड़ी इच्छा थी और इस इच्छापूर्तिके लिए वह संस्कृत सीखना चाहती थी। इस बातका जानबूझकर यहाँ निर्देश करनेका कारण यह है कि हम लोग समझते हैं कि वहाँकी स्त्रियाँ ऐश-आराम और नाच-रंगमें ही लगी रहती हैं। विषय-वासनाके जीवनको ही अमेरिकाकी स्त्रियाँ जीवनका सबकुछ नहीं समझती। जिस प्रकार स्त्रियोंने विद्यामें प्रगति की है, उसी प्रकार संगीत, चित्रकला आदिमें भी वे पुरुषोंकी बराबरी करती हैं। इन क्षेत्रोंमें वे हमारे यहाँकी स्त्रियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक भाग लेती हैं, यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं। शिक्षाके कारण उनमें एक प्रकारकी अभिरुचि उत्पन्न हो गयी है और उसके लिए वे धन खर्च करनेको भी तैयार रहती हैं।

हमारे देशकी स्त्रियोंमें अपनेको प्राप्तवयस्क दिखलानेकी इच्छा शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। मैं प्रौढ़ हो गयी हूँ, यह

दिखाना उन्हें अच्छा मालूम होता है। इसके विपरीत अमेरिका-

यहाँकी स्त्रियोंसे तुलना

में बूढ़ी स्त्रियोंको भी जवानीका जोश दिखाने-की इच्छा रहती है। वहाँ एक विद्यापीठमें संसारशास्त्र सीखनेवाली एक स्त्रीसे मेरी भेंट हुई। मैंने पूछा 'इस बुढ़ापेमें तुम्हारी सीखनेकी इच्छा देखकर हम युवकोंको कौतुक होता है।' उसने जवाब दिया 'मैं बूढ़ी थोड़े ही हूँ।' किसी स्त्रीसे उसकी उम्र पूछना या उसे बूढ़ी कहना उसका अपमान करनेके बराबर समझा जाता है।

हमारे यहाँ कालेजमें पढ़नेवाली स्त्रियोंमें दिखाऊपन, नजाकत, वेषभूषा सम्बन्धी आडंबर इत्यादि दोष दिखाई देते हैं। वहाँकी स्त्रियोंमें चपलता, बातचीत और कामकाजमें तेजी, खेल-कूदका शौक, ये गुण दिखाई देते हैं। हमारे यहाँकी स्त्रीशिक्षाका हेतु प्रायः यही रहता है कि अमीर पति मिले और सुखसे उम्र कट जाय, अथवा किसी वकील, डाक्टर, प्रोफेसर या अफ्सरकी पत्नी होकर काम कराने-के लिए चार नौकर मिलें और आरामसे जीवन व्यतीत हो। इस कारण एक बार जब शादी हो जाती है, तब फिर स्त्रीकी शिक्षाका कुछ भी उपयोग नहीं रह जाता। इसके विपरीत अमेरिकामें स्त्री-शिक्षाका उपयोग समाजकी भलाई और समाजके कार्योंके लिए होता है। सुख और अमीरी तो सभी चाहते हैं, फिर भी अमीर एवं शिक्षित स्त्रियाँ अपनी अमीरी और शिक्षाका फायदा समाजको देनेके लिए तैयार रहती हैं। हमारे यहाँकी स्त्रियोंमें शालीनता और विनय, ये गुण दिखाई देते हैं, तो निस्संकोच होनेका भाव और ढिठाई ये गुण अमेरिकाकी स्त्रियोंमें देख पड़ते हैं। इन दोनों गुणोंका मनोहर मिलन होना चाहिये। हमारे यहाँकी स्त्रियोंका सारा ध्यान

प्रायः घर और कुटुम्बकी ओर रहता है, पर वहाँकी स्त्रियोंका समाज तथा जगत्‌की तरफ अधिक रहता है। इस कारण जब वहाँकी स्त्रियोंसे पुरुष बातें करने लगते हैं, तब बातचीतका विषय अधिक व्यापक रहता है। तात्पर्य यह है कि इस प्रकारकी तुलना करनेके समय दोनों समाजकी शिक्षा और संस्कृतिकी दृष्टिसे समान दर्जेकी स्त्रियोंकी ही तुलना करनी चाहिये।

हमारे यहाँकी स्त्रीशिक्षाका उपयोग व्यक्तिगत सुखके लिए अधिक होता है, वहाँ अमीरीका उपयोग जिज्ञासातृप्ति, संसारयात्रा, कला संबंधी चर्चा इत्यादिमें होता है। हमारी स्त्रियोंका ध्यान व्यक्तिगत और धार्मिक कार्योंकी तरफ अधिक रहता है, पर उनकी स्त्रियोंका लक्ष्य धार्मिक संघटन, चर्च संबंधी काम, भूतदयाके सामाजिक कार्य आदिकी तरफ रहता है। आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो हमारे यहाँ सुशिक्षित स्त्री भी पुरुषोंपर निर्भर रहना चाहती है, और जहाँ बहुत जरूरत होगी वहीं आर्थिक दृष्टिसे स्वावलंबी होती हैं; किन्तु वहाँकी सर्वसाधारण स्त्रियोंमें भी आर्थिक स्वातंत्र्यकी महत्वाकांक्षा रहती है।

स्त्रियोंका कार्यक्षेत्र

वहाँकी स्त्रियाँ सारे क्षेत्रोंमें कार्य करती हैं। फिर भी अभी तक जिम्मेदारी और बड़े अधिकारोंके काम पुरुष ही देखते हैं। अब कुछ दिनोंसे उन जगहोंपर योग्य स्त्रियोंको रखनेकी चाल चल पड़ी है। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टके कार्यकालमें मिस पर्किन्सको 'लेबर' विभागका प्रधान पद मिला है। पैसा कमानेकी दृष्टिसे अमेरिकामें भारतीय विद्यार्थियोंको काम करनेकी जो क़ानूनन मनाही थी, वह ढीली करके उसी स्त्रीने उन्हें काम करनेकी कानून द्वारा सुविधा प्रदान की

है। अब भी कौंसिल, राज्यव्यवस्था, राजनीति इत्यादिमें स्त्रियों-का प्रवेश नहीं हो सका है। शिक्षा, समाजसेवा, चर्च, शांति-संबंधी आंदोलन, कला और संस्कृति विषयक संस्थाएँ इत्यादि ही वहाँ स्त्रियोंके क्षेत्र हैं। रूसमें इस प्रकारका निर्बंध नहीं है। वहाँ जिन जिन क्षेत्रोंमें पुरुष काम कर सकते हैं, उन उन क्षेत्रोंमें अब स्त्रियाँ भी काम करने लगी हैं।

स्त्रियोंके विशेष उद्योग-व्यवसाय कारखानोंमें यंत्र संबंधी काम और दूकानोंमें बिक्रीके काम हैं। टाइपिस्ट, प्राइवेट सेक्रे-टरी, प्राथमिक शिक्षक आदिके पदोंपर भी वे प्रायः नियुक्त होती हैं। माध्यमिक शिक्षामें स्त्री और पुरुष समान हैं।

अधिकारके लिये आंदोलन

स्त्रियाँ विशेषाधिकारोंके लिए लड़ रही हों, ऐसा दृश्य अमेरिकामें नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि जिन जगहोंके लिए वे योग्य रहती हैं, वे जगहें उन्हें मिल ही जाती हैं। स्त्रियोंको हक मिलने चाहिये या नहीं, यह तात्त्विक झगड़ा आज अमेरिकामें नहीं है, क्योंकि तत्त्व या सिद्धान्तकी दृष्टिसे अमे-रिकन लोगोंने स्त्री पुरुषकी समानता मंजूर कर ली है। विशेष-कर आर्थिक स्वातंत्र्यके कारण स्त्रियाँ बहुत आगे बढ़ गयी हैं। गत महायुद्धमें पुरुषोंको लड़ाईमें जाना पड़ा, इस कारण पुरुष जो जो काम हमेशा करते थे उन कामोंपर स्त्रियोंकी नियुक्ति हो गयी थी। इस प्रकार स्त्रियोंको प्रमुख रूपसे आर्थिक क्षेत्रोंमें घुसनेका मौक़ा मिला। उस समयसे स्त्रियोंमें एक प्रकारका आत्मविश्वास जागरित हो गया है। अमेरिकामें स्त्रियोंको जो स्वतंत्रता मिली है, वह स्वत्त्वोंके लिए किये गये आंदोलन अथवा झगड़ेसे नहीं, प्रत्युत आर्थिक और सामाजिक परिस्थितिके कारण स्वभावतः प्राप्त हुई है।

अमेरिकामें शायद ही ऐसी कोई संस्था हो जिसमें स्त्रियाँ न हों। विशेषकर भूतदया सम्बन्धिनी और परोपकारकी संस्थाओंका नेतृत्व स्त्रियोंने ही ग्रहण किया है। बहुतसी संस्थाओंकी तो वे संस्थापिकाएँ भी हैं। स्त्रियोंकी सहायता और उनके नेतृत्वसे संचालित कुछ संस्थाओंका स्वरूप इन नामोंसे प्रकट होगा—सेटलमेंट हाउसेस (गरीब स्थितिके लोगोंको संस्कृतिके सब साधन एक जगह जुटानेवाली संस्था), चिल्ड्रेन्स गाइडन्स ब्यूरोज (छोटे बालकोंको व्यापार-व्यवसायके सम्बंधमें सलाह देनेवाली संस्थाएँ), चिल्ड्रेन्स होम्स (अनाथालय), बर्थ-कंट्रोल क्लिनिक्स (संतति-निग्रहका प्रचार करनेवाली संस्थाएँ), वैकेशन स्कूल्स (छुट्टियोंमें व्यापक शिक्षा देनेवाले स्कूल)। इस प्रकारकी अनेक संस्थाओंमें स्त्रियाँ उपयुक्त कार्य कर रही हैं। उनमेंसे बहुतोंने समाजसेवाको व्यवसाय रूपमें ही ग्रहण कर लिया है। इसकी उच्च शिक्षा उन्हें विद्यापीठोंमें मिलती है और उस शिक्षाका उपयोग वे जीवन-निर्वाहके साधनकी तरह कर सकती हैं।

स्त्रियोंका सार्वजनिक कार्य

अमेरिकाके पूर्वी तटपर जो शिक्षण-संस्थाएँ हैं वे पुरानी चालकी हैं। वहाँ लड़कों और लड़कियोंकी शिक्षाका अलग अलग प्रबन्ध है। पर पश्चिम और मध्य अमेरिकाकी बस्ती बादकी होनेके कारण इन जगहोंमें मिश्र संस्थाओं—स्कूलों और कालेजों—की स्थापना हुई है। बालक बालिकाओंको सम्मिलित शिक्षा-प्रणाली पहले आर्थिक परिस्थितिके कारण—लड़के लड़कियोंकी अलग संस्थाएँ न खोल कर खर्च कम करनेकी नीयतसे—उत्पन्न हुई। इंग्लैण्डमें भी आर्थिक परिस्थितिके ही कारण सहशिक्षाकी

सहशिक्षणका प्रयोग

प्रणाली मंजूर की गयी थी। यद्यपि आरंभ इसका इसी तरह हुआ था, पर आज अमेरिकाने सिद्धान्तकी दृष्टिसे भी सह-शिक्षाको स्वीकार कर लिया है। पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षाकी जो संस्थाएँ पूर्वी किनारेपर हैं, वे सब मिश्र संस्थाएँ ही हैं।

अमेरिकामें सहशिक्षा देनेवाली और अलग अलग शिक्षा प्रदान करनेवाली दोनों ही तरहकी संस्थाएँ चल रही हैं, अतः यह स्पष्ट ही है कि वहाँवाले दोनों प्रकारकी शिक्षा पसंद करते हैं। जहाँ एक ही गाँवमें स्त्रियोंकी और पुरुषोंकी शिक्षाके लिए अलग अलग संस्थाएँ हैं, वहाँ सप्ताहमें प्रायः कुछ देरतक छात्र और छात्राओंको एकत्र मिलनेके प्रसंग कालेज या विद्यापीठके अधिकारियोंकी ओरसे उपस्थित किये जाते हैं, इस कारण किसी स्कूल या विद्यालयमें चाहे सहशिक्षाका प्रबंध हो चाहे न हो, दोनोंमें इस दृष्टिसे अधिक अन्तर नहीं मालूम पड़ता। इस बारेमें हिंदुस्तानी तथा अमेरिकन दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हैं। विवाहके पूर्व स्त्री-पुरुषका परस्पर दृढ़ परिचय होना चाहिये और उन्हें वैसा अवसर मिलना चाहिये, विवाह प्रत्येक व्यक्तिके जीवनकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है—यही अमेरिकन शिक्षकों, अभिभावकों तथा समाजकी धारणा है। इस कारण जहाँ शिक्षा-संथाएँ मिश्र नहीं हैं और युवक-युवतियोंका एक दर्जेमें या कालेजमें मिलन नहीं होता, वहाँ प्रयत्न करके जानबूझकर उनको मिलाया जाता है। पर हमारे समाजको इस प्रकारका अनुभव न होनेके कारण स्वभावतः हमें इस पद्धतिकी पवित्रताके सम्बन्धमें शंका होती है। इसका एक उदाहरण यह दिया जा सकता है कि हमारे जो छात्र पश्चिमी देशोंमें जाते हैं, वे इस बातको न जाननेके कारण बड़ी नासमझी कर बैठते हैं और कुछ लड़कियोंसे उनका निकट परिचय होते ही वह परिचय बौद्धिक

क्षेत्र तक ही मर्यादित है, यह बात ध्यानमें न रखकर वे और घनिष्ठता बढ़ाना चाहते हैं। इस कारण भारतीय विद्यार्थियोंके बारेमें वहाँके समाजमें बड़ी गलतफहमी फैली रहती है। भारतकी अनुकूल परिस्थितिमें प्राप्त हुए आत्मसंयमनका उपयोग वे उस मोहमयी परिस्थितिमें नहीं करते।

'रिवोल्ट ऑफ मॉडर्न यूथ' (आज कलके युवक-युवतियोंका विद्रोह) इस नामकी जज लिंडसेकी एक पुस्तक है। उस परसे हम अमेरिकन समाजका जो चित्र अपनी आंखोंके सामने पाते हैं, वह भ्रान्तिपूर्ण है।

'रिवोल्ट आफ माडर्न यूथ'

इस पुस्तकके सम्बन्धमें अमेरिकन लोगोंसे प्रश्न करने पर वे कहते हैं कि इसमें सब बातें खूब बढ़ा चढ़ा कर लिखी गयी हैं। वह अमेरिकन समाजका सच्चा चित्र नहीं। कंपेनिअनेट मैरेज (सहवासके बादके विवाह) का अस्तित्व सिर्फ कल्पना और साहित्यमें ही है; प्रत्यक्ष व्यवहारमें वह पद्धति अभी प्रचलित नहीं है। अपने यहाँ कहीं व्यभिचारका उदाहरण दिखाई देने पर जिस प्रकार सारे समाजको कोई व्यभिचारी नहीं कहता, उसी प्रकार उनके समाजमें कहीं कहीं इस बातके दृष्टिगोचर होनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि सारे समाजको यह स्वीकृत है। पातिव्रत्य, पवित्रता इत्यादिके भाव उनके समाजमें भी विद्यमान हैं और नीतिकी दृष्टिसे उनके समाजकी कोई निंदा करता है तो उनको बुरा लगता है।

कुछ समय पहले तक अमेरिकन युवक पीढ़ीके संबंधमें सनसनीदार बातें छपती थीं। उसका कारण महायुद्धसे लौटे हुए तरुण वर्गका विषयातिरेक था। दूसरा कारण कर्मकाण्ड-प्रधान धर्मका प्रभाव समाजके ऊपरसे कम हो जाना है। पर पिछली पीढ़ीका विषयातिरेक इस पीढ़ीमें दिन दिन कम होता

जा रहा है। फर्क इतना ही है कि जहाँ पहले युवकोंपर धर्म और समाज सम्बन्धी नैतिक बंधन रहते थे, वहाँ अब उन लोगोंमें स्वयं अपने ही मानसिक बंधन निर्माण हो रहे हैं। इस कारण नयी पीढ़ी अधिक आत्मसंयमी और विचारशील बन रही है। वैवाहिक पवित्रताके संबंधमें युवक-समाज अधिक आदर प्रदर्शित करने लगा है।

इसका एक चिह्न यह है कि कालेजकी शिक्षा जारी रहते ही विवाह करनेकी प्रथा चल पड़ी है, और इस बातके लिए शिक्षा-संस्थाओंके अधिकारी अपनी सम्मति भी देने लगे हैं। इससे नीतिबाह्य बर्तावकी अपेक्षा वैवाहिक बंधन श्रेयस्कर माननेकी प्रवृत्ति तरुण समाजमें बढ़ रही है, यह साबित होता है। रूसमें भी कालेजके विद्यार्थियोंको विवाहित होनेकी रोक-टोक नहीं है। यही नहीं, विवाहित दम्पतिके लिए कालेजके स्वतंत्र छात्रावासमें रहनेका भी बंदोबस्त वहाँ है। इससे यह बात साबित हो जाती है कि रूसको स्वेच्छाचारी वैषयिक जीवनसे वैवाहिक जीवन अधिक पसन्द है।

तरुण पीढ़ीकी नीतिमत्तापर आर्थिक परिस्थितिका भी प्रभाव पड़ता है। आर्थिक परिस्थिति अगर अच्छी न हुई हो तो विवाह देरसे होने लगते हैं और विवाहकी वयोमर्यादा साधारणसे जब अधिक हो जाती है, तब स्वैराचार शुरू हो जाता है। इसके दो उपाय संभव हैं। विवाह करनेकी इच्छा रहते हुए भी यदि आर्थिक परिस्थितिके कारण वह नहीं हो सकता, तो इसका इलाज यह है कि ऐसे लोग आर्थिक दृष्टिसे अधिक कार्यक्षम बनाये जायँ। रूसमें कालेजके सब छात्रोंको वजीफे मिलते हैं, इस कारण वे आर्थिक दृष्टिसे स्वतंत्र रहते हैं। दूसरा उपाय है

आर्थिक परिस्थिति और नीतिबंधन

स्त्रीको भी आर्थिक दृष्टिसे स्वतंत्र तथा कार्यक्षम बनाना। इससे पुरुषपर विवाहका आर्थिक बोझ न पड़ेगा और विवाह शीघ्र होने लगेंगे। हमारे यहाँकी परिस्थितिमें हमें अमेरिकन और रूसी उदाहरणोंसे सीख अवश्य लेनी चाहिए। केवल नीतिमत्तापर ज़ोर देनेसे ही नीति क़ायम न रहेगी। कई बार वह (नीति) आर्थिक परिस्थितिपर निर्भर रहती है। उस आर्थिक परिस्थितिको हाथमें लाकर बुद्धिपुरस्सर आर्थिक समाज-रचनाकी योजना बनायी जायगी तो पावित्र्य, विवाह-संस्था, पातिव्रत्य इत्यादि पूर्व संस्कृतिकी अच्छी बातें कायम रहेंगी।

अमेरिकन स्त्रियोंके संबंधमें साधारणतः अनुकूल मत होता है। विशेषतः बौद्धिक दृष्टिसे वादविवाद करना, चर्चा करना,

कष्ट-सहनके लिए उत्साह

कष्टके काम करना, उच्च शिक्षा पाकर भी शारीरिक श्रम करनेमें मानहानि न समझना, इन दृष्टियोंसे अमेरिकन स्त्रियाँ प्रशंसाकी पात्र हैं। इन बातोंमें वे भारतीय पुरुषोंका भी सिर लज्जासे नत करावेंगी। मैं एक बार एक अमेरिकन स्त्रीके साथ मोटरमें जा रहा था कि मोटरका इंजन बिगड़ गया। एम्. ए. पास वह स्त्री नीचे उतरी और इंजनका ढकना खोलकर उसने हाथ काले करके उसे बनाया। इसी तरह एक बार पी-एच. डी. की तैयारी करनेवाली एक स्त्री जब मुझे अपनी मोटरमें बैठाकर ले जा रही थी, तब मोटर पंक्चर हो गयी। फौरन वह दूसरा पहिया बैठानेका सारा सामान बाहर निकाल कर पहिया बैठाने लगी। उसे खुद यह काम करते देखकर मुझे कुछ झेंप मालूम हुई, अतः मैंने वह काम खुद अपने ऊपर ले लिया और स्त्रीके कहे मुताबिक पहिया बैठा दिया। इस प्रकारकी वृत्ति हमारे यहाँ पुरुषोंतकमें नहीं पायी जाती अतः उनमें उसका होना आवश्यक प्रतीत

होता है। स्त्रियोंमें वह जिस दिन देख पड़ेगी वह तो भारतके लिए सुदिन ही होगा।

आधुनिक यांत्रिक सभ्यताके कारण अमेरिकन कुटुंबमें सब दृष्टियोंसे क्रांति हो गयी है। आधे शतक पूर्वतक अमेरिकन कुटुंब अपने यहाँके बड़े कुटुंबोंकी तरह ही अष्ट-पुत्र-कन्या युक्त होते थे। पर गत शताब्दीकी औद्योगिक क्रांतिसे कुटुंबपद्धतिमें भी क्रांति हो गयी है। साधारणतः आदर्श अमेरिकन कुटुंबमें एक या दो लड़के और पिता माता, बस इतने ही मनुष्य होते हैं। काम-धंधा या नौकरी लगे बिना पुरुष विवाह नहीं करता और लड़कोंकी शिक्षाके लिए धन जबतक एकत्र नहीं होता तबतक वह संतानोत्पत्ति ही नहीं करता। अमेरिकामें कानून द्वारा संतति-निग्रहके प्रचारमें रुकावट होने पर भी आर्थिक कारणोंसे यह पद्धति सर्वपरिचित है। बालमृत्युकी संख्या यहाँ बहुत ही थोड़ी है। जन्मा हुआ लड़का जिंदा रहेगा या मर जायगा, यह डर अपने यहाँ बना रहता है; पर जन्मा हुआ लड़का जिंदा रहेगा ही यह अमेरिकामें सर्वसाधारणकी भावना रहती है। भारतमें तीन लड़के पैदा होते हैं तो दो बाल्यावस्थामें ही मर जाते हैं। शहरोंमें तो स्थिति इससे भी अधिक खराब है। अमेरिकामें बालमृत्यु बहुत कम होती है।

हृष्टपुष्ट व नीरोग परिवार

यंत्रसंबंधी सुधारोंके कारण कुटुंबके बहुतसे काम बाहरकी संस्थाएँ ही करती हैं। इस कारण अन्न पकाना, कपड़े धोना इत्यादि जैसे गृहकार्योंमेंसे बहुतसे कार्य घट गये हैं। द्वितीयतः घरके बाहर मनोरञ्जन और शिक्षाके साधन बहुत बढ़ गये हैं। सिनेमा, थियेटर, नाटक, आपेरा, प्रदर्शन, व्याख्यान, विवाद-सभाएँ, क्लब, मण्डल आदिमें

गृहसंस्थामें क्रांति

इतने अधिक कार्यक्रम रहते हैं कि घरमें समय बितानेकी अपेक्षा वहाँ समय बितानेसे मनोरञ्जनके साथ साथ शिक्षा भी अनायास प्राप्त हो सकती है। विशेषतया बड़े बड़े नगरोंमें तो घर एक प्रकारसे अल्प विश्राम अथवा एक दो बार भोजन कर लेनेभरका स्थान रह गया है। व्यक्तिका समय परिवारकी अपेक्षा बाहर ही अधिक बीतता है। छुट्टीके दिन शान्तिके साथ घरमें विश्राम करनेवाले लोग बहुत कम हैं। वाहनोंकी विपुलता होनेके कारण अपनी मोटर या अन्य उपलब्ध सवारी द्वारा घरसे चलकर शिक्षा तथा मनोरंजनके स्थानोंमें पहुँचना अथवा गाँवसे बाहरकी यात्रा करना अधिक सुविधाजनक हो गया है।

इस पारिवारिक क्रान्तिका परिणाम युवकोंकी शिक्षापर हो रहा है। परिवारमें अपने हिस्सेका काम करनेकी, परस्पर सहकारिताकी, सहिष्णुताकी और प्रासङ्गिक नीतिकी शिक्षा प्राप्त करनेकी गुंजाइश दिनपर दिन कम होती जा रही है। शिक्षा-सूत्रधारोंको भय हो रहा है कि जो शिक्षा घरमें अनायास मिला करती थी, वह यदि पाठशालाओंमें भी न मिलेगी, तो युवकोंके शीलका समुचित विकास होनेमें बड़ी बाधा पहुँचेगी। इसीसे इस ओर उनका ध्यान अधिक आकृष्ट हो रहा है।

अमेरिकन लोग यह नहीं चाहते कि गृहसंस्था नामशेष कर दी जाय, बल्कि वे उसे अधिक सुदृढ़ बनानेके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि अब गृह और परिवारकी व्याख्या बदल दी जायगी। घर केवल रसोई बनाने और बच्चोंके पालनेका ही स्थान न रह जायगा। गृह शब्दकी व्याख्यामें बौद्धिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकारके सुखोंका समावेश होगा। जिस तरह यन्त्रोंकी वृद्धिसे घरके बाहरकी मनोरञ्जन-सामग्री तथा अन्य

प्रतिक्रियाका प्रारम्भ

आकर्षक वस्तुओंकी अभिवृद्धि हुई है, उसी तरह यान्त्रिक आविष्कारोंसे वहाँका गृहजीवन भी विशेष आकर्षक बनाया जा रहा है। रेडियोके द्वारा उत्तम सङ्गीत घरमें बैठकर सुना जाता है, होम-सिनेमाके द्वारा चित्रपट देखे जाते हैं, कला-शिक्षाके सुलभ साधनों द्वारा अवकाशके समयमें चित्रकला, सङ्गीत आदि कलाओंका विकास घर बैठे किया जाता है। इन सुविधाओंको देखनेसे आशा की जाती है कि घरसे निकला हुआ अमेरिकन परिवार फिर घर लौट आवेगा। वहाँके सामाजिक नेताओंका विश्वास है कि संस्कृति एवं बालकोंकी शिक्षाके विचारसे कुटुम्बप्रणालीका बना रहना आवश्यक है और इस दृष्टिसे वे उद्योग भी कर रहे हैं।

अमेरिकाने स्त्रियोंकी जो स्वाधीनता प्राप्त की है, उसका उसे गर्व है। उसके मधुर परिणामका समाज अनुभव भी कर रहा है। सार्वजनिक हितके सामाजिक कार्योंमें स्त्रियाँ अगुआ बनकर भाग ले रही हैं। कितने ही उच्च पदोंपर वे नियुक्त की जा रही हैं। स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतन्त्रता और औद्योगिक सुधारोंके कारण सनातन कुटुम्बपद्धतिमें कुछ अस्थिरता अवश्य उत्पन्न हो गयी है, परन्तु आशा की जाती है कि समय पाकर उस पद्धतिमें स्थिरता आ जायगी और नयी संस्कृतिके अनुकूल कुटुम्बपद्धतिका पुनर्निर्माण होगा।

छठा अध्याय

यांत्रिक युगमें न्याय, नीति और दण्ड

नवीन युगमें नवीन संस्थाओंका निर्माण होता ही है। मनुष्यमें नये नये अनुसंधान करनेकी बुद्धि और उन्नति-पथमें आगे बढ़नेकी क्षमता होनेके कारण समाजमें नये विचार तथा साधन उत्पन्न होते ही रहते हैं। इन अभूतपूर्व विचारों और साधनोंकी वजहसे समाजकी पुरानी रचना बदलती जाती है। समाज-शासनके पुराने साधन अपर्याप्त प्रतीत होने लगते हैं। समाजके नूतन संघटनमें नये नये प्रश्न उपस्थित होते और नयी अड़चनें भी उत्पन्न हो जाती हैं। इन प्रश्नोंके हल करने और अड़चनोंको दूर करनेके लिए नयी संस्थाओंका जन्म होता है। पुरानी संस्थाएँ सूखती जाती और नयी पनपती रहती हैं। यह सूखने-पनपनेकी क्रिया समाजमें बराबर चालू रहती है। जिस समाजमें क्रान्ति तीव्र गतिसे होती है, उस समाजकी संस्थाओंके जनन-मरणकी यह क्रिया तुरन्त ध्यानमें आ जाती है। मन्द गतिसे उन्नत होनेवाले समाजकी संस्थाएँ सनातन और चिरन्तन प्रतीत होती हैं, किन्तु दीर्घ कालके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे ज्ञात हो जाता है कि जनन-मरणका यह नियम उनके लिए भी लागू है।

संस्थाओंका जनन-मरण

अमेरिका और रूस इन दो देशोंके समाजोंमें अत्यन्त तीव्र गतिसे क्रान्ति हो रही है। क्रांतिके कारण हैं नये विचार और नये नये शास्त्रीय आविष्कार। दोनों देशोंके समाजमें 'मशीनरी' अथवा 'यन्त्रकला'का बोलबाला है। विज्ञान (साइन्स)

और यंत्र (मशीन) इन दोनोंके आधारपर गत अर्धशताब्दीमें अमेरिकन समाजमें क्रान्ति हुई है। यूरोपके देशोंमें भी क्रान्ति हुई, किन्तु उनकी पुराणप्रियताके कारण वहाँकी क्रान्तिकी गति अमेरिकाकी अपेक्षा मन्द रही। यांत्रिक और औद्योगिक दृष्टिसे अमेरिका सब देशोंसे आगे बढ़ गया है। इस कारण यान्त्रिक युगके गुण-दोष वहाँ स्पष्टतया देख पड़ते हैं। अमेरिकामें प्रवास करनेवालेको वह देश विरोधपूर्ण जान पड़ता है, इसका भी कारण यही है। उस देशमें सम्पत्ति विपुल है, सर्वसाधारणके लिए सुख-सुभीतेके साधन भी बहुत हैं और संस्कृति-संवर्धनके कार्य अनेक दिशाओंसे हो रहे हैं। अमेरिकाकी उन्नतिका यह उज्ज्वल भाग है; परन्तु जिस औद्योगिक उत्कर्षके बलपर वहाँ उक्त अभिनन्दन करने और अनुकरण करने योग्य बातें हुईं, उसी औद्योगिक उत्कर्षसे अनेक अनिष्ट बातें भी उत्पन्न हो गयी हैं। मशीनकी शक्ति हिन्दुस्थानमें भी बढ़ रही है और दिन-ब-दिन बढ़ती ही जायगी। आज जो प्रश्न अमेरिकाके आगे उपस्थित हैं, कल वे भारतके सामने भी उपस्थित होंगे। अतः अमेरिकाके अनुभवसे लाभ उठाकर अभीसे यहाँ इन प्रश्नोंको हल कर लिया जाय, तो भावी अनिष्ट परिणामसे हम बच सकते हैं।

यन्त्रारूढ अमेरिका

इस दृष्टिसे अमेरिकामें औद्योगिक क्रान्तिके कारण जो प्रश्न उपस्थित हुए और उन प्रश्नोंके हल करनेके लिए समाजने जो संस्थाएँ निर्माण की हैं, उनका चिकित्सककी दृष्टिसे निरीक्षण कर लेना आवश्यक है।

औद्योगिक क्रान्तिके कारण समाजका एक बड़ा भाग स्थायी रूपसे एक ही जगह बस नहीं सकता। उद्योग-धन्धेके

लिए जो मनुष्य एक बार घरसे निकल पड़ता है, वह प्रायः आजीवन स्थान स्थानमें भटकता रहता है, एक ही स्थानमें प्रायः स्थायी रूपसे बहुत दिनोंतक नहीं रहता। अपने ही गाँव या घरमें रहनेवाले मनुष्योंके आसपास एक छोटा सा समाज होता है। उस समाजका नैतिक बन्धन हर एक व्यक्तिको मानना पड़ता है। इस तरह उसे अज्ञात रूपसे ही सदाचारकी शिक्षा मिलती है और बाह्यबन्धनके कारण सद्व्यवहारकी जिम्मेदारी उसपर आ पड़ती है। यही व्यक्ति जब अपने घर और समाजसे अलग हो कर किसी अपरिचित समाजमें चला जाता है, तब उसका उक्त नैतिक बन्धन शिथिल हो जाता है। अपने ही मनका बन्धन यदि वह न माने तो नैतिक दृष्टिसे वह शिथिल और उच्छृंखल हो जाता है। नगरोंकी घनी और बदलती रहनेवाली बस्तीके घरोंके आसपासका समाज नैतिक दृष्टिसे प्रभावशाली नहीं हो सकता।

प्रवासी समाज और नीतिबन्धन

इसी नैतिक शिथिलताका साथ यदि दरिद्रता, कानूनकी स्वाधीनता और अज्ञानसे हो जाय, तो उसका पर्यवसान गुनहगारीमें होता है। अमेरिकामें गुनाहोंकी संख्या बढ़ रही है। इसका कारण यह है कि समाजकी परिवर्तित व्यवस्थामें नीतिशासनके पुराने साधन नष्ट हो गये हैं और नये साधन निर्माण करनेका अभी समाजको अवसर ही नहीं मिला है। गुनाहोंके घटानेके लिए अमेरिकन समाजमें कुछ नयी संस्थाएँ स्थापित हुई हैं, परन्तु उनसे काम न चलेगा, यह वहाँके नेता समझ गये हैं।

अपराधोंका पता लगाने और उन्हें रोकनेके लिए अमेरिकामें अनेक संस्थाएँ हैं। साधारण अदालतोंके साथ ही वहाँ

नयी अदालतें और नये कारागार

बच्चोंके न्यायालय'*, स्त्रियोंके न्यायालय† और रात्रिके न्यायालय‡ स्थापित हैं। बच्चोंके न्यायालयोंका उद्देश्य स्पष्ट है। घरकी परिस्थिति, माता पिताका बर्ताव, बच्चोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति आदि कारणोंसे ही उनके हाथों अपराध हो जाया करते हैं। अपराध करनेमें वयस्क मनुष्यों और बच्चोंके उद्देश्य भिन्न होते हैं। जिन्हें अपराध करनेका अभ्यास हो जाता है, उनकी अपेक्षा बच्चोंके अन्तःकरण कोमल होते हैं। इस कारण न्यायतः यह सिद्धान्त मान लिया गया है कि वयस्क मनुष्योंके समान छोटे बच्चोंके मुकद्दमे न चलाये जायँ, इसीसे वहाँ बच्चोंके लिए पृथक् न्यायालय स्थापित किये गये हैं। इन न्यायालयोंमें उन्हीं विचारकोंकी नियुक्ति होती है जिन्होंने बच्चोंके मानसशास्त्रका अच्छा अध्ययन किया हो और जिनकी बच्चोंके प्रति स्वाभाविक सहानुभूति हो। जब मुकद्दमा पेश रहता है तब अदालतमें बच्चेके माँबाप और बच्चोंको सन्मार्गमें ले जानेका दायित्व अपने ऊपर लेनेवाली किसी समाजसेविकाके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जा सकता। बच्चेके साथ सहानुभूति रखनेवाले गिनेगिनाये लोग ही वहाँ जा पाते हैं। न्यायाधीश (जज) या चपरासी अदालती पोशाक नहीं पहनते। वहाँका ऐसा वातावरण रहता है जिससे बच्चेके चित्तपर भय अथवा कठोरताकी छाया न पड़े। बच्चेका अपराध सुनकर न्यायाधीश बहुत ही सौम्य भाषामें उसे अपना चरित्र सुधारनेका उपदेश करता है और किसी समाजसेविका तथा एक प्रोबेशन अफ़सरको उसकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त कर देता है। यदि जज

* Children's Courts. † Women's Courts. ‡ Night Courts.

समझता है कि बाहर रहकर बच्चेका सुधार न हो सकेगा, तो वह उसे सुधारगृह (करेक्शन हाउस) में भेज देता है।

'करेक्शन हाउस' छोटे बच्चोंका कारागृह है। मिशिगन स्टेटके जेन्सिग नामक स्थानमें मैंने ऐसी एक संस्था देखी थी।

कारागृह या विद्यालय ?

यदि पहलेसे मुझे ज्ञात न होता कि यह कारागृह है, तो वहाँकी परिस्थितिसे मैं यही समझता कि यह उद्योग-धन्धोंकी शिक्षा देनेवाली कोई उत्तम पाठशाला है। भारतमें धन्धोंकी शिक्षा देनेवाली जो पाठशालाएँ हैं, उनमें जो साधन-सामग्री नहीं देख पड़ती, वह सब उस कारागृहमें विद्यमान थी।

सुधारगृहोंका उद्देश्य यह है कि वहाँ रहकर बच्चोंका शारीरिक और मानसिक सुधार हो तथा वे कोई उपयुक्त धन्धा सीख जायँ। बच्चोंके रहनेके लिए साफ़ सुथरे स्थान हैं, स्नानगृह हैं, बड़ी बड़ी व्यायामशालाएँ हैं और बढ़ईगीरी, लोहारी, छापाखाना, मिकेनिकल ट्रेनिङ्ग, कपड़ोंकी धुलाई आदिकी शिक्षाका अच्छा प्रबन्ध है। साथ ही प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाकी भी व्यवस्था है। जब मैं उस पाठशालाकी विभिन्न कक्षाओंका अवलोकन कर रहा था, तब बच्चोंने मुझसे हिन्दुस्थान और महात्मा गान्धीजीके सम्बन्धमें बड़े ही मनोरञ्जक प्रश्न पूछे थे। वहाँके सब बच्चे मिलकर 'वोकेशनल इण्टरप्राइज़'* नामक एक मासिकपत्र निकालते हैं और अपने प्रेसमें आप ही छाप लेते हैं। सारांश यह कि वह बच्चोंका कारालय नहीं, किन्तु विद्यालय है। अन्य देशोंके विद्यालय कारालयोंके रूपमें परिणत हुए देख पड़ते हैं। अमेरिकन लोगोंका शिक्षापर

---

* Vocational Enterprise.

बड़ा भरोसा है; इस कारण उनका विश्वास हो गया है कि अपराधोंके मिटानेका उपाय दण्ड नहीं, बल्कि शिक्षाका प्रचार है।

बच्चोंकी तरह स्त्रियोंके लिए भी स्वतन्त्र न्यायालय (वीमेन्स कोर्ट्स) हैं। नगरोंका रहनसहन, दरिद्रता, अनियन्त्रित मोह, गृहशिक्षाका अभाव आदि कारणोंसे स्त्रियाँ अनेक अपराध कर बैठती हैं। सहानुभूतिके साथ उनके अपराधोंकी जाँच कर उन्हें अच्छे मार्गमें प्रवृत्त किया जा सके, इसी विचारसे स्त्रियोंके न्यायालयों और उनके लिए स्वतन्त्र कारालयोंकी व्यवस्था की गयी है।

स्त्रियोंके न्यायालय

तीसरे तरहके विशेष न्यायालय रात्रिके न्यायालय हैं। समाजका विस्तार बढ़ जानेके कारण आधुनिक जीवन इतना अधिक उलझनका हो गया है और उसकी सुविधा या असुविधाके लिए ऐसे बहुतसे छोटे मोटे कानून बन गये हैं, जिनके चंगुलसे कोई बच ही नहीं सकता। सड़कके ग़लत भागसे गाड़ी ले जाना, बत्ती न जलाना, लड़ाई-झगड़ा करना, इत्यादि ऐसे अपराध दिनरात हुआ करते हैं। उनका निर्णय तुरन्त हो जाय, इसीलिए रात्रिके न्यायालय खोले गये हैं। इन न्यायालयोंमें न्याय अथवा अन्यायका काम इतने तीव्र वेगसे किया जाता है जिसकी कल्पना करना कठिन है। पुलीस अपराधीको पकड़ कर अदालतमें ले जाती है। वह आकाशकी ओर हाथ उठाकर शपथ खाता है, तब सरकारी वकील अपराधका ब्योरा पढ़ सुनाता है और पूछता है—'अपराध स्वीकार है या नहीं?' आदमी भला हो और बहुत समय तथा धन नष्ट न करना चाहता हो, तो तुरन्त अपराध स्वीकार कर लेता है और जो दण्ड हो उसे देकर अपना छुटकारा करा

तुरन्त न्यायअन्याय

लेता है, चाहे उसने अपराध किया हो या न किया हो। न्याय-प्राप्तिके लिए बहुत समय और धन नष्ट करनेकी अपेक्षा दण्ड भर देना अधिक सुविधाजनक होता है।

जेलखानेमें पी-एच्० डी०

अधिक गम्भीर अपराधोंके लिए अमेरिकामें भी जेलखाने हैं, परन्तु अन्य देशोंकी अपेक्षा वहाँके जेलखाने बहुत ही सौम्य हैं। अमेरिकन जेलोंकी सौम्यताको लक्ष्य कर प्रायः अंग्रेज लोग ताना मारा करते हैं कि जेलोंकी सौम्यताके कारण ही अमेरिकन अपराधियोंको जेलका भय नहीं रहा है और वे पक्के गुनहगार बनते जा रहे हैं। जेलोंके सम्बन्धमें यूरोपियनोंके जैसे विचार हैं, उनसे हम परिचित ही हैं। अतः इस सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। अमेरिकन लोगोंकी धारणा है कि परिस्थितिके कारण मनुष्य अपराध करता है और परिस्थितिके बदलते ही वह सुधर भी सकता है। अन्ततः अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करना जेलोंका काम है। अमेरिकामें "सिंग-सिंग" नामक एक प्रसिद्ध जेलखाना है। वहाँके क़ैदियोंके लिए क्रीडा-कौतुक, संगीत और अध्ययनके सब सुभीते कर दिये गये हैं। मिशिगन-जेलके शिक्षाध्यक्षसे एक दिन मैं वार्तालाप कर रहा था। बातचीतमें ही उसने कहा कि इस जेलके एक क़ैदीकी इतनी पढ़ाई हो गयी है कि वह पी-एच्० डी० की परीक्षा दे सकता है। उक्त जेलके क़ैदी अपना एक समाचार-पत्र निकालते हैं जिसका एक अङ्क मुझे भी दिया गया था। इस विवरणसे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वहाँके कारागारोंका जीवन बिलकुल सुखमय है। व्यवहारकी दृष्टिसे दण्ड, कष्ट आदि सब बातें वहाँ भी हैं। परन्तु अमेरिकन जेलोंका उद्देश्य अपराधियोंको चरित्र-सुधारके लिए अवसर देना है,

जिससे वे फिर प्रतिष्ठित नागरिक बनकर नीतिमत्तासे जीवन-यापन कर सकें।

सारांश यह है कि औद्योगिक सुधारोंके कारण अमेरिकामें एक नवीन समाज उत्पन्न हुआ है। छोटे छोटे समाजों या जातियोंके व्यक्तियोंके लिए जो नैतिक बन्धन होता है, वह अमेरिकामें नहीं है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका वहाँ बोलबाला है। परन्तु साथ ही दरिद्रता, अज्ञान, विपत्ति आदिके साथ उस स्वातन्त्र्यका मेल हो जानेसे वहाँके लोगोंमें अपराध करनेकी प्रवृत्ति बढ़ गयी है। अब वहाँके विचारशील लोग प्रयत्न कर रहे हैं कि सर्वसाधारणकी यह प्रवृत्ति घटे और शिक्षाके द्वारा अनुकूल परिस्थिति पाकर वे अच्छे नागरिक बनें।

शिक्षा या दण्ड ?

सातवाँ अध्याय

गरीबोंके लिए सब सुविधाएँ

अमेरिका धनी देश है; परन्तु वहाँ भी दरिद्रता विद्यमान है। कहते हैं, लंकामें सोनेकी ईंटें मिलती हैं, परन्तु वहाँ भी दरिद्र लोग रहते ही हैं। यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिये कि हिन्दुस्थान और अमेरिका-की गरीबीमें बड़ा अन्तर है। अमेरिकाका गरीब व्यक्ति हिन्दुस्थानमें अमीर माना जायगा। हर एक समाजके लोग अपनी तुलना उसी समाजके निम्न अथवा उच्च श्रेणीके

लंकामें मशीनरी और दरिद्रता

लोगोंसे करते हैं। इसी दृष्टिसे हमने कहा है कि अमेरिकामें भी बहुत ग़रीबी है। देशकी नब्बे सैकड़े संपत्ति प्रतिशत दस लोगोंके हाथमें है। इसीसे अमेरिका पूँजीपतियोंका सुरक्षित गढ़ माना जाता है।

व्यक्तिस्वातन्त्र्य, समता और लोकतन्त्र शासनके आधार-पर जिस समाजकी स्थापना हुई हो उस समाजमें आर्थिक विषमता कैसे उत्पन्न हो गयी? इसका कारण यंत्र (मशीनें) हैं। अमेरिकाने यंत्रोंका प्रचलन तो स्वीकार किया, परन्तु उसके भावी परिणामोंको जानकर नये अर्थशास्त्रका निर्माण नहीं किया। जबतक समाजका बहुत विस्तार नहीं हुआ था और अर्थोत्पादनके साधन भी थोड़े थे, तबतक आर्थिक व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका सिद्धान्त निभता गया; परन्तु यंत्रोंकी सहायतासे अर्थोत्पादनकी असाधारण वृद्धि होने पर उक्त सिद्धान्त उपे-क्षणीय प्रतीत होने लगा। यन्त्रोंका आविष्कार मनुष्योंके शारीरिक कष्ट बचानेके लिए हुआ है। परन्तु जिन पूँजीपतियों और कारखानेदारोंके पास यन्त्र-सामग्री है उन्होंने उसका उपयोग श्रमिकोंके कष्ट कम करने अथवा कामके घण्टे घटानेमें नहीं किया; उलटे यन्त्रोंकी सहायतासे मजदूरोंसे अधिक काम कराके अपने पाकिट गरम कर लिये। इसका परिणाम यह हुआ कि जिनके हाथमें यन्त्र रूपी शक्ति थी, उन्हींके हाथमें समाजकी सब सम्पत्ति धीरे धीरे बटुर गयी और जनता लुट गयी। देश धनी हो गया, किन्तु जनता निर्धन बन गयी। पिछली पीढ़ीमें यह अवस्था चरम सीमा तक पहुँच गयी। जनताकी इस ग़रीबीका कारण यन्त्रोंका उत्कर्ष नहीं बल्कि वे पूँजीपति हैं जिनके पास यन्त्र हैं और जिन्होंने उनका

मशीनरीका दोष नहीं लोग स्वार्थी हैं।

उपयोग जनताके कल्याणके लिए न कर अपना मतलब साधनेके लिए किया। दोष यन्त्रोंका नहीं, व्यक्तियोंका है।

अमेरिकाके सभी औद्योगिक नगरोंमें धनिकोंकी बस्ती (गोल्ड कोस्ट) और श्रमिकोंकी बस्ती (स्लम्ज़), इस प्रकार बस्तियोंके दो भाग किये गये हैं। श्रमिकोंकी बस्तीमें प्रायः ग़रीब लोग ही रहा करते हैं। वे सुखमय पारिवारिक जीवनसे वञ्चित रहते हैं क्योंकि नगरका बहुत ही छोटा भाग उनके हिस्से आता है और वहीं बालबच्चों सहित उन्हें रहना पड़ता है। बेकारोंको वहाँ भी रहनेके लिए घर नहीं मिलता और श्रमिक जब काम करते करते थक कर बुड्ढा हो जाता है, तब उसका पालन करनेको कोई तैयार नहीं होता। ऐसे निराश्रय लोगोंके लिए वहाँ दान-धर्मकी संस्थाएँ खोली गयी हैं, उनमेंसे कुछ तो स्थानीय सरकार द्वारा और कुछ लोगोंके चन्देसे चलती हैं।

गरीब बच्चोंको अमीरी सुविधाएँ

शहरमें रहने, विभक्त कुटुम्ब और गरीबीके कारण माता-पिता दोनोंके बीमार पड़ने पर अथवा घरमें देखभाल करनेवाला और कोई न होने पर बच्चोंको बहुत कष्ट भोगने पड़ते हैं। ऐसे संकटग्रस्त बच्चोंके लिए वहाँ शिशुरक्षण संस्थाएँ (चिल्ड्रन्स शेल्टर) स्थापित हुई हैं। इन संस्थाओंमें एक सप्ताहसे कुछ मास तकके बच्चे रखे जा सकते हैं। इसके लिए बच्चोंके माँ-बाप या अभिभावक यथाशक्ति धन दे देते हैं। बच्चोंकी सब व्यवस्था शिक्षा-प्राप्त दाइयाँ घरसे भी बढ़कर करती हैं। संस्थामें रहते समय यदि बच्चेको कोई रोग हो जाय, तो तुरन्त उसका इलाज किया जाता है। जब बच्चा घर लौटता है तब पहलेसे बहुत ही उन्नत अवस्थामें लौटता है। उक्त शिशुसंस्थाओंमें धनी स्त्रियाँ भी

दोपहरके समयमें आती और बच्चोंके कपड़े सीने, खिलौने बनाने आदिका काम करती हैं। जो बच्चे बिलकुल निराश्रित हों, उनके लिए अलग 'बालगृह'* बने हुए हैं। वहाँ बच्चोंके रहने, खाने-पीने, और शिक्षाका तबतक प्रबन्ध रहता है जबतक वे किसी धन्धेमें न लग जायँ। बाल-गृहोंमें कुछ बालकोंका तो निःशुल्क प्रतिपालन होता है और कुछ बालकोंके अभिभावक यथाशक्ति अर्थ-साहाय्य भी करते हैं।

वृद्धावस्थामें जिन्हें कोई आश्रय नहीं रह जाता उनके लिए वहाँ 'वृद्धाश्रम' (ओल्ड मेंस होम) खुले हैं। उन आश्रमोंमें कुछ-

वृद्धोंके लिए आश्रम

की तो पर्वरिश बिना शुल्क लिये की जा सकती है, और कुछ वृद्धोंके सम्बन्धी यथा-शक्ति धन देते हैं। पाश्चात्य देशोंमें विभक्त कुटुम्ब-पद्धति प्रचलित होनेसे तथा अन्य असुविधाओंके उप-स्थित होने पर उक्त वृद्धाश्रमोंमें माता-पिताको भी भरती कर दिया जाता है, परन्तु ऐसा कहीं कहीं और बहुत कम देख पड़ता है। जिन हिन्दुस्थानी बहुओंकी साससे नहीं बनती, कदाचित् वे ऐसी संस्थाओंको बहुत पसन्द करेंगी।

उस देशमें ऐसे भी कुछ लोग हैं जो बेकार होनेकी वजहसे बिना घर-बारके हैं और जिन्हें रातमें सोनेतकके लिए स्थान

विश्रामस्थान या रात्रिनिवास

नहीं है। बम्बई जैसे नगरमें ऐसे लोग सड़क-की या दूकानोंकी पटरियोंपर सोकर रात बिता देते हैं, परन्तु अमेरिकामें यह सम्भव नहीं। वहाँ इतना जाड़ा पड़ता है कि यदि कोई ऐसा साहस करे भी तो वह रात भरमें ठिठुर कर मर जायगा। ऐसे लोगोंके

* Children's Homes.

लिए वहाँकी स्थानीय सरकारने रात्रिनिवास (नाइट शेल्टर) बनाये हैं। इन निवासोंमें रात्रिके समय ओढ़ना-बिछौना और सवेरे अल्पाहार भी मिलता है।

औद्योगिक सुधारोंसे सम्पत्तिका विषम बँटवारा हो जानेके कारण बहुतसे लोग परिश्रम करके भी ग़रीबी भोग रहे हैं। सुभीता यही है कि ग़रीबीमें उनकी सहायता करनेके लिए वहाँ अनेक धर्मार्थ संस्थाएँ स्थापित हैं।

दुर्व्यसन-निरोधके लिए उपाय व संस्कृति-प्रसार

जब ग़रीब लोग घनी बस्तीमें रहने लगते हैं, तब उनके बाल-बच्चोंको बड़ी असुविधा होती है। उन्हें खेलनेके लिए पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। पिताके कामपर चले जानेके कारण उससे घरमें जो अनायास शिक्षा मिल सकती थी, वह नहीं मिल पाती। माँ-बाप दिनरात काम-धन्धेमें फँसे रहनेके कारण बाहर रहते हैं, अतः बाल-बच्चोंकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं रहता। परिणामतः ऐसे बच्चे रास्तोंमें भटकते रहते हैं और उन्हें नाना तरहकी बुरी लतें लग जाती हैं। आगे चल कर ये ही बच्चे चोरी इत्यादिके अपराध करने लगते हैं। ये स्कूलोंमें पढ़ते हों, तो भी अधिकसे अधिक छः घण्टे ही वहाँ रुके रह सकते हैं, शेष समयमें उन्हें दुर्व्यसन-विहीन मनोरञ्जन और व्यायामकी सुविधा प्राप्त हो सके, इस उद्देश्यसे वहाँ कई संस्थाएँ स्थापित हैं। अमेरिकन समाजतत्त्वज्ञोंका अनुभव है कि जिन बच्चोंको व्यायाम अथवा किसी कलामें अभिरुचि हो वे प्रायः कुमार्गगामी नहीं होते। वहाँके युवक-संघ (बॉयज़ क्लब) अधिकांशमें व्यायामविषयक हैं। ऐसे क्लब प्रायः श्रमिकोंकी बस्तियोंमें ही होते हैं। वहाँ तैरनेके तालाब हैं और वालीबाल, बिलियर्ड, पिंगपांग आदि खेल खेलनेके सब

साधन हैं। इसके अतिरिक्त जिन्हें चित्रकला, नाट्यकला, संगीत, वक्तृता आदिकी अभिरुचि हो, उनके लिए सब आवश्यक सामग्री तैयार रहती है और सिखानेका भी प्रबन्ध है। इस प्रकारके एक क्लबमें बालकोंने दीवारपर जो चित्रकारी की थी, वह इतनी सुन्दर थी मानो किसी उत्तम चित्रकारकी कृति हो।

छोटे बड़े सब लोगोंके लिए भी कुछ संस्थाएँ हैं जिन्हें 'सेटलमेंट हाउस' कहते हैं। इन संस्थाओंमें एक वर्षके बच्चेसे लेकर पचास वर्षके मनुष्यतकके लिए सब प्रकारका उपयोगी कार्यक्रम रहता है। एक विशाल भवनमें तैरनेका तालाब, व्यायामशाला, नाटकगृह, संगीतशाला, देवालय, पुस्तकालय, सभाभवन, बैठकर खेलनेके खेलोंका स्थान, स्टुडियो आदिकी उत्तम व्यवस्था है। सदस्योंसे बहुत ही थोड़ी फीस ली जाती है। सन्ध्या समय अथवा छुट्टीके दिन आबालवृद्ध सभी सदस्य वहाँ एकत्र होकर अपनी अपनी रुचिके अनुसार कार्यक्रममें भाग ले सकते हैं। गृहजीवनकी कमियोंको ऐसी संस्था पूरा करती है। ग़रीबीके कारण जिन बातोंका प्रबन्ध घरमें नहीं किया जा सकता, उनका लाभ थोड़े व्ययसे ही इन संस्थाओं द्वारा ग़रीब लोग प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकारसे ग़रीब लोगोंको भी संस्कृति-संवर्धनके साधन उपलब्ध हो जाते हैं। नगरोंके मोह और दुर्व्यसनोंसे लोगोंको दूर रखनेके लिए ऐसी संस्थाएँ उपयोगी होती हैं। अमेरिकाके सेटलमेंट हाउस ग़रीबोंकी उन्नतिके लिए अनेक उपयुक्त काम करते हैं। हर एक संस्थामें वैतनिक और अवैतनिक दोनों प्रकारके समाज-सेवक (सोशलवर्कर्स) होते हैं। उनके द्वारा समाजकी बौद्धिक, संस्कृति सम्बन्धी,

ग़रीबोंकी यूनिवर्सिटी

आरोग्य विषयक, व्यायाम सम्बन्धी, आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी सब प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति की जाती है। ऐसी संस्थाओंका जन्म आधुनिक सुधारोंके ही गर्भसे हुआ है।

आठवाँ अध्याय

वर्तमान युगकी नयी संस्थाएं

यह कहा जा सकता है कि अब अमेरिकामें छोटे छोटे धन्धोंका—काटेज इण्डस्ट्रीज़का—अस्तित्व नहीं रहा है। अमेरिकाने यह सिद्धान्त निश्चित कर लिया है कि पूँजी एकत्र कर उसके द्वारा बृहत् परिमाणमें उत्पादन किये बिना कोई धन्धा लाभदायक नहीं हो सकता। इस कारण खेती और डेअरी जैसे धन्धे भी बृहत्परिमाणमें किये जाते हैं। हर एक कारखानेमें हज़ारों आदमी काम करते हैं। कामोंका बँटवारा ऐसी सूक्ष्मतासे किया गया है कि हर एक मज़दूरके हिस्से कामका एक बहुत छोटा विभाग आता है। छःसे आठ घण्टे तक काम करने पर भी एक विशिष्ट शारीरिक क्रियाके अतिरिक्त और कुछ नहीं करना पड़ता। जो वस्तुएँ तैयार की जाती हैं उनमेंसे बहुत ही छोटा भाग एक मज़दूर तैयार करता है। सभी वस्तुएँ हज़ारों मनुष्योंके सम्मिलित परिश्रमसे तैयार होती हैं, इस कारण कारीगरको अपनी व्यक्तिगत कुशलताका जैसा गर्व होता है, वैसा कारखानेके मज़दूरको नहीं होता। वह एक ही क्रिया दिन भर करता रहता है, इससे उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है।

यन्त्रोंके समान मनुष्य

वह एक यन्त्र बन जाता है। स्वतन्त्र कारीगरी दिखानेका उसे अवसर नहीं रहता, इस कारण धीरे धीरे उसकी बौद्धिक तेजस्विता घटने लगती है।

यान्त्रिक उत्कर्षसे सभी काम तीव्र गतिसे होने लगे हैं, इस कारण अब पहले जैसे मानवी बल और समयकी आवश्यकता नहीं रह गयी है। आज अमेरिकाकी यान्त्रिक शक्ति इतनी बढ़ गयी है कि यदि कामका ठीक तरहसे बँटवारा किया जाय तो हर एक मनुष्य दिन-रातमें केवल तीन घण्टे काम कर सारा दिन अमीरी और भोग-विलासमें बिता सकता है। हर एक मनुष्य तीन घण्टे काम कर बाकी समय कैसे बितावे, यह प्रश्न अमेरिकाके सामने है। खाली समयका सदुपयोग कैसे किया जाय,* इस सम्बन्धमें शिक्षा-विशेषज्ञ और समाजनेता गम्भीरतासे विचार कर रहे हैं। इस प्रश्नको हल करनेके लिए वहाँ कुछ संस्थाएँ भी स्थापित हुई हैं।

खाली समयके काम

दिन भर एक ही काम करते करते मनुष्यका जी ऊब जाता है। यदि खाली समयमें उसे अपनी बुद्धि और कर्तृत्व-शक्तिका उपयोग करनेका सुभीता कर दिया जाय, तो उसकी व्यक्तिगत शक्तियोंका विकास होगा और समय भी अच्छी तरह बीतेगा। इसी विचारसे वहाँ ऐसी कुछ संस्थाएँ निर्माण हुई हैं, जो हाथकी कारीगरी (हैण्ड क्रैफ्ट्स) और कलाभ्यासका सुभीता कर देती हैं। उन संस्थाओंमें लकड़ी, मट्टी, रङ्ग, चित्रविद्याके उपकरण, स्टूडियो आदि अनेक उद्योग-धन्धों और कलाओंके साधन संगृहीत हैं। दिनमें काम-काज कर कारखानेसे छुट्टी पाने पर अवकाशके

प्राप्त सुविधाएँ

* Problem of Leisure.

समयमें लोग ऐसी संस्थाओंमें आते हैं और अपनी स्वतन्त्र बुद्धि तथा प्रतिभाका उपयोग करते हैं। ऐसी संस्थाओंके द्वारा सर्व-साधारणको कलाओंकी उपासना करनेका अच्छा सुभीता हो गया है।

शिक्षामें अनध्याय और अनध्यायमें शिक्षा

छोटे छोटे बच्चे बाल्यावस्थासे ही खाली समयका सदुपयोग करना सीखें, इसलिए अमेरिकामें छुट्टीके दिनोंमें वैकेशन स्कूल व ग्रीष्म वन-निवास (समर कैम्प्स) खुल जाते हैं। वेकेशन स्कूलोंमें बालक प्रातःकाल या दुपहरमें आकर अनेक उपयुक्त व्यवसाय सीखते हैं। लकड़ीके काम, धातुके पत्रोंके काम, मट्टीके काम, चित्रकला, संगीतकला, लेखनकला, सम्पादनकला, अनेक प्रकारके खेल, प्राकृतिक दृश्यों और नागरिक स्थानोंका अवलोकन आदि कार्य उक्त संस्थाओंमें हुआ करते हैं। जो संस्थाएँ सम्पन्न हैं, वे अपने बालकोंको एक दो मासके लिए समुद्र-तटपर, पहाड़पर अथवा जङ्गलोंमें ले जाती हैं। वहाँ वन-भ्रमण, खेल, हस्तकौशल, प्रकृति-निरीक्षण आदि काम किये जाते हैं। भावी व्यवसायकी प्रवृत्तिके जाँचने और खाली समयका सदुपयोग करनेके विचारसे ऐसी संस्थाएँ विद्यार्थियोंके लिए बहुत उपयोगी होती हैं।

उद्योग-धंधोंकी बहुलता

समाजकी बाल्यावस्थामें उद्योग-धन्धोंका स्वरूप बहुत मामूली होता है और उनकी संख्या भी छोटी रहती है। उस अवस्थामें पिताका ही व्यवसाय पुत्र करता है, इस कारण हर एक मनुष्यको स्वतन्त्र धन्धा खोजनेकी ज़रूरत नहीं रहती। यदि किसीको कोई स्वतन्त्र-धन्धा करना ही हो, तो उस छोटेसे समाजके सभी व्यवसाय लोगोंकी दृष्टिके सामने रहते हैं, इस कारण

अपनी अभिरुचिके अनुसार धन्धा चुन लेना और इच्छानुसार उसे बदल देना कठिन नहीं जान पड़ता। यान्त्रिक युगके कारण समाजोंका विस्तार बहुत बढ़ गया है और उद्योग-धन्धोंकी संख्या भी अधिक हो गयी है। अमेरिकामें इस समय कमसे कम दो हज़ार बड़े बड़े उद्योग-धन्धे चल रहे हैं। केवल उनका निरीक्षण कर कोई अपने अनुकूल धन्धा चुननेमें समर्थ नहीं हो सकता। इसी तरह जब किसीका कोई धन्धा छूट जाता है, तो वह भी सहजमें निश्चय नहीं कर सकता कि कौनसा नया धन्धा आरम्भ किया जाय। यान्त्रिक आविष्कारोंसे पुराने धन्धे डूब गये हैं और उनके स्थानमें कई नये धन्धे चल निकले हैं। जिनके पुराने धन्धे नष्ट हो गये हैं, उनके लिए नये धन्धोंका अवलम्बन करना आवश्यक हो जाता है। वे सोचने लगते हैं कि किस नये धन्धेकी शिक्षा प्राप्त की जाय। व्यक्तिगत दौड़-धूपसे यह प्रश्न हल नहीं हो सकता। अतः अमेरिकामें ऐसी संस्थाओंकी आवश्यकता थी जो समाजके सब उद्योग-धन्धोंकी जानकारी रखती हों और व्यक्तिकी योग्यताके अनुसार उसे उचित धन्धा सुझा सकती हों।

कैसा धन्धा चुना जाय?

इस तरहकी उद्योग-मार्गदर्शक संस्थाएँ (चिल्ड्रन्स गाइडेंस ब्यूरोज) और व्यवसायका पता लगानेवाली संस्थाएँ (एडजस्टमेण्ट ब्यूरोज) अमेरिकामें निकल भी चुकी हैं। इन संस्थाओंके रजिस्टरोंमें समाजके सब उद्योग-धन्धोंका ब्योरा लिखा रहता है और यह भी दर्ज रहता है कि किस धन्धेमें कितने लोग काम करते हैं और उन्हें कितना लाभ होता है। इन संस्थाओंमें काम खोजनेके लिए जब कोई बालक या मनुष्य आता है, तब उसकी मानसशास्त्रकी दृष्टिसे परीक्षा की जाती है और देखा जाता है कि

वह कौनसा धन्धा करनेके योग्य है। बालकको धन्धा सिखानेवाली किसी पाठशालाका नाम सुझाया जाता है और मनुष्यको उसके उपयोगी कोई,धन्धा बता दिया जाता है। इस प्रकार उक्त संस्थाएँ तीन काम करती हैं। मनुष्यकी योग्यताकी परख करतीं, विभिन्न धन्धोंके उम्मेद्वारोंका पता रखतीं और कारखानोंमें श्रमिकोंकी जो माँग होती है उसकी पूर्त्ति करती हैं।

अमेरिकामें औद्योगिक क्रान्तिके कारण समाजके सामने जो प्रश्न उपस्थित हुए और उन प्रश्नोंको हल करनेके लिए जो संस्थाएँ स्थापित हुई हैं, उन सबका अवलोकन कर भारतको इस सम्बन्धमें अपनी नीति निश्चित करनी चाहिये। अन्यान्य राष्ट्रोंके साथ भारतका इतना दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया है कि हम चाहें या न चाहें, नयी नयी कल्पनाओंका प्रवेश यहाँ हो रहा है और दिन दिन होता रहेगा। जो कल्पनाएँ या साधन यहाँ एकत्र हों, उनको हम आँख मूँदकर स्वीकार कर लें या उनके सम्बन्धमें मीमांसा करें, यह भी एक विचारणीय विषय है। सब बातोंकी मीमांसा करते हुए भले-बुरेका निर्णय हो जाना भी आवश्यक है। सबसे पहले हमें औद्योगिक, आर्थिक एवं समाज-रचनाकी दृष्टिसे अपना लक्ष्य और योजनाएँ स्थिर कर लेनी चाहिये।

भारतकी नीति

संसारमें यन्त्रोंका प्रसार हो गया है और उनकी शक्ति इतनी बढ़ गयी है कि उसने समाजका स्वरूप ही बदल दिया है। भारत पुराण-मतानुयायी है और यहाँके उद्योग-धंधे अभी बाल्यावस्थामें हैं; परन्तु यान्त्रिक प्रभावसे यहाँके समाजमें भी बहुत उलट-फेर हो गया है। पुराने धन्धोंके स्थानमें नये नये धन्धे उत्पन्न हो गये हैं। परम्परागत धन्धे छूटे जा रहे हैं और जो धन्धा हाथ

भारतमें यन्त्रोंका प्रभाव

आ जाता है, उसीको लोग करने लगे हैं। जन्मना कर्म-विभाग-की व्यवस्था प्रायः उठ सी गयी है। व्यवसायोंके क्षेत्र जन्म-स्थानसे बहुत दूर जा पड़े हैं और यातायातके साधनोंकी विपुलता होनेसे संयुक्त कुटुम्बपद्धति नष्ट होकर विभक्त कुटुम्ब-प्रणाली प्रचलित हो गयी है। यान्त्रिक युगके व्यवसायोंमें योग्यता प्राप्त करनेके लिए दीर्घ कालतक शिक्षाकी आवश्यकता होती है। इसका प्रभाव हमारी विवाह-व्यवस्थापर भी पड़ा है। यद्यपि अभी इस देशमें यान्त्रिक उन्नति अधिक नहीं हुई है, तथापि उससे समाजमें जो क्रान्ति हुई है वह नगण्य नहीं है। जितनी औद्योगिक उन्नति अमेरिकामें हुई है उतनी यदि यहाँ हो जाय, तो यहाँकी क्रान्तिका क्या रूप होगा, कहा नहीं जा सकता। औद्योगिक सुधार भी हों और सनातन समाज-व्यवस्था भी बनी रहे, ऐसा जो विचार करते हों, वे मानों खयाली दुनिया-में रहकर वास्तविक संसारकी ओरसे आँखें मूँद ले रहे हैं।

यदृच्छासे या पूर्व-योजनाके अनुसार ?

पाश्चात्य देशोंकी औद्योगिक क्रान्तिसे हमें एक लाभ हुआ है। उनके दो शताब्दियोंके अनुभवका उपयोग हम कर सकते हैं। पाश्चात्य देशोंने यन्त्रोंको मुख्य मानकर तदनुसार अपने समाजकी रचना की है। भारतके सामने दो मार्ग हैं—एक तो पाश्चात्य देशोंके अनुसार यान्त्रिक उत्कर्षके साथ साथ समाजका जो कुछ रूप बन जाय, उसको स्वीकार कर लेना, और दूसरा भावी सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक समाज-रचना कैसी हो, इसकी पूर्वयोजना तैयार कर तदनुसार यन्त्रोंका उपयोग करना। दोनोंमेंसे हम किस मार्गका अनुसरण करें, यह निश्चित करना हमारी सावधानतापर निर्भर है। भारतमें यन्त्रोंकी अभिवृद्धि होगी और होना आवश्यक भी है; परन्तु प्रश्न यह है कि

ान्त्रिक उन्नति कर समाजकी रचना बदली जाय, अथवा अपने क्ष्यको सामने रखकर उसकी सिद्धितक ही हम यन्त्रोंका पयोग करें ?

नवाँ अध्याय

ऐहिक उत्कर्षका रहस्य

अमेरिकामें प्रवेश करते ही अन्य देशवाले मनुष्यके ध्यानमें बसे पहले यह बात आती है कि वहाँ सभी जगह यन्त्रोंका उपयोग किया जाता है जिससे मनुष्योंकी आवश्यकता कम हो गयी है। गमनागमनके लिए

यंत्रोंकी दुनियाँ

हरोंमें ज़मीनके नीचे बिजलीकी गाड़ियाँ दौड़ा करती हैं, तनसे लाखों लोग यात्रा करते हैं। टिकट बेचने या बटोरनेके लिए टिकट बाबूकी जरूरत नहीं। यंत्रमें किरायेकी रकम छोड़ते ी यात्री टिकट पा जाता है। स्टेशनोंपर या अन्यत्र भी अमेरिकन ोग दिनभर कुछ न कुछ खाया करते हैं। मुँह चलानेकी उन्हें ादत पड़ी रहती है। उनके लिए स्थान स्थानपर मूँगफली, ाकलेट आदि पदार्थोंकी पेटियाँ रखी रहती हैं। पेटीमें पैसा ोड़ते ही उतने मूल्यकी वस्तु हाथमें आ जाती है। पैसे दो पैसे-ी वस्तुओंके वेचनेका काम वहाँ मनुष्यों द्वारा करानेमें परता हीं पड़ता। कहीं कहीं ऐसे होटल हैं, जहाँ २५-३० खिड़कियोंमें ाद्य पदार्थ भरे रहते हैं। सब पदार्थोंका मूल्य पासकी तखती-र लिखा रहता है। जो वस्तु अपेक्षित हो, उसका मूल्य यन्त्रमें ोड़ दीजिये। रोटी, तरकारी, चाय, काफी, फल आदि जो

वस्तु चाहें आपके सामने आ जायगी। पासकी मेजपर बैठकर आरामसे भोजन कीजिये और चलते बनिये। मनुष्य-बलका उपयोग घट जानेसे सब वस्तुएँ सस्ती भी पड़ती हैं। ऐसे होटलोंको 'आटोमैट' कहते हैं। ये 'घरके बाहरकी बातें हैं। घरके रसोईघरकी भी यही बात है। जो अमेरिकन अन्नपूर्णा (गृहिणी) घरमें ही रसोई पकाती हैं, उसके सुख-सुभीतोंको देखकर भारतीय गृहलक्ष्मी यही चाहेगी कि मेरा अब यदि जन्म हो, तो अमेरिकामें ही हो। हमारी गृहिणियाँ चौका-बरतन करतीं, मट्टीके तेलकी धज्जीसे चूल्हा जलातीं, छाती जबतक फट न जाय, तबतक चूल्हा फूँकतीं, राख पोतकर बरतन चूल्हेपर रखतीं और सब काम हो जाने पर जब नारियलकी झाड़ूसे सारा घर धोकर बुहार लेती हैं, तब कहीं दम लेनेकी उन्हें फुरसत मिलती है। हमारी माताओंकी इस गृहस्थीके साथ अमेरिकन महिलाओंकी गृहस्थीकी तुलना करने पर ज़मीन आस्मानका अन्तर देख पड़ता है। वहाँ चूल्हा सुलगाना हो, तो एक बटन दबा देनेसे ही काम बन जाता है। हाथ धोनेके लिए दिनरात गरम पानी मिलता है। तरकारी चीरने, छीलने, बनाने, कसने, रस निचोड़ने आदिके यन्त्र घर घरमें मौजूद हैं, जिनसे मनुष्यके बहुत-से श्रम बच जाते हैं। बरतन मलनेके ऐसे यन्त्र हैं कि उनसे एक मिनटमें बरतन धोलो और अपना मुँह देख लो। कपड़े धोने-सुखानेके भी यन्त्र सर्वत्र देख पड़ते हैं। आविष्कारकों और वैज्ञानिकोंने इतने अधिक यन्त्र तैयार किये हैं, जिनके कारण स्त्रियोंका गृहस्थीका काम बहुत हलका हो गया है। ये सब बातें ऐसी हैं जो साधारण मनुष्योंकी दृष्टिमें स्वाभाविक रूपसे आती रहती हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे लाखों आविष्कार बुद्धिकी सहायतासे किये गये हैं, जिनसे मनुष्योंका श्रम हलका हो गया

है और दैनिक जीवनकी सुख-सामग्रीमें अभिवृद्धि हुई है। वहाँ भी कभी-कभी अकाल या व्यापारिक मन्दी हो जाती है, परन्तु वहाँके भारतवासियोंका मत है कि भारतवर्षके सुभिक्षसे अमेरिकाका दुर्भिक्ष भी कहीं अच्छा होता है।

सर्वत्र औद्योगिक खोज और प्रयोग

अमेरिकामें जो कुछ औद्योगिक तथा यान्त्रिक उत्कर्ष हुआ है और भौतिक सुख-समृद्धिकी वृद्धि हुई है, वह अमेरिकनोंके बौद्धिक एवं शारीरिक परिश्रमका फल है। शुरू शुरूमें तीन सौ वर्ष पूर्व जब वे अमेरिकामें पहुँचे, तब वह देश एक बड़ा भारी जङ्गल था; परन्तु आज नन्दनकाननका सब सौन्दर्य तथा सुख वहाँ विद्यमान है। अमेरिकाके हज़ारों मस्तिष्क इस समय वैज्ञानिक तथा औद्योगिक खोजोंमें संलग्न हैं। वे लोग विशेष रूपसे व्यावहारिक हैं और यही सोचा करते हैं कि व्यवहारमें शास्त्रोंका उपयोग किस तरह किया जाय। कालेजोंमें जो प्रयोगशालाएँ होती हैं उनमें तात्विक और व्यावहारिक अनुसंधान बराबर हुआ करते हैं। हरएक कारखानेके साथ भी एक औद्योगिक प्रयोगशाला होती है, उसमें भी खोजका कार्य जारी रहता है। रेडियो, आटोमोबिल आदिका जो साधारण मनुष्य व्यवहार करते हैं, वे यदि छोटे मोटे आविष्कार कर कारखानेदारोंको कुछ सुधार सुझावें, तो उनका उपयोग कारखानेवाले कर लेते और आविष्कारकको उचित पुरस्कार देते हैं। तात्पर्य यह कि वहाँ शास्त्र और शास्त्रज्ञ (कालेजोंमें पढ़ानेवाले विज्ञानके प्रोफेसर) संन्यासियोंकी तरह व्यावहारिक दुनियासे अलग रहनेवाले नहीं हैं। शास्त्र और शास्त्रज्ञोंका वहाँ व्यवहारमें उपयोग होता है, इसीसे वह राष्ट्र सुखी तथा समृद्ध है। साइन्सके भारतीय प्रोफेसरों और शास्त्रज्ञोंकी मनोवृत्ति 'विशुद्ध विज्ञान' में ऐसी रँगी रहती है कि

शास्त्रके व्यावहारिक उपयोगको वे छोटा काम समझते हैं। जबतक यह स्थिति बनी रहेगी, तबतक हमारी गृहदेवियाँ छाती फाड़ फाड़कर चूल्हा फूँका करेंगी और हमारे प्रोफेसर कालेजके 'माइक्रास्कोप' के लिए विलायत 'आर्डर' भेजते रहेंगे।

बालकोंमें भी विज्ञान-विषयक अभिरुचि

पाठशालाओं, कालेजों और कारखानोंकी प्रयोगशालाओंके अतिरिक्त अन्यत्र भी ऐसा उद्योग किया जाता है, जिससे युवकों और सर्वसाधारण जनतामें वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विषयोंके सम्बन्धमें अभिरुचि उत्पन्न हो। स्थायी और अस्थायी औद्योगिक तथा वैज्ञानिक प्रदर्शन वहाँ बराबर किये जाते हैं। हर एक बड़े नगरमें एक-एक स्थायी वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रदर्शनी* होती है। हमारे यहाँकी प्रदर्शनियोंपरसे वहाँकी प्रदर्शनियोंकी कल्पना नहीं की जा सकती। वहाँ अनेक व्यापक कार्यक्रम होते हैं। स्कूल-कालेजोंके शिक्षाक्रममें उन प्रदर्शनियोंका उत्तम उपयोग हो सके, इस उद्देश्यसे वहाँ सब तरहकी सुविधाएँ दी जाती हैं। कभी कभी तो कालेजोंके क्लास ही वहाँ लग जाते हैं। प्रदर्शनियोंमें औद्योगिक और वैज्ञानिक विषयोंपर व्याख्यान बराबर होते रहते हैं। चित्रपटोंका भी व्याख्यानोंमें उपयोग किया जाता है। न्यूयार्कके म्यूज़ियममें एक सप्ताहमें जो व्याख्यान हुए थे, उनके विषयोंकी सूची नीचे लिखी जाती है, जिससे ज्ञात हो जायगा कि साधारण मनुष्य भी इन विषयोंको किस तरह सहजमें समझ सकता और इनका उपयोग व्यवहारमें कर ले सकता है—गैस बत्तीका इतिहास,† हवाई जहाज,‡

---

* Museum of Science and Industry.

† History of Gas-lighting. ‡ Sky Harbour.

फौलादका इमारतके लिए उपयोग,* टेलीफोन, रेडियो,† एक्स-किरणोंके चमत्कार,‡ बिजलीका व्यावहारिक उपयोग§ इत्यादि। इन विषयोंके चित्रपट विभिन्न कारखानेवालोंने अपने मालकी अप्रत्यक्ष रूपसे प्रसिद्धि होनेके लिए ही बनाये हैं, परन्तु उनसे ज्ञानकी वृद्धिमें भी बहुत सहायता मिलती है।

यान्त्रिक आविष्कारोंसे कितना लाभ हुआ है, तुलनात्मक दृष्टिसे यह सिखानेके लिए चीन और भारतकी खानों तथा खेतोंके चित्र दिखाये जाते हैं, जिनसे ज्ञात हो सके कि वहाँ मज़दूर कैसे परिश्रमसे काम करते हैं। खानों और खेतोंमें सैकड़ों स्त्री-पुरुष हाथसे दिन भर काम कर अन्तमें दस आना पा रहे हैं। यह दृश्य समाप्त होते ही अमेरिकन कारखानों और खेतोंका दृश्य दिखाया जाता है, जहाँ मज़दूर और खेतिहर यन्त्रोंकी सहायतासे आरामके साथ काम कर रहे हैं और सन्ध्या समय पाँच डालर (पन्द्रह रुपया) पा जाते हैं। हर तरहसे दर्शकोंको समझा दिया जाता है कि यन्त्रकी सहायतासे श्रम कम करना पड़ता है और मज़दूरी अधिक मिलती है।

इस तुलनात्मक पद्धतिका उपयोग सर्वत्र किया जाता है। न्यूयार्कके म्यूज़ियमके पहिले ही दालानमें पैर रखने पर हिन्दुस्थानका एक दृश्य देख पड़ता है। उसे देखकर ग्रामोंकी उन चक्कियोंका स्मरण हो आता है, जिनका शब्द प्रभातके समय भारतीय ग्रामोंमें सुनाई देता है। चालीस-पचास वर्षकी दो मारवाड़ी स्त्रियाँ पत्थरकी चक्कीसे गेहूँ पीस रही हैं। चाँदीके गहने हैं, पैरमें छड़े

हिन्दुस्थानी चक्की और अमेरिकन यन्त्र

* Empires of Steel. † Far Speaking.

‡ Revelations of the X Ray. § Romance of Power.

हैं, इंडियन प्रिण्ट छींटकी साड़ी है। इसी चित्रके पास छोटीसी आटेकी यान्त्रिक चक्कीका चित्र है। दोनों चित्रोंके एक साथ देखनेसे हिन्दुस्थान और अमेरिका, मनुष्यबल और यन्त्रबल, केवल शारीरिक परिश्रम और बौद्धिक-शारीरिक परिश्रम एवं सोलहवीं तथा बीसवीं शताब्दी दोनोंका भेद और विरोध अनायास समझमें आ जाता है।

प्रदर्शनके दस-बारह दालान हैं। उनकी रचना ऐसी है कि देखकर शास्त्र और व्यवहारका परस्पर सम्बन्ध ध्यानमें आ जाता है। न्यूयार्क जैसे नगरमें संसारके कोने कोनेसे भोज्य पदार्थ कैसे मँगाये जाते हैं, विज्ञान-का उपयोग कैसे किया जाता है, इत्यादि बातें यन्त्रों और चित्रपटोंकी सहायतासे समझायी जाती हैं। एक दालानमें दिखाया गया है कि गत दो शताब्दियोंमें कपड़ों और रहनेके घरोंमें कितनी क्रान्ति हुई है। पुराने और नये कल-पुरजोंकी सहायतासे बताया गया है कि सवारीके साधनोंमें बैलगाड़ी (सग्गड़) से लेकर हवाई जहाजतक कैसी क्रमोन्नति हुई है। हर एक पुरजा अलग अलग रखा है और यह सुभीता कर दिया है कि वैज्ञानिक तत्त्व ज्ञात हो जाय। हवाई जहाजके दालानमें एक छोटासा हवाई जहाज रख दिया गया है। उसमें बच्चे चढ़ते और सब कल-पुरजे जान लेते हैं। इसके अतिरिक्त टेलीफोन, रेडियो, विभिन्न मशीनें, बिजलीके यन्त्र आदि ऐसे व्यवस्थित रूपसे रखे हुए हैं कि साधारण जनता और बच्चे सब बातें अच्छी तरह समझ लेते हैं।

यान्त्रिक जिज्ञासाकी वृद्धि होनी चाहिये

विशेष बात यह है कि हर एक बालक अपने हाथसे यन्त्र चला कर देख सकता है, उसे कोई रोकता नहीं। बिजलीका बटन दबाते ही यन्त्र चलने लगता है और उसकी सब क्रियाएँ

देख पड़ती हैं। वास्तवमें सच्ची जिज्ञासा बालकोंमें ही हुआ करती है। उन्हें यन्त्रको हाथ लगानेसे अथवा चलानेसे रोक देने पर उनकी जिज्ञासा दब जाती है। उन्हें उत्तेजना देनी चाहिये क्योंकि भावी वैज्ञानिक एवं आविष्कारक इन्हीं बच्चोंमें-से निकलेंगे। हर एक यन्त्रके पास एक चल चित्रपट रहता है। बटन दबाते ही वह चलने लगता है और दस-पन्द्रह मिनट चलता रहता है। उस फिलमके देखनेसे उस यन्त्रकी सब छोटी बड़ी बातें ज्ञात हो जाती हैं। इस प्रकार अमेरिकामें सर्वसाधारणकी, विशेषतः बच्चोंकी, जिज्ञासा 'जाग्रत कर उसकी पूर्त्तिका प्रयत्न किया जाता है।

प्रसन्नताका मूल वैज्ञानिक उन्नति

अमेरिका-प्रवासी अन्य देशीय लोग अमेरिकनोंको सदा प्रसन्न और सुखी देखते हैं। उनकी प्रसन्नताका मूल कारण वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति ही है जिसकी जड़ें शिक्षा-संस्थाओं, प्रयोगशालाओं, कारखानों और औद्योगिक प्रदर्शनोंमें फैली हुई हैं। देश-की भौतिक उन्नति वाञ्छनीय हो, तो सबसे पहले बहुजन समाजमें वैज्ञानिक आविष्कारों एवं उद्योग-धन्धोंकी अभिरुचि उत्पन्न होनी चाहिये और यह बात अमेरिकासे सीखने योग्य है।

दूसरा विभाग

रूस—पन्द्रह वर्षोंकी क्रांति

दसवाँ अध्याय

रूसी समाजका दर्शनीय चित्र

ज्ञात होता है कि भावी इतिहासकार बीसवीं शताब्दीका इतिहास लिखते समय कदाचित् इस काल-विभागको 'क्रान्ति-शताब्दी' इस अन्वर्थक नामसे ही सम्बोधन करेंगे। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' के अनुसार इसका भावी रूप अभीसे स्पष्ट है, क्योंकि इन ३५ वर्षोंमें ही संसारके कितने ही राष्ट्रोंमें महत्त्वपूर्ण क्रान्तियाँ हो गयी हैं। अधिकार-संक्रमणकी देहरीपर इस समय भारत पैर रख रहा है। ऐसे समयमें हमारे लिए क्रान्ति-प्रवृत्त और उत्कर्षशील राष्ट्रोंके इतिहास तथा वर्त्तमान अवस्थाके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए उत्सुक होना स्वाभाविक है।

वर्त्तमान शताब्दीका क्रान्तिकारक आरम्भ

रूसको हराकर जब जापानने विजय प्राप्त की, तब भारतीय युवकोंने जापानी वीरोंकी कथाएँ पढ़ीं; आयर्लैण्डकी स्वतन्त्रताके प्रयत्नोंके इतिहासका पारायण किया, इटालियन राष्ट्रवीरोंके चरित्र लुक छिपकर पढ़े और इस तरह अपने देशकी राष्ट्रीय भावना जाग्रत रखी। हालमें जो क्रान्तियाँ हुई हैं, उनकी छाया भावी शताब्दीपर पड़े बिना न रहेगी। उन क्रान्तियोंके मूलमें जो विचार हैं, उनका प्रवाह छोटे बड़े सब समाजोंमें प्रवाहित होगा। इसका परिणाम यह होगा कि पूर्वप्रस्थापित और परम्परागत राजनीतिक विचारोंकी जड़ें हिल जायँगी। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्ततक राजसत्ता, लोकतंत्र, साम्राज्यवाद आदिके विचार सर्वसम्मत थे। महायुद्ध-

रूस और भारत

के अनन्तर रूस, इटली, जापान और जर्मनीमें राजनीतिक परिवर्तन हुए हैं। फासिज़्मके बलपर इटलीने यूरोपके श्रेष्ठ राष्ट्रोंमें स्थान प्राप्त किया। जर्मनीमें नाजीज़्म उत्पन्न हुआ, जिससे यूरोपीय राष्ट्रोंकी छाती दहल गयी। रूसने अभूतपूर्व सामाजिक क्रान्ति कर डाली और वहाँकी नयी सत्ता स्वीकार करनेको बलवान् राष्ट्रोंको बाध्य किया। जापानने यूरोपीय राष्ट्रों अथवा श्वेतांगोंकी प्रस्थापित श्रेष्ठताका सामना किया और एशियामें नूतन साम्राज्यवादको जन्म दिया। संसारके इन सब प्रयोगोंका अन्धानुकरण न कर मीमांसक दृष्टिसे ही इनका निरीक्षण करना चाहिये। इनमेंसे क्या त्याज्य और क्या ग्राह्य है, इसका विचार कर जो साधन लक्ष्यसिद्धिके अनुकूल प्रतीत हों उनका उपयोग कर लेना उचित ही है।

रूसका उपास्य लेनिन

औद्योगिक संघटन, शिक्षाविस्तार, सामाजिक संघटन आदि सम्बन्धी जो प्रयोग रूसमें किये जा रहे हैं, उनकी जानकारीसे भारतीय कार्यकर्ताओंको भी लाभ पहुँच सकता है। देशकी विशालता, बढ़ती हुई बड़ी आबादी, जनसमूहमें फैला हुआ अज्ञान, औद्योगिक बाल्यावस्था, समाजकी विविध भाषाएँ आदि अनेक बातोंमें रूस और भारतकी स्थिति परस्पर मिलती जुलतीसी है। अन्तर यही है कि अपने उत्कर्षके सब साधन रूसने तैयार कर लिये हैं और शक्तिसम्पादनके मार्गपर वह अग्रसर हो रहा है, किन्तु भारतको उन सब साधनोंका सम्पादन करना अभी बाकी ही है। 'रेडस्क्वेअर' नामक विशाल आँगनमें वहाँ (लेनिनग्राडमें) सन्ध्याके लगभग पाँच बजे हजारों लोग एकत्र होते हैं और उनका यह सम्मेलन सात बजेतक चलता रहता है। आषाढ़ी-कार्तिकी एकादशीके दिन दक्षिणमें पण्ढरपुरके विट्ठल मन्दिरमें

अथवा महाशिवरात्रिके दिन काशीके विश्वनाथ-मन्दिरमें पुलीस थोड़े थोड़े लोगोंको दर्शनके लिए भीतर छोड़ती है, इसी तरह वहाँकी पुलीस आँगनमें एकत्र हुए लोगोंको दो दोके क्रमसे एक भवनमें जाने देती है। यह भवन कोई धार्मिक देवालय नहीं, किन्तु एक महान् राजनीतिक पुरुषका समाधि-मन्दिर है। यहाँ रूसी राज्य-क्रान्तिके विचार-प्रवर्त्तक कर्मवीर निकोलस लेनिन-का मृत-शरीर काँचकी एक पेटीमें रखा है। प्रतिदिन हजारों लोग इसके दर्शन किया करते हैं। काकेशस पर्वतके भूरे और काले संगमरमरसे समाधिका बाहरी भाग बना है और भीतर नीले तथा बैंगनी रंगके पत्थरका उपयोग किया गया है। मन्द प्रकाश और शान्तिके कारण वहाँ गम्भीरता छायी रहती है। लेनिनका शरीर फौजी पोशाकमें लेटाया हुआ है। चन्दी खोपड़ी, भूरी दाढ़ी-मूँछ, चिन्ताशील और दृढ़ता भरी मुख-च्छबि, बँधी मुट्ठी और नाटा कद, इसी रूपमें वहाँ लेनिनका दर्शन होता है। किसी एक ही लक्ष्यको सामने रखकर जीवनको विस-र्जन करनेवाला एक महापुरुष संसारमें कितने बड़े बड़े काम कर सकता है, यह विचार लेनिनकी मूर्त्तिके दर्शनसे मनमें उत्पन्न होता है।

समाधिस्थानसे बाहर निकल आने पर लेनिनका निर्माण किया हुआ नवीन समाज और नया जगत् देख पड़ने लगता है। रूसके लेनिनग्राड और मास्को ये दो नगर बहुत विशाल हैं। हर एकमें तीस-पैंतीस लाख मनुष्योंकी आबादी है। संसारके नगरोंमें इनका नम्बर पाँचवाँ, छठाँ है। परन्तु न्यूयार्क, लन्दन, पेरिस, विएना और बर्लिनकी सड़कोंपर जैसा समाज देख पड़ता है, उससे रूसकी सड़कोंपरके समाजमें भिन्नता है। रूसकी सड़कोंपर चलते हुए ज्ञात होता

श्रमिकोंकी संस्कृति

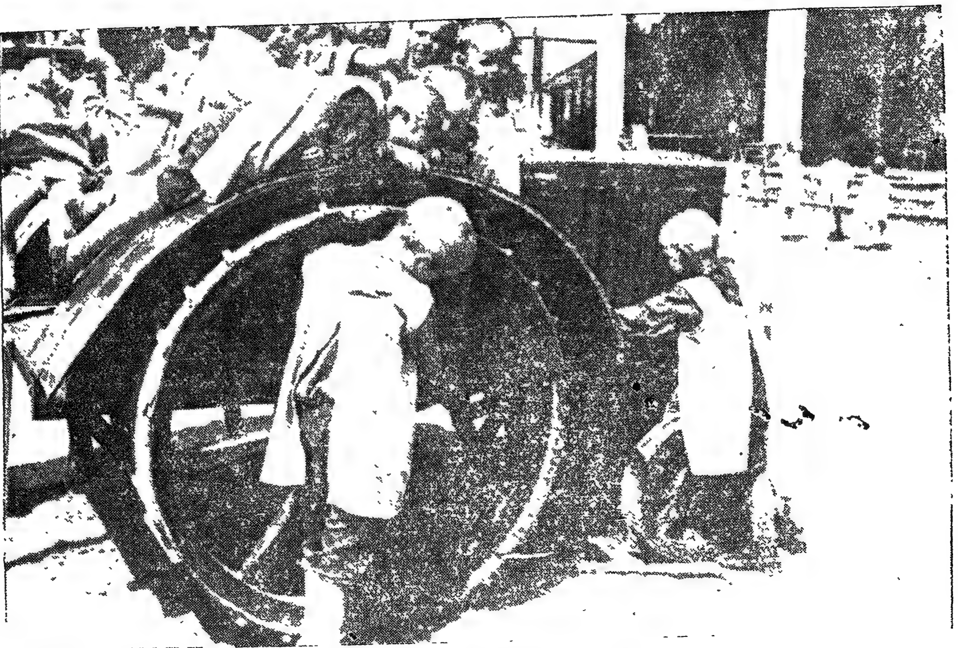
है कि हम किसी नयी संस्कृति और नये समाजमें आ पहुँचे हैं। रोब-दाबकी पोशाक और भड़कीले वस्त्र पहिने हुए स्त्रियाँ नहीं देख पड़तीं। यह श्रमिक-समाज है। मध्यम श्रेणीका समाज अथवा व्यक्ति वहाँ नहीं है। ऊँची ऊँची टोपियाँ (जैसी अंग्रेज प्रधानोंके चित्रोंमें देख पड़ती हैं), ऊँची एड़ीके बूट, लम्बे लम्बे लहँगे, इस्तरी किए हुए सूट वहाँ कोई नहीं पहनता। साधारणतः यूरोपीय नगरोंके व्यावसायिक हिस्सेकी सड़कोंपर जैसा श्रमिक समाज देख पड़ता है, वैसा रूसमें सर्वत्र देखा जाता है। वहाँ धनिकों और श्रमिकोंकी बस्तियाँ (स्लम्ज़) पृथक् पृथक् नहीं हैं। मास्को-लेनिनग्राडका समाज ही श्रमिक-समाज है और वहाँ जो संस्कृति देख पड़ती है, वही रूसकी संस्कृति है।

यूरोपसे रूसमें प्रवेश करते ही भारतकी दरिद्रताका चित्र आँखोंके सामने खिंच जाता है। राजमार्गको छोड़कर अन्य रास्तोंमें पहुँचते ही कीचड़ और गड्ढे देख पड़ते हैं। मकानोंकी पुताई फीकी पड़ गयी है और बहुत दिनोंसे उनकी मरम्मत भी नहीं हुई है। बाहरसे जो भवन भव्य देख पड़ते हैं, उनमें घुसते ही लोगोंकी ग़रीबी नज़रमें आ जाती है। राहगीरोंमेंसे किसीके पैरमें अच्छे जूते हैं और किसीने फटी जूतियोंको सिलाकर शीत-निवारणका प्रबन्ध कर लिया है। उत्तरी रूसमें जाड़ा अधिक पड़ता है। लोगोंके लिए शरीर गरम रखना आवश्यक है। कुछ लोगोंको सादे कपड़े नसीब हो गये हैं पर कुछ लोगोंने धज्जियाँ जोड़कर फटे कपड़ोंसे ही शरीर-रक्षाका उपाय कर लिया है। भोजनका समय होते ही लोग अपना पाथेय, चाहे वे कहीं भी हों, खोलकर भोजन करने लगते हैं। बाजरेकी

दारिद्रतामें भारतकी नकल



रूसका श्रमिक समाज



रूसी बालक यंत्रोंसे खेल रहे हैं

तरहका वहाँ एक अन्न होता है, उसके रोट, फीकी चाय और चीनीकी दो-एक डली, यही उनका साधारण भोजन है। राह-चलते श्रमिकोंको ही नहीं, किन्तु बड़ी बड़ी रिसर्च लेबोरेटरियों (प्रयोगशालाओं) में जो काम करते हैं, उन्हें भी बीचकी छुट्टी-में यही अन्न खानेको मिलता है। स्थानीय अधिकारी विदेशी पर्यटकोंको प्रायः तीसरे दर्जेमें यात्रा न करनेके लिए समझाते हैं, परन्तु समाजकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त करनेके विचारसे मैंने तीसरे दर्जेमें ही यात्रा की। जहाँ गया, वहीं हिन्दुस्थानी दरि-द्रताकी झलक देखी। वहाँकी तीसरे दर्जेकी गाड़ियोंमें सुभीता यही है कि हर एक मुसाफिरको एक अलग पटरी (बेंच) मिल जाती है। सामान्य जनताको प्राप्त भौतिक सामग्री, पोशाक और अन्नकी दृष्टिसे वहाँकी ग़रीबी भारतवर्षसे किसी प्रकार कम नहीं है। वहाँके समाजमें यदि कोई व्यक्ति ठीक ठीक पोशाक या अच्छी टोपी पहने हुए देख पड़ता तो उसके आस-पास लोग एकत्र होकर उसे आश्चर्यसे देखने लगते हैं।

नये समाजकी नयी रचना

ऊपर रूसकी दरिद्रताकी जो स्थिति दिखाई गयी है वह पहिलेसे फिर भी बहुत अच्छी है। मौजूदा हालत अवनतिकी ओर नहीं, उन्नतिकी ओर ही झुक रही है। दो ऐसे सज्जनोंसे मेरी भेंट हुई, जो पचीस वर्ष पहले यहाँ रह चुके थे और जिन्हें फिर वापस आये दो वर्ष हुए हैं। वे कहते थे कि पहलेकी अपेक्षा रूसकी वर्तमान स्थिति बहुत अच्छी है। अब सादे किन्तु पर्याप्त कपड़े, साधारण जूते और मामूली अन्न लोगोंको मिलने लगा है। पहले यह अवस्था नहीं थी। इस समाज-चित्रसे सोविएट सरकारके सामने जो काम आ पड़े हैं, उनकी कल्पना की जा सकती है। सोलह करोड़ लोगोंको पर्याप्त कपड़ा-लत्ता देना,

उनके लिए अन्न जुटाना, रहनेका प्रबंध करना, उनके जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंका निर्माण कराना, आरोग्य और सुसंस्कृत रहन-सहनकी शिक्षा देना तथा ये सब काम जिस शासन-पद्धतिसे सम्पन्न हो सकते हैं, उसे समझाकर उसके अनुकूल लोकमत तैयार करना, ये ही विराट् कार्य रूसने हाथमें लिये हैं और उन्हें वह तत्परतासे कर रहा है।

उत्पत्ति, स्थिति और लय, संसारकी ये ही तीन अवस्थाएँ हुआ करती हैं। रूसमें जहाँतहाँ उत्पत्तिकी भावना दृग्गोचर होती है। जिधर देखो उधर रचनाका काम हो रहा है। सड़कों-पर गिट्टी पड़ी है और अलकतरेकी सड़कें बन रही हैं। कहीं लोहेकी रेलें बिछी हैं जिनसे नयी ट्रामके रास्ते तैयार हो रहे हैं। कहीं पाँच मंजिलकी इमारतें आठ मंजिलकी बनायी जा रही हैं। कहीं आधुनिक शिल्पके अनुसार नयी इमारतें बन रही हैं और पास ही पुरानी इमारतोंके भग्नावशेष खड़े हैं, जिनके पुन-र्निर्माणके लिए माल-मसाला इकट्ठा किया गया है। कहीं नये कारखानोंके लिए इमारतें बन रही हैं और कल-पुरजे लाकर रख लिये गये हैं। सारांश, नयी रचना, नया निर्माण, नयी बनावट, सभी नगरों, उनके भागों और रास्तोंमें जारी है यह देखकर प्रतीत होता है कि इस संघटनके मूलमें कोई संयोजक शक्ति है और उसीकी प्रेरणासे सब काम हो रहे हैं। यूरोप-अमेरिकाके नगरोंको देखकर चित्तमें पूर्णताकी भावना उदित होती है। वहाँके शिल्प, संस्कृति एवं समाज-रचनाका काम पूर्णावस्थाको प्राप्त हो चुका है और उस काममें स्थिरता आ गयी है। वहाँके मार्ग साफ सुथरे हैं। कोई इमारत अधूरी नहीं देख पड़ती। वहाँकी संस्कृति उत्पत्तिकी अवस्थाको पारकर स्थितिकी स्वाभाविक अवस्थामें पहुँच गयी है। रूसकी भौतिक

और मानवी संस्कृति उत्पत्तिकी प्राथमिक अवस्थामें है। भारतकी म्युनिसिपल्टियोंकी सड़कें सालभर बनती ही रहती और जहाँतहाँ बन्द रहती हैं। रूसमें यह बात नहीं। वहाँ बड़ी बड़ी रचनाओंके कार्य होते रहते हैं; परन्तु वहाँकी सड़कें बन्द नहीं की जातीं।

नये व पुराने रूसमें अन्तर

मास्को और लेनिनग्राड (जिसका नाम पहिले पेट्रोग्राड था) ये दोनों नगर रूसके ज़ार सम्राटोंने बसाये थे। दोनों नगरोंमें ज़ारों और उनके सरदारों तथा माण्डलिकोंके अनेक प्रासाद एवं विलास-स्थान थे। जिन नगरोंमें कुछ ही वर्ष पूर्व अमीरोंके लिए ही सब सुख-सुभीते थे, उन्हीं नगरोंमें इस समय जनताका साम्राज्य है। जिन विलास-भवनोंमें अबतक अमीरोंने गुलछर्रे उड़ाये थे, वहीं अब शिक्षा और अनुसंधानकी संस्थाएँ स्थापित हुई हैं। खास लोगोंके लिए जो उद्यान सुरक्षित (रिज़र्व) थे, वहीं अब मामूली श्रमिकोंके श्रमनिवारण, शिक्षा और सात्विक मनोरञ्जनकी व्यवस्था की गयी है। राजकुमारों और राजकुमारियोंके मनोहर भवनोंमें दो सौके स्थानमें इस समय दो हज़ार छात्र-छात्रियाँ शिक्षा पा रही हैं। जिन नाट्य-मन्दिरोंमें केवल ज़ारके मेहमानोंके मनोविनोदके लिए नाट्याभिनय होते थे, वहाँ अब साधारण श्रमिक स्त्री-पुरुष उच्चतम कलाओंका आस्वादन करते हैं। रूसी क्रान्तिकी विशिष्टता इन्हीं बातोंमें है। भौतिक सुख, समृद्धि (वैभव) और सुसंस्कृत कलाओंके आसपास धनिकोंने जो कृत्रिम आर्थिक दीवार खड़ी कर रखी थी, वह नष्ट कर दी गयी है। संस्कृतिका प्रवाह बहुजन समाजमें प्रवाहित कर रूसने अखिल जनतारूपी जनार्दनके उद्धारका कार्य प्रारम्भ कर दिया है। पाश्चात्य देशों जैसे उच्छृंखल

नाचघर, कामुक मनोरञ्जनशैली और उत्तेजक विलासस्थान रूसमें नहीं हैं, क्योंकि नवीन समाज-रचनाके उत्साहमें भर-कर जो कार्यपटु बन गये हैं, उन गम्भीर मनोवृत्तिवाले लोगों-की दृष्टिमें ऐसी बातें छिछोरेपनकी हैं। परन्तु कलाओंकी दृष्टि-से आबालवृद्ध स्त्रीपुरुषोंके मनोरञ्जन और शिक्षाके स्थान हर जगह बने हुए हैं।

रूसी लोग आज ग़रीब हैं और सादे या फटे कपड़े पहनकर तथा चाय-रोटी खाकर दिन काट रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु पश्चिमी देशोंमें जहाँतहाँ जैसे बेकारोंके दल भटकते हुए दिखाई देते हैं, वैसे रूसमें नहीं देख पड़ते। हर एक व्यक्ति काममें मग्न है। किसीके मुख-पर इस चिन्ताकी झलक नहीं है कि कल काम कहाँ मिलेगा। रूसी श्रमिकोंको दृढ़ आत्मविश्वास है कि यद्यपि आज हम ग़रीबीमें दिन काट रहे हैं, तथापि कल हमारे दिन फिर जायँगे, हमारी परिस्थिति सुधर रही है और व्यक्ति तथा समाजके विचारसे हम उत्कर्षके दिन अवश्य देखेंगे। भारतीय और रूसी समाजकी दरिद्रतामें ज़्यादा अन्तर नहीं है, परन्तु रूसी लोगोंके अन्तःकरणमें जो आशा एवं आत्मविश्वासकी भावना जाग्रत है, वह भारतीयोंमें नहीं; यही दोनों देशोंमें अन्तर है।

बेकारीका नाम नहीं

ग्यारहवाँ अध्याय

रूसमें क्रान्ति क्यों हुई ?

दैवकी गति बड़ी ही विचित्र है। कार्ल मार्क्सका जन्म जर्मनीमें हुआ, उसने अपने ग्रन्थ भी जर्मन भाषामें लिखे;

किन्तु उसके विचारोंका मूर्तिमान व्यावहारिक रूपान्तर जर्मनीमें नहीं, रूसमें हुआ। यहाँतक कि मार्क्सके शिष्योंके लिए सन् १९३३ में जर्मनीमें रहना असम्भव हो गया। वे या तो जेल भेज दिये गये या विदेशोंमें खदेड़ दिये गये। कोई भी सिद्धान्त क्यों न हो, उसका सामाजिक आचारोंमें रूपान्तर होनेके लिए उस देशके समाजकी अनुकूल मनोभूमि पहलेसे तैयार रहनी चाहिये। साधारण जनताकी मनोवृत्ति उस सिद्धान्तको काममें लानेके योग्य न हो, तो केवल विचारोंके आधारपर कहीं क्रान्ति हो नहीं सकती। क्रान्तिके लिए अनुकूल भूमि रूसमें थी, जर्मनीमें नहीं। शताब्दियोंकी ज़ारशाही और उसके सरदारोंके अत्याचारोंसे प्रजा इतनी पीड़ित हो गयी थी कि क्रान्ति या मृत्युके अतिरिक्त उसके पास कोई उपाय ही नहीं बच रहा था। क्रान्तिसे पहलेका रूसी इतिहास देखनेसे आश्चर्य इस बातका होता है कि इतने दिनोंतक क्रान्ति कैसे रुकी रही। साथ ही मानव-जातिकी सहनशीलताके सम्बन्धमें कौतुक होता है और स्वार्थी डण्डाशाहीके प्रति घृणा उत्पन्न होती है।

जर्मन कार्ल मार्क्सकी रूसमें विजय क्यों हुई ?

जिस ऐतिहासिक परिस्थितिसे रूसमें क्रान्ति हुई, सोविएट सरकार चाहती है कि वह इतिहास वर्त्तमान तथा भावी पीढ़ियाँ साद्यन्त और यथार्थ रूपसे जान लें। लोक-शिक्षाके लिए संग्रहालयोंका उपयोग पूर्णरूपसे उक्त सरकार कर रही है और उसमें उसकी असाधारण कल्पकता दृष्टिगोचर होती है। लेनिनग्राडमें पीटर और पाल नामका एक पुराना क़िला है। उस क़िलेमें एक ओर स्वधर्मका निदर्शक एक सुन्दर केथीड्रल (देवालय) है और दूसरी ओर विधर्मका निदर्शक पुराना जेलखाना है, जिसमें राज-

ज़ारशाहीके जेल और राजनीतिक कैदी

नीतिक क़ैदी भर दिये जाते थे। इस जेलखानेके दर्शनसे ही अनुमान हो जाता है कि पूर्व शासनकालमें राजनीतिक क़ैदियों-के साथ कैसा निर्दयतापूर्ण और कठोर व्यवहार किया जाता था। खेद इस बातसे होता है कि आज भी सभ्यताकी डींग मारनेवाले मानव वह परम्परा अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। जेलके कमरे देखनेसे समझमें आ जाता है कि क्रमशः कड़ाई कैसी होती गयी। पहले हर एक कमरेमें खाट, मेज और कुरसी यों ही रख दी जाती थी। क़ैदी एकान्तवाससे ऊबकर इधरकी खाट उधर रखते, उधरकी मेज इधर रखते, इस तरह चल-फिरकर मनोरंजन कर लेते थे। परन्तु जेलके यमदूतोंको यह बात सहन नहीं हुई। उन्होंने खाट, मेज और कुरसीके पाये लोहेसे कसकर ज़मीनमें ऐसे गाड़ दिये कि उन्हें क़ैदी खसका न सके। रूसमें सर्दी बहुत होती है, यहाँ तक कि नदियोंका पानी जम जाता है। ऐसी अवस्थामें जेलके कमरे ठण्ढे होने पर क़ैदी भी ठिठुर जाते हैं। जब क़ैदी बहुत आन्दोलन करते और शरीरको गर्मी पहुँचानेके लिए आगकी माँग पेश करते, तो कुछ व्यवस्था कर दी जाती थी। परन्तु आँच कमरेके ऊपरसे मिलती थी और विज्ञानशास्त्रके नियमानुसार ऊपरसे ही निकल जाती थी; कमरे ज्योंके त्यों ठण्ढे बने रहते थे। फिर भी यदि कोई क़ैदी गड़बड़ करता, तो उसके ओढ़ने, बिछाने और पहननेके कपड़े छीन लिये जाते थे और उसे लोहेकी ठण्ढी खाटपर सुला दिया जाता था। ऐसी कोठरीका सुख भोगे हुए एक क्रान्तिकारीने क्रान्तिके उपरान्त उस जेल और जेलकी अपनी कोठरीका दर्शन किया था और यमदूतोंकी युक्तिका रहस्य जाना था। एक ही जेलमें स्त्री-पुरुष, दोनों प्रकारके क़ैदी भर दिये जाते थे। एक सत्ताईस वर्षकी युवतीने, जो राजनीतिक

कैदी थी, दीपकसे मट्टीका तेल लेकर साड़ीपर डाल लिया और दियासलाईसे आग लगाकर उस नारकीय जीवनसे अपना छुटकारा कर लिया। इस घटनासे सावधान होकर अधिकारियोंने जेलोंसे मट्टीके तेलके दीपक हटा दिये और उनके स्थानमें बिजलीकी बत्तियाँ लगा दीं। एकान्तवाससे ऊबकर कैदी दीवारपर चुटकी मारकर आपसमें बातचीत करनेका प्रयत्न किया करते थे। उनकी सांकेतिक लिपि अब प्रसिद्ध हुई है, जो नीचेके कोष्ठकमें बतायी जाती है। पहली चुटकी खड़ी लाइनकी और दूसरी चुटकी आड़ी लाइनकी समझनी चाहिए।

	१	२	३	४	५	६
१	A	B	C	D	E	F
२	G	H	I	J	K	L
३	M	N	O	P	Q	R
४	S	T	U	V	W	X

इस मनोरञ्जक और हृदय स्पर्शी जेलके उदाहरणसे अत्याचारी बन्धनोंका मानवी कल्पक बुद्धि कैसे प्रतीकार कर सकती है, इसकी कल्पना हो जाती है। एक राजनीतिक क़ैदीकी पत्नी अपने पतिसे मिलने प्रतिदिन जेलमें आती और अधिकारियोंके सामने पतिसे मिलकर लौट जाती थी। अधिकारियोंके सामने पत्रोंका लेनदेन होना सम्भव न होने पर भी वे वह काम नियमित रूपसे किया करते थे। बात यह थी कि बहुत पतले कागजपर पत्र लिखकर पति-पत्नी अपने अपने

मुँहमें रख लेते थे और अधिकारियोंके सामने ही जब परस्पर चुम्बन करते, तो एकके मुँहका पत्र दूसरेके मुँहमें संक्रमित हो जाता था। भेद इस तरह खुला कि एक दिन पत्नी चुम्बन लेनेमें चूक गयी और पतिके मुँहका पत्र नीचे गिर पड़ा। वह अधिकारियोंने देख लिया। इसमें सन्देह नहीं कि इस घटनामें उपन्याससे बढ़कर चमत्कार है; परन्तु उसी दिनसे एक नया नियम बन गया। छः फुटकी दूरीपर दो कटघरे रख दिये गये और उन्हीं कटघरोंमें पति-पत्नी दोनोंको अलग-अलग खड़े कर बातचीत करनेका सुभीता कर दिया गया। दुःख-कष्टोंकी कथाएँ पढ़ने-सुननेमें मनोरंजक जान पड़ती हैं, परन्तु साक्षात् रूपसे जिन्होंने दुःख-कष्ट भोगे हों या जो भोग रहे हों उन पुण्य-पुरुषोंका स्मरण होते ही शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मास्कोमें 'म्यूज़ियम आफ़ दि रिवोल्यूशन' नामका एक ऐतिहासिक संग्रहालय है। उसमें प्रतिदिन स्कूली विद्यार्थियोंसे लेकर बुड्ढोंतक सहस्रों स्त्री-पुरुष आकर वहाँके दृश्य देख जाते हैं। गत तीनसौ वर्षोंमें वहाँ क्रान्तिके कैसे-कैसे प्रयत्न हुए और क्रमशः कैसा परिवर्त्तन होता गया, यह अच्छी तरह बताया गया है। उन्नीसवीं शताब्दीसे पूर्व रूसमें सर्फडम अर्थात् गुलामीकी प्रथा प्रचलित थी। फी सदी छयानबे गुलाम थे और चार मालिक। उन्हीं चारका प्रभुत्व छयानबे पर था और वे ही भूमिपति थे। गुलामोंको रोटीके एक टुकड़ेके बदलेमें दिन भर खेतोंमें काम करना पड़ता था। ज़मींदार गुलामोंके मालिक थे और उनकी ख़रीद-बिक्री भी किया करते थे। १९वीं सदीमें यान्त्रिक उद्योगोंकी वृद्धि हुई और मिलोंके लिए मज़दूरोंकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। तब यह सोचा गया कि गुलामीकी प्रथा बन्द कर दी जाय और गुलामोंका उप-

क्रान्तिका इतिहास

योग पुतली-घरोंमें कर लिया जाय। तदनुसार सन् १८६२ में गुलामीकी प्रथा उठा दी गयी। गुलाम मज़दूर बनाकर खेतोंसे कारखानोंमें लाये गये, परन्तु उनकी स्थिति ज्योंकी त्यों बनी रही। उनका स्थलान्तर तो हुआ, किन्तु स्थित्यन्तर नहीं हुआ। गुलामीकी प्रथाके विरुद्ध जो आवाज़ उठाता था, उस राजनीतिक क़ैदीकी छातीपर एक भारी सिल रख कर उसे दबा दिया जाता और फिर क्रमशः हाथ, पैर आदि काटकर अन्तमें कुल्हाड़ीसे उसका सिर धड़से जुदा कर दिया जाता था। संग्रहालयके इस चित्रके पास ही दूसरा एक चित्र है। उसमें बताया गया है कि एक राजनीतिक क़ैदी ३ × ५ फुटके लोहेके पिंजड़ेमें बन्द कर मास्कोमें लाया गया और बन्दरकी तरह नगरमें घुमा कर बीच बाज़ारमें रख दिया गया।

प्रारम्भके क्रान्तिकारी विश्वविद्यालयोंके उपाधिधारी शिक्षित युवक थे, जो शान्तिके साथ आन्दोलन किया करते थे। तदनन्तर व्यक्तिगत अत्याचारोंसे ऊबकर क्रान्ति करनेवाले युवकोंका दल बना। तत्पश्चात् लेनिन, स्टेलिन आदि नेता आगे बढ़े, जिनका सिद्धान्त था कि सर्वसाधारण जनता जबतक शिक्षित न हो जाय, तबतक मुट्ठीभर लोगोंके उद्योगसे क्रान्ति होना सम्भव नहीं है। इसी सिद्धान्तके अनुसार उन्होंने संघटनका कार्य किया। जबतक अन्तिम सफल क्रान्ति नहीं हो गयी, तबतक रूसके सभी आन्दोलन ज़ोर-जुल्मसे दबा दिये जाया करते थे। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि जबतक कोई आन्दोलन सफल नहीं हो जाता, तबतक असफलता हाथ जोड़े खड़ी ही रहती है।

आन्दोलन दबानेके ज़ारशाहीके सभी उपाय ज़ोर-जुल्म हुआ करते थे। लेनिनग्राड (पुराना पेट्रोग्राड) के राजप्रासादके सामने उरीटस्की नामका एक बड़ा भारी चौक है

जिसमें पचास हज़ार आदमी बैठ सकते हैं। एक बार सरदारों और ज़मींदारोंके अत्याचारोंसे ऊबकर लोगोंने स्थिर किया कि राजा ज़ारके पास चलकर अपने दुःख निवेदन किये जायँ। वह राजा है, हमारा दुःख दूर करेगा। तदनुसार हजारों खेतिहर और मज़दूर उक्त चौकमें एकत्र होकर दुःख-निवारणके लिए राजासे प्रार्थना करने लगे। ज़ार उस राजभवनको छोड़कर दूसरे राजमहलमें भाग गया और आज्ञा देता गया कि फौजके सिपाहियोंको बुलाकर जनतापर गोलियाँ चला दी जायँ। तुरंत फौजने चौकको घेर लिया और जनतापर गोलियाँ बरसा दीं, जिससे हजारों निहत्थे निरपराध लोग प्राणोंसे हाथ धो बैठे। लोगोंकी आँखें खुल गयीं और उनको विश्वास हो गया कि राजा हमारा दुःख दूर नहीं कर सकता। हर एक राष्ट्रके इतिहासमें ऐसी घटनाओंकी पुनरावृत्तियाँ देख पड़ती हैं।

हमारे साथ एक रूसी मार्गदर्शक था। वह कहता था कि "हमारे ज़ार बादशाह बड़े ही लोकप्रिय थे। हम लोगोंपर बहुत प्रेम करते थे; इस कारण उनमेंसे नब्बे प्रतिशतको हमने स्वर्ग भेज दिया।"

धर्मपर चढ़ाई क्यों ?

यह जानकर पहले पहल सोविएट सरकारसे घृणा होती है कि वह धर्मको तिलाञ्जलि देनेके लिए उद्यत हो गयी है; परन्तु रूसके ईसाई-धर्मका इतिहास पढ़ने पर इसका कारण समझमें आजाता है। जनताके स्वतन्त्रता-सम्बन्धी न्यायसङ्गत आन्दोलनको वहाँकी धर्म-संस्थाओंका कभी सहारा नहीं मिला, उलटे इन संस्थाओंने उक्त आन्दोलनको दबानेमें अत्याचारी ज़ारोंको पूरी मदद दी। सर्वसाधारणका ध्यान राजनीतिसे हटाकर दूसरी ओर आकृष्ट करनेके लिए धर्म अच्छा साधन है, यह जानकर ज़ारने स्वार्थसिद्धिके लिए धर्म-

संस्थाओंका उपयोग करना शुरू किया। लगातार नये नये गिरजाघर बनवाये जाने लगे। इनकी संख्या दिनदिन किस तरह बढ़ती गयी, यह इसीसे स्पष्ट हो जायगा कि जहाँ सन् १८८६ में इसमें १४८८५ गिरजाघर थे, वहाँ सन् १९१४ में २३५९३ हो गये। धर्मसत्ता राजसत्तामें सम्मिलित हो गयी। भोली-भाली जनताको यह समझानेके लिए कि ज़ार ईश्वरके अवतार हैं, देवताओंकी मूर्तियाँ तैयार कर उनपर ज़ारोंके मुखड़े जमा दिये गये। जो धर्म मानवीय न्याय और लोक-कल्याणसे विमुख हो, उस धर्मको नयी सोविएट सरकारसे सहारा मिलना सम्भव ही नहीं। ईसाई-धर्मका उच्छेद कर नयी पीढ़ीको उसका स्पर्श भी न हो सके, इसके लिए नयी सरकारने बहुत प्रयत्न किया है। इसी उद्देश्यसे उसने हर एक नगरमें धर्म-विरोधी संग्रहालय स्थापित किये हैं। इन संग्रहालयोंमें बताया गया है कि ईसाई धर्मगुरुओं और चर्चोंका अधःपात किस प्रकार हुआ। धर्मका प्रधान लक्ष्य लोकसेवा और पर-मात्मचिन्तन नहीं रह गया। उपासनागृहोंमें सोना-चाँदीके ढेर एकत्र होने लगे। पूँजी बढ़ानेके लिए धर्मके ठेकेदारोंने देन-लेनका व्यवसाय आरम्भ किया। सत्यकी रक्षाके लिए स्थापित धर्म सत्यका विरोधी बन गया। गेलिलिओने सिद्धान्त स्थिर किया कि पृथ्वी सूर्यके आसपास घूमती है। यह सिद्धान्त ईसाई सम्प्रदायके सिद्धान्तके विरुद्ध है। उस सम्प्रदायका सिद्धान्त है कि पृथ्वी स्थिर है और सोनेकी जंजीरोंसे ईश्वरके पैरोंमें बँधी है। कैथोलिक ईसाई पादरियोंने गेलिलिओका सिद्धान्त अशास्त्रीय ठहराया और उसे चितापर चढ़ाकर तथा एक खम्भेसे बाँधकर जीतेजी जला दिया। इसी अपराधके कारण स्पेनमें जार्ज ब्रूनो भी जला दिया गया। दोनों चित्र उक्त म्यूजि-

यममें रखे गये हैं। राजक्रान्ति होनेके उपरान्त गिरजाघरोंकी सब सम्पत्ति सरकारने हस्तगत कर ली। उसका उपयोग देशके उद्योग-धन्धे बढ़ानेमें किया और गिरजोंकी इमारतें औद्योगिक प्रदर्शन तथा शिक्षा-संस्थाओंके काम आ गयीं। रूसी लोगोंने अब धर्मके स्थानमें 'निरीश्वर पन्थ' स्थापित किया है। इस संस्थाके सदस्य सन् १९२९ में चार लाख थे, परन्तु सन् १९३३ में सत्तर लाख हो गये। इसीसे इस पन्थकी लोकप्रियता प्रकट हो जाती है। रूसकी सरकार नास्तिकताके प्रचारका काम बहुत ध्यानपूर्वक कर रही है। हर पंचवार्षिक योजनामें वह 'बजट' बना लेती है कि इस अवधिमें कितने नास्तिक बनाये जा सकते हैं और तदनुसार वह कार्य करती है।

क्या भारतमें निरीश्वरवाद सम्भव है?

उक्त संग्रहालयका निरीक्षण करने पर ईसाई और हिन्दू धर्मकी भावी स्थितिके सम्बन्धमें नाना प्रकारके विचार मनमें उठने लगते हैं। यथार्थ बात तो यह है कि 'रूसके उक्त उद्योग धर्मके विरुद्ध हैं' कहनेकी अपेक्षा 'अधर्मके विरुद्ध हैं' कहना अधिक युक्तियुक्त होगा। ईसाई धर्मने आजतक जितने कार्य किये हैं, सभी धर्मानुकूल नहीं, किन्तु धर्म-विरुद्ध हैं। धर्मका विकासशील और प्रवाही स्वरूप जब नष्ट हो जाता है, तब वह सड़ने लगता है। उसके आस पास सोना-चाँदी, अधिकार, स्वार्थ, राजसत्ता आदि उपाधियाँ बटुरने लगती हैं। वेदों और उपनिषदोंके कालमें निःसङ्कोच भावसे चार्वाकसे लेकर 'अहं ब्रह्मास्मि' तकके आध्यात्मिक तत्वोंके प्रतिपादनकी स्वतन्त्रता भारतके हिन्दूधर्ममें थी, तबतक उसका स्वरूप विकासी और उत्क्रान्तिक्षम था। परन्तु वेदान्त-सिद्धान्त प्रस्थापित होने पर हमने समझ लिया कि इससे बढ़कर कोई आध्यात्मिक तथ्य हो ही नहीं सकता। इसी

भावनासे अध्यात्म-विकास रुक गया और उत्क्रान्ति-विमुख धर्मका प्रारम्भ हो गया। सत्यका पता लग जानेपर अधिक सत्यका अनुसन्धान करनेकी प्रवृत्ति जाती रही और उपलब्ध सत्यकी रक्षा, प्रचार तथा स्थिरीकरण करनेमें ही हमारा समय बीतने लगा। अध्यात्म-विचारोंका ताज़ापन जाता रहा और बँधे तालाबका स्वरूप उन्हें प्राप्त हुआ। पूर्वज ऋषियोंने सत्यका अनुसन्धान किया, परन्तु उनकी सन्तानोंको अधिक सत्यके अनुसन्धानकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई। जब धर्मका यह स्थायी स्वरूप बदल जायगा और उसे पुनः आध्यात्मिक विकासका स्वरूप प्राप्त होगा, तभी वह पुनः हराभरा हो सकता है। यदि ऐसा न हुआ, तो पूर्व संशोधित अध्यात्म-तत्वोंके आसपास सत्ता (अधिकार), स्वार्थ, सुवर्ण आदिकी उपाधियाँ एकत्र होंगी और धर्मको साम्प्रदायिक स्वरूप प्राप्त होने पर भारतवर्ष रूसके अनीश्वरवाद अथवा नास्तिकवादको अनायास घरमें घुसा लेगा।

स्वार्थमूलक सत्ता कैसी मूर्ख बनकर क्रान्तिका निमित्त वन जाती है, यह देखकर उसपर दया आती है। काल, परिस्थिति और विकासी तत्वज्ञानका अनुसरण करनेवाले समाजमें उत्क्रांति होती है, नहीं तो क्रान्ति होना निश्चित है।

बारहवाँ अध्याय

पुनर्निर्माणका महान् प्रयास

आजतक संसारमें मनुष्यकी जो कुछ उन्नति हुई है, वह स्वाभाविक रूपसे ही हुई है। बहुत आवश्यक सामाजिक जीवनपर

स्वाभाविक रूपसे जितना अधिकार स्थापित हो गया हो, उसी-को स्थिर रखनेका ध्यान रखा गया और समाजका स्वाभाविक रूपसे जो कुछ विकास हो रहा हो, उसे सहारा दिया गया। यही राज-मार्ग आजतक बना रहा और इसी परम्पराको व्यक्तिस्वातन्त्र्य, लोकतंत्रवाद आदि आधुनिक सिद्धान्तोंने पुष्ट किया।

योजनाप्रणालीके सिद्धान्तका स्वीकार

स्वाभाविक रूपसे होनेवाली उत्क्रान्तिके इस सिद्धान्तको त्याग कर बुद्धिपूर्वक बृहत् परिमाणमें योजना तयार कर उत्क्रान्ति करनेके सिद्धान्तका अवलम्बन यदि किसी देशने सबसे पहले किया हो, तो वह रूस है। सामाजिक उन्नतिकी निश्चित रूप-रेखा और योजना तैयार कर एवं तदनुसार लक्ष्यतक पहुँचनेका सिद्धान्त सर्वप्रथम रूस ही काममें ला सका है। स्वाभाविक रूपसे जो समाजकी अभिवृद्धि होती है, उसमें बहुत समय लगता है और उसका स्वरूप भी अनिश्चित रहता है। स्वाभाविक विकासकी राह ताकते बैठनेके लिए रूसको अवकाश नहीं है। रूसी नेताओंने निश्चय कर लिया है कि आर्थिक, शिक्षासम्बन्धी, औद्योगिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्क्रान्तिकी पंचवार्षिक योजना तैयार कर ली जाया करे और उसे पूर्ण करनेका पूरी शक्ति लगाकर उद्योग होता रहे। निश्चित एवं तत्काल साध्य सिद्ध करनेका लक्ष्य, अधिकारकी पृष्ठपोषकता और अपना समझ कर काम करनेवाले समाजका उत्साह, इन तीन शक्तियोंके भरोसे गत दस वर्षोंमें रूसने जितनी उन्नति कर ली है, उतनी आज-तक किसी देशने नहीं की। हमारे इस कथनमें रञ्चमात्र अति-शयोक्ति नहीं है।

सोविएट सरकारके सामने इस समय बहुत बड़ा कार्य है। उसके कार्य-क्रमका प्रधान भाग यह है कि अबतक जो समाज

अज्ञान, दरिद्रता और असंस्कृत दशामें पड़ा था, उसे सज्ञान और भौतिक दृष्टिसे सम्पन्न किया जाय तथा पाश्चात्य राष्ट्रोंने अबतक जो सुधार किये हों, वे सब थोड़े समयमें रूसमें प्रचलित कर दिये जायँ।

लोग कैसे स्थानोंमें रहते हैं ?

सोवियट सरकार सबसे पहले यह चाहती है कि श्रमिकों तथा सर्वसाधारणके निवासकी ऐसी व्यवस्था की जाय जो स्वच्छता और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अनुकूल हो और जिसमें स्थानका संकोच न रहे। आजकल रूसके नगरोंमें रहनेके लिए स्थानकी बड़ी कोताही है। पुरानी इमारतोंका आकार बढ़ाया जा रहा है और नयी चालकी नयी इमारतें बनवायी जा रही हैं। ज़ारशाहीमें श्रमिक कैसे झोपड़ोंमें रहते थे, उसके नमूने अबतक वहाँ विद्यमान हैं। चारों ओर लकड़ीके तखते खड़ेकर किसी प्रकार ऊपरसे छाया कर ली जाती थी और उन्हीं घुड़सालोंमें श्रमिक गुजारा कर लेते थे। उनके लिए अभी पर्याप्त मकान नहीं बने हैं, इस कारण अबतक बहुतसे श्रमिक पुराने झोपड़ोंमें ही दिन काट रहे हैं। परन्तु वर्तमान पंचवार्षिक योजना दो-तीन वर्षोंमें समाप्त होते-होते उनके कष्ट मिट जायँगे और उन्हें रहनेके लिए अच्छे स्वास्थ्यकर मकान मिल जायँगे। प्रारम्भमें जो मकान बने, वे औद्योगिक तथा अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रोंमें काम करनेवालों और यांत्रिक कला तथा अन्य उच्च विषयोंकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियोंको रहनेके लिए दिये गये हैं क्योंकि इन्हीं लोगोंपर भावी उन्नति और प्रस्थापित सत्ताका स्थायित्व निर्भर है। मास्कोमें 'वर्क्स सेटलमेण्ट' नामकी एक नयी बस्ती बसायी गयी है। वहींकी एक इमारतमें विद्यार्थियोंके रहनेका प्रबन्ध किया गया है। ३२ से ४० वर्षतकके श्रमिकोंको छात्रवृत्तियाँ

देकर विश्वविद्यालयोंमें भरती करा दिया गया है। उक्त छात्रावासमें विवाहित छात्र भी रहते हैं। छात्रावास प्रशस्त है और उसके सब कमरे साफ सुथरे तथा सुविधाजनक हैं। हर एक कमरेमें लेनिनकी अर्द्धमूर्ति है, रेडियो है, साफ सुथरा बिछौना है, पलंग है और मेज है। छात्रावासमें एक दवाखाना भी है। इसी प्रकारकी बस्तियाँ हर एक नगर और स्थान स्थानमें बसानेका प्रयत्न ज़ोरोंसे जारी है।

रूसमें कमरेका किराया उसकी लम्बाई-चौड़ाई और किरायेदारके वेतनके हिसाबसे आँका जाता है। कम वेतन पानेवाले श्रमिकको कोई कमरा जितने किरायेमें मिल जाता है, अधिक वेतन पानेवाले श्रमिकको उसीका किराया उससे अधिक देना पड़ता है। जैसे निवासस्थान जहाँतहाँ बन रहे हैं, वैसे ही स्कूल और दवाखानोंके भवन भी बन रहे हैं।

आरोग्यका सर्वत्र प्रबन्ध

आरोग्य और आयुर्वेदके सम्बन्धमें भी रूसने बहुत उन्नति की है। मास्को नगरके विभिन्न विभागोंमें दस बड़े बड़े अस्पताल हैं। उन अस्पतालोंसे नगरके पचास हजार मनुष्य लाभ उठाते हैं। सब अस्पतालोंमें वह सब सामग्री प्रस्तुत है, जो अबतक आविष्कृत हो चुकी है। एक्सरेज़, हाइड्रोथेरपी आदिकी अत्यन्त व्ययसाध्य-चिकित्सा वहाँ साधारणसे साधारण मनुष्य भी करा सकता है। हर एक परिवारके पास ही कोई निश्चित डाक्टर रहता है और उसे हर एक व्यक्ति जब चाहे तब टेलीफोनसे बुला सकता है।

वहाँ यह प्रथा नहीं है कि जब बच्चे बीमार हों, तभी उन्हें लेकर उनकी माताएँ दवाखानोंमें पहुँचें। प्रसूतिसे पहले और अनन्तर गर्भों और बच्चोंकी परीक्षा कराने और उनके दैनिक

पालनके सम्बन्धमें परामर्श करनेके लिए माताएँ दवाखानोंमें जाती हैं और उनकी संख्या बहुत अधिक होती है। स्कूली छात्रोंके लिए पृथक् प्रबन्ध है। वहाँ विद्यार्थीकी शारीरिक परीक्षा कर डाक्टर उसके अभिभावकों और अध्यापकोंको यह बताता है कि वह किस उद्योग-धन्धेके योग्य है। विशेषता यह है कि रूसके सभी दवाखानोंके डाक्टर आदि अधिकारियोंके पदपर सैकड़ा पीछे सत्तर स्त्रियाँ नियुक्त हैं।

क्रान्तिसे पहले रूसमें कुछ कल-कारखाने अवश्य थे, परन्तु उनकी अवस्था बहुत ही गिरी हुई थी। पहले यह दशा थी कि

विराट् कारखानोंकी स्थापना

यूरोपीय राष्ट्र वह यन्त्र-सामग्री, जो उनके लिए अनावश्यक होती थी, रूसके गले मढ़ देते थे और रूसी पूँजीपति अपने श्रमिकोंको कारखानोंमें प्रतिदिन बारह-बारह घण्टे पीसकर जैसा कुछ बन जाय, माल तैयार कराते थे। वर्त्तमान सरकारके सामने मुख्य प्रश्न यह है कि सोलह करोड़ लोगोंको पर्याप्त अन्न, वस्त्र और जीवनके लिए आवश्यक वस्तुएँ किस प्रकार प्राप्त हों? सब वस्तुएँ जनताके परिश्रमसे निर्माण होनी चाहिए और जनताको ही मिलनी चाहिए। यही कारण है कि सरकारने अपने कार्यक्रममें औद्योगिक उन्नतिपर अधिक ज़ोर दिया है। जो पौर्वात्य-प्रवासी रूसका निरीक्षण कर लौट आये हैं, वे सोविएट सरकारके औद्योगिक प्रयत्नको पागलपन समझते हैं। परन्तु वह सरकार औद्योगिक 'टेंपो' पर इतना अधिक ज़ोर क्यों दे रही है, यह तो वहाँकी प्रजाकी दरिद्रताको देखकर ही जाना जा सकता है। रूसके नेताओंने भली-भाँति समझ लिया है कि लोगोंके लिए जबतक भर पेट अन्न, शरीर-रक्षाके निमित्त पर्याप्त वस्त्र और शीत-निवारणोपयोगी निवास-स्थानोंका प्रबन्ध न हो जाय,

तबतक संस्कृति, सुधार, उन्नति आदिकी वेदान्तकी तरह गप लड़ाना व्यर्थ है। रूसी समाचारपत्रोंके समाचारोंमें दो बातोंकी प्रधानता रहती है—एक तो औद्योगिक उन्नतिके आँकड़े एवं उसकी आलोचना और दूसरी राजनीतिक परिस्थिति। औद्योगिक क्षेत्रमें स्वावलम्बी होनेका रूसने निश्चय कर लिया है और उसीके अनुसार उसने अपनी पंचवार्षिक योजनाका खाका खींचा है। औद्योगिक परावलम्बन नष्ट करनेके लिए सरकारने स्थिर किया है कि छोटी-मोटी वस्तुएँ निर्माण करनेके लिए यन्त्र-सामग्री बाहरसे न मँगायी जाय, किन्तु उन यन्त्रोंके ढालनेके कारखाने स्वदेशमें ही खोले जायँ। पहले पाँच वर्षोंकी योजनाके अनुसार सरकारने यन्त्रोत्पादक उद्योग-धन्धोंको चलानेका कार्य-क्रम निश्चित किया था और वह पूरा किया। उसीके फल-स्वरूप आज रूसमें बड़े-बड़े कारखाने दिखाई दे रहे हैं। अन्न देख कर भूखेकी भूख बढ़ती है। रूसकी भी यही दशा हो रही है। वहाँके लोगोंकी धारणा है कि औद्योगिक क्षेत्रमें इंग्लैण्ड और जर्मनी दोनों देश उनसे पिछड़ गये हैं। एक अमेरिका अवश्य अभी स्पर्धामें बच रहा है। रूसी इंजीनियरोंकी महत्वाकांक्षा है कि प्रत्येक क्षेत्रके उनके कारखाने अमेरिकासे बहुत बड़े हों। इसी भावनासे प्रेरित होकर जब वे विदेशी यात्रियोंसे बातचीत करते हैं, तब प्रायः वहाँके किसी कारखानेके सम्बन्धमें "अमेरिकासे भी बड़ा" जैसे शब्दोंका प्रयोग किया करते हैं।

यन्त्रोत्पादन करनेवाली बड़ी यन्त्र-सामग्री अब रूसमें तैयार हो गयी है। इससे छोटे बडे यन्त्र रूसमें ही बनने लगेंगे और वर्त्तमान पंचवार्षिक योजनाके अनुसार छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे चल निकलेंगे। दस वर्ष पूर्व उद्योग-धन्धोंके क्षेत्रमें रूस बहुत

पिछड़ा हुआ था। परन्तु अब वहाँ मोटर, रेलवे, रबरटायर, बिजलीके ग्लोब, रेडियो, दवाखानोंकी सामग्री तथा अन्यान्य वैज्ञानिक उपकरण आदि तैयार होने लगे हैं। अनेक प्रयोग-शालाओंका निरीक्षण करनेके बाद उनके संचालकोंसे मैंने पूछा,-आपके यहाँका कितना सामान विदेशी है और कितना स्वदेशी? प्रायः सभीने उत्तर दिया,—सैकड़ा पीछे एक विदेशी है।

रूसका उक्त औद्योगिक कार्य-क्रम महान् है और अपरिहार्य है। रूसके सब कारखाने चौबीस घण्टे चालू रहते हैं। तब प्रश्न

फिर दरिद्रता क्यों?

यह उठता है कि जहाँ इतना औद्योगिक उत्कर्ष हुआ हो, वहाँ दरिद्रताका निवास क्यों है? इसका उत्तर यह है कि रूसकी प्रथम पंचवार्षिक योजनाका अनुमान सही नहीं उतरा। उसने सोचा था कि इन पाँच वर्षों-की अवधिमें पाश्चात्य राष्ट्रोंसे यन्त्र-सामग्री लेकर उसके बदलेमें रूसकी मैंगनीज आदि खनिज वस्तुएँ दी जायँगी। परन्तु सन् १९२८ से जो बाज़ारमें मन्दी हुई, उसका पहलेसे अनुमान नहीं किया जा सका। मन्दीके कारण रूसके मालकी माँग ही नहीं रही और अपनी साख बचा रखनेके लिए वादा पूरा करना रूस-के लिए आवश्यक था। ऐसी परिस्थितिमें जीवनके लिए अत्यन्त आवश्यक गेहूँ, मक्खन, फल, मांस आदि वस्तुएँ रूसको विदे-शियोंके हाथ बेंचनी पड़ीं। इसीसे देशमें उत्तम अन्नकी पर्याप्त उत्पत्ति होते हुए भी लोगोंको खानेको नहीं मिलता।

इस समय रूसी-श्रमिक पेट बाँध कर काम कर रहे हैं। इसीसे रूसकी दरिद्रताका चित्र पाश्चात्योंकी वैभवपूर्ण दृष्टिमें भयानक जान पड़ता है। औद्योगिक प्रगतिका यह 'टेंपो' (वेग) यदि रूस कम कर दे तो प्रगति धीरे-धीरे होकर लोगोंके कष्ट कम हो सकते हैं। परन्तु रूस चाहता है कि भौतिक सामर्थ्य-

की दृष्टिसे पाश्चात्य उन्नत राष्ट्रोंकी श्रेणीमें वह यथासम्भव शीघ्र पहुँच जाय। उसे आशा है कि दो दिन भले ही कष्ट भोग लिये जायँ, किन्तु शीघ्र ही घरमें पर्याप्त माल तैयार होने लगेगा और घर-घर अन्न-वस्त्रकी विपुलता हो जायगी। इसीसे वहाँकी जनता सारे कष्ट बड़े धैर्य्यके साथ वहन कर रही है।

संस्कृति-प्रसारका उपक्रम

सोविएट सरकारके कार्यक्रमकी विशेषता यह है कि उसमें भौतिक, औद्योगिक और राजनीतिक प्रगतिके साथ ही सांस्कृतिक प्रगतिपर भी ज़ोर दिया गया है। क्रान्तिसे पूर्व रूसमें सैकड़ा पीछे अस्सी मनुष्य निरक्षर थे। गत पन्द्रह वर्षोंके प्रयत्नसे अब वहाँ निरक्षरोंका परिमाण बीस प्रतिशत ही रह गया है, जिसमें प्रायः बुड्ढे आदमी हैं; परन्तु उन्हें भी पढ़नेके लिए पाठशालामें जाना पड़ता है। रूसमें सैकड़ा पीछे पचास आदमियोंको किसी न किसी प्रकारकी पाठशालामें पढ़नेके लिए जाना ही पड़ता है। सोविएट सरकारकी लोकशिक्षाकी व्याख्या कोरी साक्षरतासे अधिक व्यापक है। साहित्य, सङ्गीत और कलाओंकी अभिरुचि लोगोंमें बढ़े, इसके लिए सरकार जी तोड़कर प्रयत्न कर रही है। संस्कृति-मन्दिर (पैलेस आफ कलचर) की स्थापना करना ही इस प्रयत्नका प्रधान लक्ष्य है। इसके लिए इस संस्थाकी कल्पना अत्यंत हृदयाकर्षक है। यहाँ सायंकालके समय श्रमिकगण जाकर जी बहलाते और शिक्षा प्राप्त करते हैं। पढ़नेके लिए ग्रन्थोंका संग्रह है, वाद-विवादकी सभाएँ हैं, व्यायामके लिए सब प्रकारकी सामग्री है, सिनेमा-थियेटर हैं, नाट्यशालाएँ हैं और ऐसी ही अनेक बातें हैं। संस्कृति संवर्द्धक प्रत्येक संस्थाके लेए अलग अलग इमारत है। बच्चोंकी सम्हालमें लगी रहनेके कारण धाइयाँ संस्कृति-शिक्षासे वञ्चित न रहें, इस विचारसे उनके

लिए स्वतन्त्र व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक संस्कृति-मन्दिरमें बालोद्यान (किंडरगार्टन) की कक्षा है, जिसकी व्यवस्था उस विषयकी जाननेवाली अध्यापिका करती है। बस, उस कक्षा (क्लास) में माताएँ अपने बच्चोंको दो-तीन घण्टेके लिए सौंप दें और स्वयं शिक्षा अथवा मनोरञ्जनके लिए चल दें, ऐसा सुभीता उन्हें प्राप्त है। सोविएट सरकारका शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम इतना व्यापक है कि उसका ठीक ठीक विवेचन करनेके लिए एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखना पड़ेगा। शिक्षाकी इतनी विशाल नींव आजतक किसी भी समाजमें नहीं डाली गयी।

राज्यसंस्थाका संरक्षण

उपर्युक्त सब रचनात्मक कार्य करते हुए सोविएट सरकारको अपनी सत्ता बनाये रखनेका ध्यान भी हमेशा रखना पड़ता है। क्रान्तिसे लेकर अबतक अपने बूतेपर ही सरकारने सब सत्ता अपने हाथमें रखी है और वह यह भी समझती है कि इस राज्य-पद्धतिकी चिरस्थायिताके लिए क्रांतिके मूलमें जो सिद्धान्त थे, उनकी शिक्षा जनताको देना आवश्यक है। छोटेसे लेकर बड़ेतक और अशिक्षितसे लेकर सुशिक्षिततक सभीको वह उक्त राजनीतिक शिक्षा, उसके हाथमें जितने साधन हैं उन सबके द्वारा दिया करती है। शिक्षा-विभाग, रेडियो, समाचारपत्र आदि संस्थाएँ अपना-अपना कार्य करती हुई सरकारके नियन्त्रणमें रहकर उक्त राजनीतिक सिद्धान्तोंके प्रचारका भी काम किया करती हैं। अर्थात् अधिकार-रक्षाके अच्छे बुरे सब प्रचलित साधनोंका उपयोग अन्य देशोंकी तरह रूसमें भी किया जाता है।

रूसमें कहीं भी जाइये, साधारणतः देख पड़नेवाले ऊपरी विभिन्न व्यवहारोंके भी मूलमें कोई न कोई सामान्य तत्त्व देख

पड़ेगा। जनताके भौतिक जीवनके सुधारके लिए औद्योगिक संघटन करना, भौतिक उन्नतिके साथ साथ संस्कृतिविकासकी व्यवस्था करना और ये बातें जिसके आधारपर अवलम्बित हैं, उस सत्ताको दृढ़ रखना इन्हीं मूल तत्त्वोंपर सोविएट सरकारका सब कार्यक्रम बना हुआ है।

तेरहवाँ अध्याय

समाज और संस्थाओंका प्रत्यक्ष परिचय

स्त्रियोंके विद्रोह एवं स्त्री-साम्राज्यके जो दृश्य नाटक देखनेवालोंको रंगभूमिपर देखनेको मिलते हैं, वे समाजमें कभी प्रत्यक्ष भी देख पड़ेंगे, इसकी किसीने स्वप्नमें भी कल्पना न की होगी। परन्तु यह बात सत्य है कि कविकल्पित उस सृष्टिके ये चित्र इस समय एक समाजमें प्रत्यक्ष देख पड़ रहे हैं। रूसमें स्त्रियोंके साम्प्रदायिक जीवनमें क्रान्ति हो गयी है और वह स्त्रियोंने नहीं, पुरुषोंने की है। आजतक संसारमें जितनी क्रान्तियाँ हुईं, उनका राजनीतिक स्वरूप था और तात्कालिक अधिकार-संक्रमणके पश्चात् उनका अन्त भी हो गया। रूसमें जो क्रान्ति हुई है, उसका स्वरूप केवल राजनीतिक ही नहीं, प्रत्युत सामाजिक और सांस्कृतिक भी है। इसके अतिरिक्त इस क्रान्तिका अन्त भी अभी नहीं, केवल आरम्भ हुआ है। इस कारण रूसकी यात्रा करनेवाले दर्शकको रूसी समाज संसारके अन्य समाजोंसे भिन्न और विशिष्ट गुणोंसे युक्त देख पड़ता है।

स्त्रीविद्रोह

मैंने अबतक फ्रांसीसी, ब्रिटिश, अमेरिकन, इटैलियन और रूसी जहाजोंसे यात्रा की है। परन्तु रूसी जहाजपर जो दृश्य देखा, वह मुझे अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं दिया।

पुरुषोंके कार्यक्षेत्रोंमें पदक्षेप

लण्डनके बन्दरसे जहाज चला और खलासी डेकपर जाकर सदाकी तरह डोरियाँ खींचने लगे। अब क्या देखता हूँ कि उसी समय पच्चीस वर्षकी एक रूसी स्त्री डेकपर रस्सी खींच कर जहाजके रेडियोके तार तान रही है। उस स्त्रीके अधीन जहाजके रेडियोका विभाग सौंपा गया था और वह सूक्ष्म यन्त्रोंके सँवारनेसे लेकर रस्सियाँ खींचने तकका काम कर रही थी। लेनिनग्राडमें जब हमारा जहाज पहुँचा, तो नाकेपर पुलिसने 'पास' दिखानेके लिए रोक दिया। नाकेकी वह पुलिस एक स्त्री थी और पीतलके बटनोंका बड़ा लबादा पहिने थी। मास्को जानेके लिए हम रेलमें सवार हुए। काले यूनीफार्ममें एक व्यक्तिको बाहर खड़े हुए हमने देखा। उसके हाथमें लाल-हरे शीशेकी लालटेन थी। उसने सिग्नल (संकेत) दिया और गाड़ी चलने लगी। उसके शरीर-पर मर्दाना कोट था, परन्तु जब उसके पैरोंपर मेरी दृष्टि पड़ी, तो उसका लहलहाता हुआ लहँगा देख पड़ा! सारांश, स्त्री-शिक्षाकी दृष्टिसे जो देश बहुत आगे बढ़ गये हैं, वहाँकी स्त्रियोंने भी जिन कार्यक्षेत्रोंको नहीं अपना पाया है, उन्हींपर केवल पन्द्रह वर्षोंमें रूसी स्त्रियोंने अपनी सत्ता प्रस्थापित कर दी है। व्याव-हारिक जगत्में वहाँ अब ऐसी कोई बात नहीं रह गयी है कि अमुक क्षेत्र पुरुषोंका है और अमुक स्त्रियोंका। मेरा अनुमान था कि कमसे कम शारीरिक कष्टके क्षेत्रोंमें स्त्रियाँ पैर न बढ़ाती होंगी, जैसे कि लोहारकी भट्ठीमें खड़े होकर हथौड़ा चलाना; परन्तु यह खयाल ग़लत निकला। मास्कोमें मोटरकी

फैक्टरीके साथ एक औद्योगिक-शिक्षाका कालेज है। उस कालेजकी वर्कशाप (काम तैयार करनेकी जगह) में सात आठ विद्यार्थी लोहारका काम कर रहे थे। उनमें तीन स्त्रियाँ भी थीं। भट्टीसे तपा हुआ लाल लोहा निकालने और उसपर हथौड़ेकी चोट जमानेका काम वे कर रही थीं। अन्य यन्त्रोंद्वारा कारीगरीका काम भी बहुतसी लड़कियाँ कर रही थीं, परन्तु इसका उल्लेख करनेमें कोई महत्व नहीं है। ट्राम गाड़ियोंमें कंडक्टर और टिकट बेचनेका तथा सर्दी-पानीमें खड़े होकर रेलकी पटरियाँ बदलनेका काम तो बहुतसी स्त्रियाँ करती ही हैं। वहाँ शिक्षासंस्था, न्यायसभा, अस्पताल आदि बौद्धिक व्यवसायोंमें भी स्त्रियोंकी संख्या बहुत बड़ी है। समाजके आर्थिक जीवनमें अभी अभीतक स्त्रियोंका क्षेत्र चूल्हा, पलना और आईनातक ही मर्यादित था किन्तु अब रूसमें पुरुषोंके सब व्यवसाय करनेका समान अधिकार स्त्रियोंको प्राप्त हो गया है।

स्त्रियोंके आरोग्य और मनोविकासका ध्यान वहाँ बहुत अधिक रखा जाता है। कारखानोंमें काम करनेवाली स्त्रियोंको

भाग्यशालिनी माताएँ

प्रसूतिसे पहिले और बादमें दो दो महीनेकी सवेतन छुट्टी दी जाती है। सार्वजनिक अस्पतालोंमें आधुनिक साधनोंकी सहायतासे उचित सलाह और दवादारू देनेका प्रबन्ध किया गया है। जब वे फिर काम करने लगती हैं तो दो दो घण्टोंपर उन्हें छुट्टी दी जाती है। उस समय वे अपने बच्चोंको दूध पिला आती हैं। कारख़ानेके साथ एक शिशु-मन्दिर होता है। उसमें सात-आठ घण्टे बच्चे रखे जा सकते हैं। वहाँ विशेषज्ञ दाइयाँ बच्चोंके आरोग्य और शिक्षा-की व्यवस्था करती हैं। रूसी राज्यक्रान्तिसे पूर्व स्त्रियोंको यह सुख प्राप्त न था। गर्भवती स्त्रियोंको कारखानेदार निकाल देते

और शराबके नशेमें चूर होकर उनके पतिदेव हण्टरसे उनकी ख़बर लिया करते थे। यही उस समयकी विधिव्यवस्था थी।

यदि किसीने अपनी आँखोंसे देखा हो कि केवल तेरह मिनटोंमें विवाह-संस्कार हो जाता है, तो औरोंको इसपर विश्वास करनेमें कोई हानि नहीं है। रूसमें विवाह और तलाक रजिस्टर करनेवाली संस्थाको 'ज़ग्स'* कहते हैं। मैं इस संस्थाको देखकर लौट ही रहा था कि इतनेमें उन्नीस-बीस वर्षकी जोड़ी अपनी विवाहकी रजिस्टरी कराने वहाँ आ पहुँची। तब एक बजकर दो मिनट हुए थे। रजिस्ट्रार स्त्रीने दोनोंकी अर्जियाँ पढ़ लीं, तीन रूबल फीस ले ली और प्रमाणपत्र दे दिया। बस, विवाह हो गया। वह जोड़ी दम्पत्ति बनकर चल दी। उस समय सवा बजा था।

विवाह संस्कारकी सादगी

रूसकी विवाहप्रणाली बेतुकी है, यह समझना भूल है। उनके विवाह सम्बन्धी क़ानून थोड़े हैं और सरल हैं। विवाहके निमित्त उत्सव, धन-व्यय आदि जो किया जाता है, रूसने उस प्रथाको उठा दिया है। वहाँ स्त्री पुरुष दोनोंके रोगमुक्त होनेका जबतक डाक्टरी प्रमाणपत्र पेश न हो, तबतक विवाहकी आज्ञा नहीं दी जाती। इस क़ानूनको तोड़ कर कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको अपना संसर्गजन्य रोग प्रदान करे, तो उसे एक हज़ार रूबल दण्ड और तीन सालकी सज़ा दी जाती है। पागल, पूर्व विवाहित और निकट सम्बन्धवाले व्यक्ति विवाह नहीं कर सकते। बिना विवाह किये यदि कोई स्त्री-पुरुष एकत्र रहते हों, तो वे क़ानूनसे विवाहित समझ लिये जाते हैं और उनपर विवाहके सब क़ानून लागू हो जाते हैं। यदि तलाक देना हो तो

फोटो कहीं दिखाई नहीं दिया। टेबलपर जो मासिकपत्र थे, उनमें राजनीतिक, सामाजिक और टेक्निकल विषयोंके ही लेख प्रकाशित हुए थे। मज़दूर खलासियोंसे लेकर ऊँचे दर्जेके लोगों तक जिस समाजमें गम्भीर विषयोंपर विचार करनेकी, पढ़नेकी और वाद-विवाद करनेकी अभिरुचि उत्पन्न हुई हो, वह समाज उच्च संस्कृतिके मार्गमें अग्रसर हो रहा है, इसमें सन्देह ही क्या है ?

रूसके लोगोंको वादविवाद करनेमें बड़ा आनन्द आता है। बोलनेमें वे अटकते नहीं। यदि उनसे अंग्रेज़ीमें एक वाक्य कहा जाय, तो उसका आशय दूसरेको अपनी भाषामें समझानेके लिए वे दस वाक्योंका प्रयोग करेंगे। उनमें बोलनेकी अभिरुचि बहुत है। यदि आपके पास कोई अंग्रेज़ घण्टों बैठा रहे और वह जानता भी हो कि आप अंग्रेज़ी जानते हैं, तो भी वह आपसे बात न करेगा। रूसी नागरिकके सम्बन्धमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। चाहे वह आपकी भाषा न जानता हो, किन्तु संकेतोंसे, करपल्लवीसे, टूटी-फूटी अँग्रेज़ीके द्वारा अपना मनोभाव व्यक्त कर देगा और आपका अभिप्राय जान लेगा।

न्यायदानकी प्रणालीमें क्रान्ति कर रूसने एक प्रकारसे ग्राम-पंचायतें स्थापित कर दी हैं। अन्य देशोंके कोर्टमें जैसी औपचारिकता (एटीकेट), हुकूमत, कानूनबाजी देख पड़ती है, वैसी रूसी न्यायालयोंमें नहीं देख पड़ती। वहाँ तो मनुष्यता और आत्मीयताका वातावरण नज़र आता है।

न्यायालयका चित्र

न्यायसभाका चित्र देखने योग्य है। एक बीस फुट चौड़े पचास फुट लम्बे बड़े कमरेमें एक फुट ऊँचे प्लैटफार्मपर काले फ्रेमका चश्मा लगाये लगभग चालीस वर्षकी स्त्री बैठी है। यही प्रधान न्यायाधीश है। उसकी बाईं ओर उसीकी सम-

ायस्का एक स्त्री और दाहनी ओर एक पुरुष आसीन है। दोनों मेल-मज़दूर हैं। न्यायाधीशको सहायता देनेके लिए मिल-मज़ूरोंने दोनोंको एकमतसे चुन दिया है। टेबलपर हरे रंगका कपड़ा बिछा है, पीछे लेनिनका फोटो लटका है और इधर उधरकी दीवारोंपर पंचवार्षिक योजनाके नकशे हैं। सामने बेंचें बिछी हैं, जिनपर आनेजानेवाले बैठे हैं। न्यायका काम आरम्भ हो गया। पासमें चपरासी नहीं, 'अमुक वल्द अमुक हाज़िर है', ऐसी पुकार नहीं; और सबसे बड़ी बात तो यह है कि अभियुक्तको खड़ा करनेके लिए कटघरा भी नहीं है। अभियुक्त न्यायाधीशके सामने खड़ा होकर टेबलपर हाथ टेककर अपना मामला समझा रहा था। उसकी अवस्था चौबीस वर्षकी थी। उससे न्यायाधीश स्त्री उलटे-सीधे प्रश्न कर रही थी। पहले मामलेमें अभियुक्तपर यह आरोप था कि उसने कोआपरेटिवसे सस्ती दरमें रोटी खरीदकर ऊँची दरमें दूसरेको बेची और मुनाफा कर लिया। दूसरे मामलेके अभियुक्तपर आरोप था कि उसने पेंटिंगके लिए कियान (खड़िया) और रङ्ग चुराये हैं। पहला मामला जब समाप्त हुआ, तब कुछ समयके लिए अदालतका काम रोक कर प्रधान न्यायाधीश और उसकी सहकारिणी दोनों प्लेटफार्मसे उतर कर हम लोगोंमें आकर बैठ गयीं और हम अतिथियोंको मामला क्या था और उसका फैसला क्या किया गया, सब अच्छी तरह समझा दिया। न्यायाधीशोंने लम्बे काले गाउन नहीं पहने थे और न उन्हें यही भय था कि प्लैटफार्मसे उतर कर सर्वसाधारणमें आकर बैठनेसे उनकी प्रतिष्ठा अथवा प्रभावमें कोई कमी होगी।

न्यायाधीशके दोनों सहकारी बारी बारीसे बदल दिये जाते हैं। उनके सामने जो अभियुक्त, गवाह आदि लाये जाते हैं, उन्हें

वे नहीं पहचानते। न्यायाधीश और दोनों सहायकोंके बहुमतसे निर्णय किया जाता है। शारीरिक श्रमका ही प्रायः दण्ड दिया जाता है। श्रमके बदले उन्हें वेतन मिलता है और सरकारी छुट्टियोंके दिन उनकी दण्डकी अवधिसे घटा दिये जाते हैं। कारागारोंमें कैदी ही अपनी व्यवस्था कर लेते हैं। वहाँ वार्डर आदि कोई नहीं रहता। सब वकील सरकारी नौकर होते हैं। अभियुक्त वकील भी कर सकता और अपना मामला आप भी चला सकता है। मैंने उक्त जो दो मामले देखे, उनमें वकील नहीं दिया गया था। इससे प्रतीत होता है कि रूसमें वकीलोंकी संख्या बहुत ही कम है।

रूसी राज्यक्रान्ति केवल राजनीतिक क्रान्ति नहीं है। रूसने समाजके अखिल साम्प्रदायिक जीवनमें भी क्रान्ति आरम्भ कर दी है।

चौदहवाँ अध्याय

निश्चित लक्ष्य और शृंखलाबद्ध कार्यक्रम

अन्धानुकरण या कल्पकता

बौरे हुए आमके वृक्षोंको देख कर यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि इस साल आमकी फसल कैसी रहेगी, क्योंकि आँधी-पानीसे बौर कब झर जायगा, कौन कह सकता है? आँधी-पानी सहकर भी जो कच्ची अँबियाँ रह गयी हों, उनमेंसे भी कितनी अन्त तक बनी रहेंगी यह भी कोई नहीं कह सकता। रूसकी वर्तमान स्थिति ऐसी ही है। वहाँकी सभी बातें महत्वपूर्ण और आशा-

जनक प्रतीत होती हैं। परन्तु नवीन विचारोंके मेघों और कालकी आँधीमें उनमेंसे कितनी दृढ़तासे टिकी रहेंगी और कितनी नष्ट हो जायँगी, इसका निर्णय करना कठिन है। फिर भी यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि गत पन्द्रह वर्षोंमें रूसने मानवी प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा कर संसारके अन्य राष्ट्रोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र गतिसे उन्नति कर दिखायी है। यदि यही गति बनी रही, तो आगामी पंद्रह-बीस वर्षोंमें संसारके प्रथम श्रेणीके राष्ट्रोंमें रूसकी गणना होने लगेगी और उसके विचार-प्रवाहोंकी छाप सब राष्ट्रोंके समाजोंपर दिखाई देगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। स्वाभाविक रूपसे जो विचारधारा हमारे सामने प्रवाहित हो रही है, उसकी चिकित्सा न कर उसीका अनुकरण करना और नवीन उत्पन्न होनेवाले विचार-प्रवाहोंकी छानबीन कर त्याज्य अंश बादकर अपने लक्ष्यके अनुकूल ग्राह्य अंशको आत्मसात् करना, यों दो प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं। हिन्दुस्थानने अबतक पहिली वृत्तिका ही अनुसरण किया है। यूरोपमें डिमाक्रेसी (लोकतंत्रवाद) का घोष होते ही उसकी प्रतिध्वनि हिन्दुस्थानमें उठने लगती है और यूरोपमें कम्यूनिज्म अथवा फासिज्मका जयजयकार होते ही भावना-प्रधान हिन्दुस्थानियोंके अन्तःकरणमें उसकी तरंगें उठने लगती हैं। आक्सफोर्डके ब्लेजरकी नक़ल करना और वर्तमान यूरोपमें प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तोंकी गप लड़ाना, दोनों कालान्तरमें फैशनकी बातें हो रहेंगी। ऐसा होनेसे बौद्धिक आलस्य और कल्पकताका अभाव, ये दो दोष उत्पन्न हो जायँगे। अन्य राष्ट्रोंने अपनी परिस्थितिके अनुसार जो राजनीतिक सिद्धान्त स्थिर किये हैं उनका तथा उनके अनुकूल साधनोंका ज्योंका त्यों अनुकरण करना आसान है, परन्तु ऐसा करना उचित नहीं प्रतीत होता। भारत-

की राजनीतिका निर्माण भारतकी भूमि, भारतकी परिस्थिति और भारतके लक्ष्यके अनुरूप ही होना चाहिये। जिस कल्पकता और साहससे भारतीय तत्त्वज्ञानियोंने अध्यात्मशास्त्रमें अग्रसर होकर संसारमें प्रथम स्थान पाया, उसी कल्पकता और साहससे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें यदि हम आगे बढ़ें, तो नवीन समाज, राजनीति, अर्थशास्त्र आदिका लक्ष्य और योजना हम निर्माण कर सकेंगे। फिर हमें संसारके नये-नये प्रयोगोंका अन्धानुकरण करनेका प्रयोजन नहीं रहेगा। केवल उनके तन्त्रों और साधनोंका अपनी लक्ष्यसिद्धिके लिए हम उपयोग कर लेंगे।

औद्योगिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक, तीनों क्षेत्रोंकी उन्नतिमें रूसने पूर्ण मनोयोग किया है। अमेरिका, इंग्लैण्ड और

औद्योगिक प्रगातिका अनिर्बन्ध वेग

जर्मनी, तीनों राष्ट्र उद्योग-धन्धोंकी दृष्टिसे बहुत आगे बढ़ गये हैं, परन्तु पिछले पाँच वर्षोंमें उक्त राष्ट्रोंने जो प्रगति की है, उसकी यदि रूससे तुलना की जाय, तो विदित होगा कि जहाँ जर्मनीका औसत तिरासी और अमेरिकाका सत्तानबे है, वहाँ रूसका दोसौ उन्नीस है। खनिज तैल (मट्टीका तेल) और पत्थरका कोयला, वर्तमान उद्योगवृद्धिके ये ही दो प्रधान साधन हैं। रूसने दोनोंका गत पाँच वर्षोंमें अपनी योजनासे भी अधिक उत्पादन किया है। अबतक तैयार माल रूसमें बाहरसे आता था, परन्तु अब बहुत-सा तैयार माल रूससे बाहर जाता है। रूसकी कपड़ेके व्यवसायकी यन्त्र-सामग्री जर्मनीमें खपती है और रूसी मोटरें तथा अन्य कितनी ही वस्तुएँ तुर्किस्थान आदि पौर्वात्य देशोंमें बिकने लगी हैं। तुर्किस्थानने कितने ही रूसी इंजीनियर अपने यहाँ बुला लिये हैं। वे वहाँ औद्योगिक उन्नतिके लिए आवश्यक पुनः-

संघटनमें सहायता करेंगे। तुर्की विद्यार्थी रूसमें जाकर विभिन्न उद्योग-धन्धोंकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। अन्य सब देशोंमें बेकारीने घर कर लिया है, परन्तु रूसमें बेकारीका नाम नहीं है और यहाँके कारखाने दिन रात चला करते हैं। वहाँ मज़दूरोंके कामके घण्टे भी घटते-घटते सात तक आगये हैं।

नयी सत्ताकी स्थिरता

इसी तीव्रगतिसे शिक्षाक्षेत्रमें भी उन्नति हो रही है। पन्द्रह वर्षोंमें निरक्षरता पूर्ण रूपसे दूर भगा दी गयी है। शालाओं, शिक्षा-संस्थाओं और विद्यार्थियोंकी संख्या तीव्र गतिसे बढ़ रही है। इनके आँकड़े देनेसे कई पृष्ठ भर जायँगे। राजनीतिक दृष्टिसे रूसकी जो उन्नति हुई है, वह तो आँकड़ोंमें समा नहीं सकती, कल्पनासे ही उसका अनुमान किया जा सकता है। क्रान्तिके आरम्भमें रूसके भीतरी-बाहरी दोनों प्रकारके शत्रु थे। राजनीतिक क्रान्तिसे जिनकी हानि हुई थी, वे लोग नयी सत्ताको उलट देनेका प्रयत्न कर रहे थे और रूसकी नयी समाज-क्रान्तिकी हवा कहीं अपने देशोंमें न बहने लगे, इस भयसे यूरोपियन राष्ट्रोंके हृदय धड़कने लगे थे। इस कारण रूसका अन्य राष्ट्रोंपर न तो कुछ प्रभाव था और न उसकी नयी सत्ताको वैध रीतिसे किसीने मान्य ही किया था। इसीसे उसके आर्थिक सम्बन्ध भी मर्यादित थे। पंद्रह वर्षोंके पश्चात् अमेरिकाने रूसकी नयी सत्ताको मान लिया; क्योंकि अमेरिकन पूँजीपतियोंको उसकी स्थिरताके सम्बन्धमें विश्वास हो गया था। राष्ट्रके नेता जबतक विचारशील, कल्पक, दृढ़लक्ष्यवाले और धैर्यवान् न हों, तब तक संसारके विरोधका सामना कर इतनी उन्नति कर लेना असम्भव है।

मनमें सहसा यह प्रश्न उठता है कि रूसकी प्रसिद्धिका मूल-मंत्र क्या है ? लक्ष्यकी दृढ़ता और साधनोंकी विविधता, ये ही दो बातें रूसी प्रयोगोंमें प्रधान जान पड़ती हैं।

प्रसिद्धिका मूल मंत्र

भूत और वर्तमान परिस्थिति तथा भावी साध्य, इन्हींका विचार कर रूसने अपना लक्ष्य स्थिर किया है। उस लक्ष्यके अनुकूल जो साधन जहाँ कहींसे मिल गये, वे उसने ग्रहण किये और नये साधन निर्माण किये। साधनोंके चुनने अथवा त्यागनेके लिए रूसके पास लक्ष्यकी कसौटी है। पूँजीवादियोंने किसी साधनका प्रयोग किया है केवल इसी निमित्तसे रूसी नेता उसका त्याग नहीं करते अथवा जब किसी साधनका एक बार अवलम्बन कर लिया है तो उसे कैसे त्यागा जाय, सिर्फ इस विचारसे वे उसे छातीसे भी नहीं लगाये रहते। अमेरिकन शिक्षा-प्रणालीमेंसे प्रोजेक्ट मेथड नामक शिक्षा-प्रणालीका कुछ वर्षों तक रूसने स्वीकार किया था; परन्तु अनुभवसे उसे ज्ञात हुआ कि वह उसके लक्ष्यके प्रतिकूल है। इस कारण रूसने उसे त्याग दिया। इसी तरह नवीन साधन प्रस्तुत करते समय रूसी नेता इस बातसे नहीं डरते कि अन्य राष्ट्रोंने अमुक बातें नहीं की हैं तो हम कैसे करें। राजनीतिक, शिक्षा-सम्बन्धी अथवा आर्थिक क्षेत्रोंमें पद पदपर यूरोपीय मानदण्डपर ध्यान रखनेकी वृत्ति रूसने कभी स्वीकार नहीं की। रूसी नेताओंकी यह निर्भयता अन्य राष्ट्रोंके लिए भी अनुकरणीय है। नये मार्ग निर्माण करनेवालोंकी संसारको आवश्यकता है। प्रारम्भिक उपहास और उपेक्षाके बादलोंसे निकलकर जो समाज स्वच्छ वातावरणमें आ जाता है, उसकी ओर संसार आदर और कुतूहलकी दृष्टिसे देखा करता है। लक्ष्य और साधनका रूसने कैसा मेल मिलाया है, इसका एक उदा-

हरण है। एक छात्र-निवासमें दो सौ पचास छात्र रहा करते थे। उन विद्यार्थियोंके अभ्यास-क्रम और रूसी औद्योगिक लक्ष्यमें पूर्ण संगति देख पड़ी। देशकी आवश्यकताओंका विचार न कर जो देश केवल किताबी शिक्षासे ईंटपर ईंट जमाया करते हैं, उन्हें इस उदाहरणकी ओर ध्यान देना चाहिये। उक्त विद्यार्थियोंके अभ्यास-क्रमके विषय इस प्रकार थे—मिकेनिकल इंजीनिअरिंग–तीस, इलेक्ट्रिकल–पचास, टेक्स्टाइल–तीस, केमिकल–पन्द्रह, सैनिक कालेज–पन्द्रह, ट्रान्सपोर्ट इंजीनिअरिंग–छः, आटोमिकेनिक्स–पन्द्रह, स्टील इण्डस्ट्री–बारह, टूलकन्स्ट्रक्शन–दस, उच्च कृषिशास्त्र–आठ।

लक्ष्यमें सुश्रृंखलता

पाश्चात्य सुधारों और वैज्ञानिक उन्नतिसे रूसने पूरा लाभ उठाया है। विज्ञान, यन्त्रकला, शिक्षाशास्त्र, अनुसंधान-पद्धति, वैद्यक आदि शास्त्रोंके अमेरिकन, जर्मन और अंग्रेज विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और इंजीनिअरोंको स्वदेशमें लाकर रूसने बड़े बड़े कारखाने खड़े किये और उन विशेषज्ञोंके साथ अपने लोगोंको रख कर उन्हें भी ज्ञानसम्पन्न बना लिया। इस विषयमें रूस पाश्चात्य राष्ट्रोंकी बराबरीमें ही नहीं, किन्तु कुछ बातोंमें उनसे भी आगे बढ़ गया है। हर अवस्थामें रूसने अपने लक्ष्यकी विशिष्टता अक्षुण्ण रखी। नवीन तत्त्वज्ञान, नवीन अर्थशास्त्र और नवीन समाजशास्त्रकी भित्तिपर अपने समाजकी इमारत खड़ी करनी है, यह भावना रूसी नेताओंके अन्तःकरणमें सदा जागरित रहती है। इस लक्ष्यकी विशिष्टता वे हर एक कार्यक्षेत्रमें रखना चाहते हैं। इस प्रयत्नमें कभी कभी उन्हें उपहासास्पद भी बनना पड़ता है। परन्तु इससे लक्ष्यके प्रति उनकी निष्ठा ही प्रकट होती है। उदाहरणार्थ, हर एक शास्त्रके साथ वे 'मार्क्सियन' शब्द जोड़ देते हैं। जैसेः—

मार्क्सियन साइकालाजी, मार्क्सियन पेडेगाजी इत्यादि। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और मैंने एक शास्त्रज्ञसे कहा,—सर्वत्र मार्क्सियन शब्द जोड़ना मेरी समझमें ठीक नहीं है। न्यूटनका गुरुत्वाकर्षण-सम्बन्धी शास्त्रीय सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तके मार्क्सियन ग्रेविटेशन और कैपिटेलिस्टिक ग्रेविटेशन इस प्रकार दो रूप हो नहीं सकते। फिर हर एक शास्त्रके साथ 'मार्क्सियन' शब्द जोड़नेसे लाभ क्या है? शास्त्र-विशेषज्ञने उत्तर दिया—मार्क्स और लेनिनने अपने ग्रन्थोंमें स्थान स्थानपर भौतिक शास्त्रों और अनुसंधानोंपर अपने विचार प्रकट किये हैं। उसी सिलसिलेसे खोजके कार्यमें आगे बढ़ना रूसका कर्त्तव्य है। मास्कोकी वैज्ञानिक विषयोंकी संस्थाओंको देख कर 'मार्क्सियन साइन्स'का अर्थ समझमें आ जाता है। समर्थ राष्ट्रोंने अबतक विज्ञानका उपयोग साम्राज्य बढ़ाने और पारस्परिक युद्धके लिए ही किया है। लड़ाईके लिए ही विषैली गैस तैयार की गयी। यदि संग्राम फिर छिड़ जाय तो 'केमिकल वारफेअर' (रासायनिक युद्ध-पद्धति) का उपयोग किस प्रकार किया जाय, इसका अनुसंधान करनेमें ही वर्त्तमान समर्थ राष्ट्रोंके शास्त्रज्ञ लगे हुए हैं। यह दृष्टि त्याग कर मानव-जातिके हितके लिए विज्ञानका उपयोग किस प्रकार किया जाय, इस विचारसे जो खोज की जाती है, रूसी लोग उसीको 'मार्क्सियन अनुसंधान' कहते हैं।

विभूति-पूजाका अतिरेक

जब समाज किसीको अपना नेता मान लेता है तब उसमें वास्तविक एवं काल्पनिक सब सद्गुण और सर्वज्ञता देखने लगता है। यह मानव-जातिका स्वभाव है। राजनीति और अर्थशास्त्रपर लिखे हुए मार्क्सके ग्रन्थोंसे रूसी लोग जिस प्रकार विज्ञानका अनुसन्धान करते हैं, उसी

प्रकार जर्मन लोग भी हिटलरके लेखोंसे मानस आदि शास्त्रोंके विषयोंका पता लगाते हैं। भावनाके भँवरमें पड़कर विभूति-पूजाका अतिरेक हो जाता है। परन्तु कालान्तरमें विवेचक दृष्टि जाग्रत होकर स्थिर सिद्धान्तोंको ग्रहण करती और अन्य बातोंको त्याग देती है।

समाजके साम्प्रदायिक विरोधको नष्ट कर सम्प्रदायहीन समाज निर्माण करना, पूँजीपतियोंकी परम्परा और व्यक्तिगत सम्पत्ति-रक्षाकी प्रणालीको नष्ट कर भौतिक सुखके सब साधनों-पर समाजकी सत्ता प्रस्थापित करना, धर्म और गूढ़वादकी ओरसे समाजका चित्त हटा कर उसे भौतिक शास्त्रोंकी ओर प्रवृत्त करना और पारलौकिक लक्ष्यकी अपेक्षा ऐहिक लक्ष्यपर समाजको आरूढ़ करना, ये सब ऐसी बातें हैं जो समाज-सत्तावादकी आधार-स्वरूप कही जा सकती हैं। ये किस प्रकार साध्य की जायँ, इसका प्रयोग सोलह करोड़ लोगोंपर रूसी नेता कर रहे हैं। ये सिद्धान्त प्रत्यक्ष आचार-व्यवहारमें कहाँ-तक काम आये, आ रहे हैं या आवेंगे, यह देख कर ही रूसके यश अथवा अपयशका निर्णय किया जा सकता है।

पंद्रहवाँ अध्याय

रूसी प्रयोग और भारतीय मनोवृत्ति

रूसी सरकारने राजसत्ताके बलपर खेती, कारखाने, निवास-स्थान, व्यापार आदि सब कुछ अपने अधीन कर लिया है। केन्द्रीय सत्ताके हाथमें उक्त कार्य-विभागोंके आजानेसे विशिष्ट

लक्ष्य और नीतिसे उनकी उन्नति करनेमें सुभीता हो गया है।

समाजसत्ताके सुपरिणाम

छोटे छोटे खेतोंको एकत्र कर देनेसे यन्त्रोंकी सहायतासे खेती कर उपज और आमदनी बढ़ायी जा सकती है और इस सुधारसे शारीरिक कष्ट कम किये जा सकते हैं। सब कारखाने सरकारी हो जानेसे बड़े बड़े यन्त्रोंको खरीदना, विदेशी इंजीनियरोंको नियुक्त करना और नये कारखाने खोलना सुगम हो गया है। इसी तरह लोगोंके रहनेके लिए घरों, दवाखानों और पाठशालाओंकी वृद्धि और उन्नति करनेमें भी सुभीता हो गया है।

नवीन समाज-रचनाका उत्साह लोगोंमें है। नवसमाजकी अभी बाल्यावस्था है, इस कारण यह समाज-रचना अखरती नहीं है। परन्तु इसी सिद्धान्तके अनुसार यदि मानवी व्यवहारकी सब संस्थाएँ समाजसत्ताधारी स्टेटके हाथमें चली जायँ तो मनुष्यमेंसे मनुष्यत्वकी मात्रा क्रमशः घटने लगेगी। क़ायदा-क़ानूनके आधारपर सब व्यवहार चलने लगेंगे। व्यक्तियोंमें परस्पर जो स्वाभाविक सौहार्द होता है, वह नष्ट हो जायगा और प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरेसे बराव करने लगेगा। सभी सरकारी संस्थाओंमें जो कठोरता देख पड़ती है, वह मानवी जीवनमें फैल जायगी और मनुष्योंका सारा जीवन रूखा हो जायगा। रूसमें अभीसे इसकी कुछ-कुछ झलक देख पड़ने लगी है। बनियेकी दूकान अथवा भोजनालयोंसे लेकर ऊँचे कार्यालयों तकके सभी लोग प्रस्थापित सत्ताके अधिकारी हैं। प्रत्येक व्यक्ति नियमों और कानूनोंके आधारपर दैनिक व्यवहार करता है। व्यक्तिगत आवश्यकताके अनुसार नियमोंमें कमीबेशी की जा सकती है, इसका किसीको विचार नहीं है। अपवादका उत्तरदायित्व

अपेक्षित दुष्परिणाम और उनके उपाय

लेनेको भी कोई प्रस्तुत नहीं है। यह देख कर मनमें विचार उठता है कि इस सरकार-दरबारकी अपेक्षा व्यक्तिगत पूँजीवाद बहुत अच्छा है। लोकशिक्षासे यह अतिरेक कम हो जायगा, ऐसी आशा करना अयुक्तिक न होगा।

अव विचार यह करना है कि पहलेके व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके सिद्धान्त और वर्तमान रूसी समाजसत्ताके सिद्धान्तका कोई मध्य विन्दु निश्चित किया जा सकता है या नहीं? समाजके आर्थिक हित और सुरक्षितताकी दृष्टिसे जितनी सत्ता और सम्पत्ति आवश्यक है, उतनी सामुदायिक रूपसे सरकारी रख कर शेष जीवन-व्यवहारके क्षेत्र यदि व्यक्तियोंको सौंप दिये जायँ, तो दोनों बातें सिद्ध हो सकती हैं और दोनों प्रणालियोंके दोष मिट सकते हैं। सामुदायिक सम्पत्तिका लाभ सब समाजको समान रूपसे प्राप्त होगा और व्यक्तिगत व्यवहारकी सरसता भी वनी रहेगी।

आर्थिक विषमता बनी हुई है

वर्गविहीन समाज निर्माण करनेकी दृष्टिसे रूसी सरकारने प्राचीन वर्गप्रधान समाजका ध्वंस कर डाला है और सव वर्गों-को मिलाकर समस्त श्रमिक वर्गका एक ही समाज निर्माण किया है अथवा यों कहिये कि ऐसा करनेकी चेष्टा वह कर रही है। परन्तु इस नये समाजमें भी उच्च, मध्यम और कनिष्ठ वर्ग बन गये हैं, क्योंकि व्यक्तिकी योग्यता और महत्त्वके अनुसार सरकार उसे वेतन देती है और वेतनके अनुसार ही उक्त वर्ग बने हैं। अधिक वेतन पानेवाले अधिकारियोंके संघ जुदे हैं, रहन-सहन भिन्न है और भोजनालय भी स्वतन्त्र हैं। इस आर्थिक विषमताके कारण आप ही आप समाजमें विभिन्न वर्गोंका निर्माण हो रहा है और समान दर्जेके लोग अपना अपना वर्ग अलग बना रहे हैं। जब

यह दोष रूसी नेताओंको दिखाया जाता है, तो वे कहते हैं,—आत्यन्तिक समाजसत्ता प्रस्थापित होनेके पूर्वके समाजवादका यह समय है। इस समय वैयक्तिक योग्यताके अनुसार वेतन दिया जाता है; परन्तु आगे चल कर कम्युनिज़्म शुरू होगा, तब हर एक मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार काम करेगा और आवश्यकताके अनुसार सामवायिक सम्पत्तिमेंसे वस्तुएँ लिया करेगा। सुखस्वप्नकी दृष्टिसे उक्त विचारसरणी ठीक है, परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वैसा समय कभी आवेगा? कुछ लोगोंका मत है कि वह समय केवल लक्ष्य-सृष्टिमें ही बना रहेगा। अस्तु, मानव स्वभावका विचार किया जाय तो यही प्रतीत होगा कि समाजमें वर्गोंका बनना अनिवार्य है। समाज-शासनके द्वारा अधिकसे अधिक यह निश्चित किया जा सकता है कि किन सिद्धान्तोंपर वर्ग कायम हो। जन्म, सम्पत्ति, गुण, कर्म, चरित्र, संस्कृति अथवा अन्य किसी भी सिद्धान्तपर समाजके वर्ग कायम किये जा सकते हैं। परन्तु यह समाज-विभाग उस समाजके सिद्धान्तों और जीवनके लक्ष्यपर अवलम्बित है।

रूसद्वारा जडवादका अंगीकार

रूसी समाजसत्तावाद जानबूझकर जड़वादके आधारपर स्थापित किया गया है। यूरोपियनों और अमेरिकनोंमें भी जड़वाद फैला हुआ है; परन्तु उन्हें जड़वादी (मेटिरियालिस्टिक) कहनेसे बुरा लगता है। रूसकी बात जुदी है। उसने बुद्धिपूर्वक जड़वादका अङ्गीकार किया है। मानवी दुःखों और अत्याचारोंकी भावनाओंको नष्ट करनेके लिए धर्मकी सृष्टि की गयी है। समाज-सत्तावादियोंका सिद्धान्त है कि धर्मसे मानवी दुःख दूर नहीं हो सकते; किन्तु भौतिक शास्त्रोंके अध्ययन और प्रकृतिके नियमोंका ज्ञान प्राप्त करनेसे हो सकते हैं। इसीसे उनका पुरुषार्थ भौतिक

सम्पत्तिका संवर्धन और उसका उपयोग करनेमें ही सीमित हुआ है। इस लक्ष्यकी सिद्धिमें पूरा मनोयोग करनेसे रूसी लोग भौतिक क्षेत्रमें अमेरिकनोंके समकक्ष हो जायँगे और रूसमें भी घरघर रेडियो, टेलीफोन, मोटर, शावर-बाथरूम, सुन्दर फर्निचर आदि देख पड़ने लगेंगे।

जड़वादके साथ ही रूस संस्कृति-संवर्धनका भी काम करता जाता है। साहित्य, संगीत, कला आदिकी सहायतासे प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास कर ले, इस उद्देश्यसे कलासम्पादनके साधन सर्वसुलभ कर देनेके प्रयत्नमें सरकार लग रही है। रूस पहलेसे ही संगीत-नर्तन-नाट्यमें अग्रसर था। सरकारके उक्त प्रयत्नसे रूसका बहुजन-समाज कलाप्रेमी और रसमर्मज्ञ होगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

उक्त सब बातें सिद्ध हो जाने पर लोगोंको वास्तविक सुख और अपेक्षित चिरशान्ति प्राप्त होगी या नहीं, यह एक प्रश्न है।

क्या सुखशान्ति सम्भव है?

जैसा समाज निर्माण करनेकी रूसकी महत्वाकांक्षा है, वैसे समाजका एक छोटासा भाग आज अमेरिका और यूरोपमें कहीं कहीं विद्यमान है। थोड़ा सुख मिलने पर उससे अधिक सुखकी इच्छा होती है और "ज्यों प्रति लाभ लोभ अधिकाई" इस उक्तिके अनुसार अतृप्तभाव जाग्रत होता जाता है। अथवा सुख-सामग्रीसे मन ऊबने पर उद्विग्नता उत्पन्न होती है। ऐसी परिस्थितिमें मनको साम्यावस्थामें रख कर शान्ति देनेवाला तत्त्वज्ञान जबतक उत्पन्न न होगा, तबतक सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं है। "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्धते॥" यह भौतिक सुखकी दशा है। प्राचीन आर्योंको जो उक्त अनुभव प्राप्त हुआ, वही

रूसी लोगोंको भी जब प्राप्त होगा, तब उनके भी तत्त्वज्ञानका आरम्भ होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। रूसकी वर्तमान स्थिति देख कर तो यही प्रतीत होता है कि कई पीढ़ियों तक दरिद्रतामें रहनेके कारण वहाँकी जनताको भौतिक जीवनकी तीव्र क्षुधा व्याकुल कर रही है।

संसार एक कदम आगे बढ़ा

फ्रांसीसी और अमेरिकाकी राज्यक्रान्तिकी तरह रूसी राज्यक्रान्ति भी बासी हो जायगी और उसके मूलभूत सिद्धान्तोंपर व्यक्तिगत परम्परा, व्यक्तिगत स्वार्थ, पक्षभेद आदिकी पुटें चढ़ जायँगी। ऐसा होने पर भी व्यापक दृष्टिसे देखा जाय तो यही कहना पड़ेगा कि इस क्रान्तिसे राजनीतिक विचारोंकी प्रगतिमें कुछ सहायता ही पहुँची है। समाजके प्रारम्भिक समयसे लेकर अबतक मानवी मनोवृत्ति इसी प्रश्नके हल करनेमें लगी है कि आदर्श समाजकी रचना कैसी हो? आत्यन्तिक सत्य अनायास खोज निकालनेकी शक्ति मनुष्यमें नहीं है। इस कारण प्रयोग करते हुए और यश-अपयशको सहते हुए वह सत्यानुसन्धानमें व्यस्त है। जो तत्त्व आज दिन नवीन है, कल वही पुराना होकर समाज-व्यवहारके उपयोगी नहीं रह जाता। उसके स्थानमें नवीन तत्त्व प्रस्थापित होता है और पूर्व समाजमें क्रान्ति हो जाती है। इस प्रकार यह समाज पुरुष लुढ़कता-पुढ़कता आगे बढ़ रहा है। राजतंत्र, प्रातिनिधिक लोकतंत्र और राजतंत्र तथा लोकतंत्रकी संमिश्र प्रणाली आदिके प्रयोग अबतक हो चुके हैं। सभी प्रयोगोंमें कोई न कोई त्रुटि देख पड़ी, इसीसे समाजतंत्रके नवीन सिद्धान्तका प्रादुर्भाव हुआ और मानवी इतिहासमें नूतन प्रयोग आरम्भ हुआ। दीर्घकालव्यापी पुराने इतिहाससे समाजकी जो विकास-प्रवृत्ति देख पड़ती है उसका खयाल करते हुए

यह नहीं कहा जा सकता कि समाज-सत्तावाद स्थिति-सुधारका अन्तिम उपाय है। इससे आगे और भी सीढ़ियाँ हो सकती हैं। कुछ भी हो, समाज-सत्तावादमें जो स्थिर सिद्धान्त हैं, उन्हें आत्मसात् कर उन्हींके आधारपर भावी समाज-पद्धति निश्चित करने योग्य तत्त्व रूसी राज्यक्रान्तिमें है।

दो छोरोंके बीचका सुवर्णमध्य

राष्ट्र अथवा समाजकी सम्पत्ति संयोगवश और परम्परासे चाहे किसी व्यक्तिके हाथ भले ही आ जाय, किन्तु वास्तवमें उसका स्वामित्व सारे समाजका है। उस राष्ट्रीय सम्पत्तिका उत्पादन, रक्षण और संवर्धन इस प्रकार होना चाहिए, जिससे सर्वसाधारणको सुख और ऐश्वर्य प्राप्त हो। यह सिद्धान्त आज नहीं तो कल मान्य होगा ही। किस सीमातक यह मान्य होगा और उस मान्यताका व्यावहारिक स्वरूप क्या होगा, यह देख कर उस समाज-शासनपद्धतिको डिमाक्रेसी (लोकतंत्रवाद), फ़ासिज़्म (उग्रराष्ट्रवाद) अथवा सोशलिज़्म (समाजवाद) नाम प्राप्त होगा। सामाजिक सम्पत्तिपर सर्वसाधारणका अधिकार रहे, यह सिद्धान्त लोकतंत्र-पद्धतिमें धुँधलासा विद्यमान था और अब भी है; परन्तु उसे काममें लानेकी विधि (टेक्नीक्) लोकतंत्र-प्रणाली निर्माण नहीं कर सकी। स्वार्थपूर्ण व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और पक्ष-भेदसे भरा हुआ समाज इन दो साधनोंपर जो लोकतंत्र-पद्धति स्थापित हुई थी, वह विफल हुई। इसीसे अपना सम्भ्रम बनाये रखनेके लिए समाजसत्ता और पक्षभेदहीन केन्द्रीभूत सत्ताकी ओर यूरोपीय समाज झुक रहा है। तारपर कसरत करनेवाला खिलाड़ी बाईं-दाहिनी ओर झुकता अवश्य है, परन्तु उसकी प्रवृत्ति स्थिर-मध्य साधनेकी ओर रहती है। यूरोपीय राजनीतिमें भी यही होगा। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, विचार-विविधता

और सामवायिक सम्पत्तिका जनसाधारणके सुखके लिए उपयोग, इन तीनों सुवर्ण-तत्त्वोंका एक ही पद्धतिमें समन्वय करनेवाली समाजसत्ता जिस भावी कालमें स्थापित होगी, रूसकी राज्यक्रान्तिने उसका ही आवाहन किया है, ऐसा आज दूरदृष्टिसे देखने पर प्रतीत होता है।

कम्यूनिज़्म अथवा समाज-सत्तावाद भारतीय मनोवृत्तिको मान्य हो सकता है या नहीं, यह एक प्रश्न मनमें उठता है।

आध्यात्मिक और भौतिक मनोभूमियाँ

इसके दो उत्तर हो सकते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिसे 'हाँ' और व्यावहारिक दृष्टिसे 'नहीं' कहा जा सकता है। पाश्चात्य लोगोंने राजनीतिका जितना अनुशीलन किया है, उतना ही भारतीयोंने आध्यात्मिक क्षेत्रमें किया है। दोनों समाज विभिन्न क्षेत्रोंमें आत्यन्तिक तत्त्वतक पहुँच चुके हैं। जीवन और समाजका विचार करते हुए भारतीय तत्त्वज्ञानी "सर्वभूतस्थमात्मनं सर्वभूतानि चात्मनि" इस उच्च अध्यात्म-तत्त्वतक पहुँच गये और इसी विचार-स्वातन्त्र्यकी प्रवृत्तिसे सामाजिक जीवनका विचार करते हुए पाश्चात्य तत्त्वज्ञानियोंने यह सामाजिक तत्त्व प्रस्थापित किया कि "राष्ट्रकी सब सम्पत्तिपर समाजका अधिकार है और सर्वसाधारणके लिए उसका उपयोग होना चाहिये।" व्यक्तिका आध्यात्मिक और भौतिक व्यक्तित्व सहस्रशीर्ष अक्ष-हस्त-पादवाले समाजमें विलीन होजाना चाहिये, यह सामान्य तत्त्व दोनों सिद्धान्तोंके मूलमें निहित है। अन्तर यही है कि भारतीय तत्त्वज्ञानी 'तत्त्व' के सिरेपर हैं और पाश्चात्य तत्त्वज्ञानी 'व्यवहार' के सिरेपर हैं। अपने आध्यात्मिक तत्त्वको व्यावहारिक समाजरचनामें रूपान्तरित करनेका मौक़ा भारतीय तत्त्वज्ञानियोंको नहीं मिला। इसी तरह पाश्चात्य तत्त्वज्ञानियोंको भी अपने

सामाजिक तत्त्वज्ञानके लिए वेदान्तका अधिष्ठान खोज निकालनेको समय नहीं मिला। स्वतन्त्र भूमिकाओंपर विचार करते करते एकने अध्यात्मतत्त्व ढूँढ़ निकाला और दूसरेने व्यवहार-पद्धतिका पता लगाया।

आत्यन्तिक लक्ष्यकी दृष्टिसे कम्यूनिज़्मकी समाज-पद्धति विचारशील भारतीय मनोवृत्तिको कदाचित् मान्य हो सकती है;

अन्य आक्षेप

परन्तु साधनोंकी दृष्टिसे रूसी कम्यूनिज़्मके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण विरोध होगा। अत्याचार और रक्तपातके आधारपर होनेवाली समाज-क्रांति भारतीय मनोवृत्तिको मान्य नहीं हो सकती। गत छः हजार वर्षोंमें अनेक पेचीदे सामाजिक प्रश्न भारतने हल किये हैं; परन्तु हर अवस्थामें क्रान्तिकी अपेक्षा उत्क्रान्ति अथवा विकासके सिद्धान्तका ही उसने सहारा लिया है। क्रान्तिके साधनोंकी छाया तद्भव समाजपर सदियोंतक पड़ी रहती है। अत्याचारोंसे निर्मित समाज अत्याचारोंके द्वारा ही स्थायी रखा जा सकता है।

जो धर्म अधोगतिको पहुँच चुका है, उसपर की हुई रूसकी चढ़ाई उचित और न्यायसंगत कही जा सकती है; परन्तु उसके उपरान्त उसने जो अनीश्वरवाद और नास्तिकवादकी वृत्ति स्वीकार की है, वह अध्यात्मकी जन्मभूमि भारतवर्षको कदापि मान्य नहीं हो सकती। "यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥" इस जड़वादी सिद्धान्तको भारतमें सहारा नहीं मिला। भारतीय तत्त्वज्ञानसे जिनका कोई सम्बन्ध नहीं है, उन शिक्षा-संस्थाओंसे जो शिक्षित हुए हैं, उन्हें रूसका जड़वाद दूरसे भले ही अच्छा लगे, पर अपने यहाँ उसे वे स्थान न दे सकेंगे। और एक बात है। भारत यह भी स्वीकार नहीं कर सकता कि व्यक्तिके आध्यात्मिक

और भौतिक जीवनके सब क्षेत्रोंपर समाजका ही अधिकार रहे। समाजहितकी दृष्टिसे उचित अधिकार समाजको देनेके लिए व्यक्ति प्रस्तुत है, परन्तु इस सीमाको लाँघकर समाज-सत्ता व्यक्तित्वको चूर-चूर कर दे, समाजकी ही दृष्टिसे यह बात अनिष्ट-कर है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रतासे समाज-संस्कृतिका विकास होकर उसमें विविधता उत्पन्न होती है और मर्यादित समाजसत्ताके द्वारा इस संस्कृतिकी सुरक्षा होती है।

भारत सावधान रहे

सारांश, विचारशील भारतीयोंका समाज-सत्तावादके सम्बन्धमें आत्यन्तिक लक्ष्यकी दृष्टिसे एक मत है; परन्तु साधनोंकी दृष्टिसे मतभेद ही रहेगा। समय अब ऐसा आ गया है कि बिना कृतिके निर्वाह नहीं हो सकता। अतः अकरणात्मकवादको छोड़कर विधायक विचार और योजना तैयार कर समाज-शासनके काममें भारतको लग जाना चाहिये। वर्तमान स्वतन्त्रताका प्रश्न आज नहीं तो कल भारत हल कर ही लेगा, यह बात अब निश्चित हो चुकी है। परन्तु स्वतन्त्रता साधन है, साध्य नहीं। स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने पर हमारा विधायक सामाजिक कार्यक्रम क्या होगा, यह प्रश्न शीघ्र उपस्थित होनेवाला है। परतन्त्र हिन्दुस्थानका विदेशी पूँजीवालोंकी सत्तासे छुटकारा होते ही यदि स्वदेशी पूँजीवालोंकी सत्ता उसका गला घोटने लगे, तो कुँएसे निकल-कर भाड़में जा गिरनेके समान दुरवस्था हो जायगी। पाश्चात्य देशोंकी औद्योगिक अभिवृद्धिका परिशीलन कर उसके संकटोंसे बचकर भारतको अपनी उन्नति करनी चाहिये। समाजके हित और स्वामित्वके उद्योग-धन्धे स्वार्थी व्यक्तियोंके हाथमें न जाकर समाजके हाथमें रहें और उनका उपयोग सर्वसाधारणको लूटने-के लिए नहीं, किन्तु उनके भौतिक और सांस्कृतिक सुखोंकी

वृद्धि करनेके लिए होता रहे, इसका विचार अभीसे रखना उचित है। बढ़े चढ़े उद्योग-धन्धोंकी बागडोर व्यक्तियोंके हाथमें जाकर वह यदि उनकी बपौती हो जायगी, तो पाश्चात्य देशोंमें पूँजीपति और मज़दूरोंमें जैसा झगड़ा अनवरत रूपसे छिड़ा रहता है, वैसा भारतमें भी छिड़ जायगा और 'कम्यूनिज़्म' का हौआ बराबर बना रहनेसे अशान्ति बढ़ती जायगी। संसारके विचार-प्रवाहको ध्यानमें रखकर, दूरदर्शिताका अवलम्बन कर और भावी परिस्थितिका आकलन कर यदि हम अपने समाजकी नवीन रचना करें, तो बुद्धिमानीका काम होगा।

रूसकी सब बातोंको देखकर यात्री जब अपने मनमें शान्त चित्तसे विचार करने लगता है, तब वह इसी परिणामपर पहुँचता है कि यद्यपि मैं स्वयं 'कम्यूनिस्ट' नहीं हूँ, तथापि कम्यूनिज़्ममें भय करने योग्य कोई बात नहीं है। अपनी परिस्थिति एवं मनोवृत्तिके अनुसार औचित्य और योग्यायोग्यका विचार कर जो उत्तम तत्त्व प्रतीत हों, उनका अपने सामाजिक सिद्धान्तोंमें समावेश कर लेना प्रत्येक समाजको उचित है। जहाँ ग़रीबसे ग़रीबको भी भरपूर अन्न-वस्त्र मिलता है, जहाँ श्रमिकोंके बच्चोंको उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार शिक्षा मिलती है, जहाँ रंकको भी चिकित्सा-सम्बन्धी समस्त साधन उपलब्ध हैं, जहाँ साहित्य-सङ्गीत-कला सबके लिए सुलभ हैं, ऐसा समाज नन्दन-काननका सुख-स्वप्न निर्माण करनेवाले कवियोंकी प्रतिभामें ही देख पड़ता था; परन्तु आज दिन वह मूर्तिमान् होकर हमारी आँखोंके सामने इसी पीढ़ीमें विकासको प्राप्त हो रहा है। अपनी परम्परा, मनोवृत्ति और जीवन-ध्येयके अनुकूल साधनोंसे उक्त आदर्श समाजका निर्माण करना प्रत्येक समाजका कर्तव्य होना चाहिये।

तीसरा विभाग

ग्लैण्ड और इटली—प्राचीन-संस्कृतिकी सुरक्षा

सोलहवाँ अध्याय

पराभूत जर्मनीमें राष्ट्रतेजका उदय कैसे हुआ ?

जब कोई अजनबी बर्लिन विश्वविद्यालयमें ऐसे विद्यार्थियोंको देखता है जो सैनिक वेषसे सुसज्जित हों और जो कन्धे तक हाथ उठाकर "हाईल हिटलर" कहकर सलाम कर रहे हों, तो उसे भ्रम हो जाता है कि विश्वविद्यालयके धोखेमें कहीं मिलिटरी एकाडमीमें तो नहीं आ गया हूँ। पैरमें घुटने तक वजनदार फौजी बूट, उसपर ढीला आधा पायजामा (हाफ़ पैण्ट), कन्धेसे कमर तक चमड़ेका परतला, भुजापर स्वस्तिक चिह्न, कमरमें तलवार, कटार या अन्य कोई शस्त्र और सिरपर फौजी टोपी, यही वर्तमान जर्मनीमें सर्वसाधारणकी पोशाक है और इसीसे सारा जर्मनराष्ट्र सुसज्जित हो रहा है। कालेजोंमें, मार्गमें, दफ़्तरोंमें, सभाओंमें कहीं जाइये, फौजी ठाठके मनुष्य सर्वत्र दिखाई देंगे। घरसे घड़ी भरके लिए बाहर निकलिये, स्वस्तिक चिह्नांकित झण्डे फहराती और 'रप्-रप्' शब्दसे पैर पटकती हुई कमसे कम दो-तीन पलटनें जाती देख पड़ेंगी। आठ वर्षके बच्चेसे लेकर पचास वर्षके बुड्ढे तक सभी लोगोंने खाकी पोशाक पहन ली है। रास्तेसे दो बच्चे एक साथ जा रहे हों, तो वे भी फौजी तालपर 'एक-दो, एक-दो' बोलते हुए पैर बढ़ाते जाते हैं। रविवारके दिन तो फौजी दृश्यकी बाढ़ आ जाती है। जहाँ तहाँ मिलिटरी बैंडकी आवाज़ सुनाई देती है और खाकी पोशाक धारण किये हुए

सर्वत्र सैनिक वातावरण

अरुण-तरुण-वरुणोंकी पलटनें स्वस्तिक चिह्नांकित ध्वजाओंको लेकर चर्चसे बाहर निकलती हुई देख पड़ती हैं। जन-समुदायसे हटाकर यदि वस्तु-समुदायपर दृष्टि डाली जाय तो वहाँ भी वही (फौजी) दृश्य दिखाई देता है। कपड़ेकी दूकानोंमें आबाल-वृद्धोंकी फौजी पोशाकें विक्रयार्थ प्रस्तुत रहती हैं। हवाई जहाजोंकी यदि देशपर चढ़ाई हो, तो आतमरक्षा कैसे की जाय, इस सम्बन्धके प्रदर्शन स्थान स्थानपर दूकानोंमें सजाकर रखे हुए हैं। विषैली गैससे बचनेके साधन भी सर्वत्र बिक्रीके लिए तैयार हैं। वायुयानोंकी चढ़ाईसे रक्षा करना राष्ट्रीय कर्तव्य है। इस आशयकी कहावतें लिखकर मार्गमें लटका दी गयी हैं।

सायंकालके शान्त समयमें चहलकदमी करने निकलिये, तो उस समय भी वही दृश्य देख पड़ता है। जिस किसीको बीस-पचीस बालक मिल जाते हैं, वही उनको लेकर किसी मैदान या खँडहरमें चला जाता है और वहाँ उन्हें फौजी कवायद, दौड़ आदिकी शिक्षा देता है। जर्मन लोगोंके वर्तमान विचार क्या हैं, यह जानना हो तो पुस्तकोंकी दूकानोंमें जाकर वहाँकी पुस्तकों-पर दृष्टि डालिये। कमसे कम दस बारह पुस्तकें ऐसी मिलेंगी, जिनके मुखपृष्ठपर हिटलरका चित्र है। अन्य पुस्तकोंके देखने-से भी अनुमान होता है कि वंशविद्या और युद्धविद्याके विवेचन से ही वे भरी हुई हैं। सिनेमामें भी प्रधान चित्रपटके पहले या पीछे हिटलर और नाजी सेनाका कोई दृश्य दिखाया जाता और उसी सम्बन्धका कोई भाषण सुनाया जाता है। इसके बिना सिनेमाका कार्यक्रम ही पूरा नहीं होता। सारांश, वर्तमान जर्मनीमें जहाँ-तहाँ सैनिक तेज और राजनीतिका सञ्चार हो गया है। इस देशमें प्रवास करनेवाले यात्रीको यही प्रतीत होता है कि यह देश युद्धमें उलझा हुआ है।

यूरोपमें युद्धकी लालसा फिर जाग उठी है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। एक युद्धसे दूसरे युद्धका सूत्रपात होता ही है। गत महायुद्धके अन्तमें जेता राष्ट्रोंने पराभूत जर्मनीको जो सन्धि करनेके लिए बाध्य किया, उसीसे भावी युद्धका बीजारोपण हो गया। तफ़सीलके फेरमें न पड़कर स्थूलरूपसे देखा जाय तो जर्मनी और हिन्दुस्थानकी परिस्थिति एक सी ही देख पड़ेगी। १८५७ के आन्दोलनके पश्चात् हिन्दुस्थानी जनताको सदाके लिए निःशस्त्र कर ब्रिटिश साम्राज्यने हिन्दुस्थानपर राजनीतिक और आर्थिक सत्ता प्रस्थापित कर दी। इसी तरह महायुद्धके पश्चात् जर्मनीको निःशस्त्र कर उसपर अधिकार करनेका प्रयत्न जेता राष्ट्रोंने किया था। हिन्दुस्थानका विस्तार और विविधता अधिक होनेसे यहाँ जाग्रति होनेमें विलम्ब लगा; परन्तु जर्मनी महायुद्धके अनन्तर चौदह वर्षोंमें ही जाग्रत हो उठा और पराभवके अपमानका परिमार्जन करनेके लिए प्रस्तुत हो गया है।

हिन्दुस्थान और जर्मनी

हिटलर जैसे जंगली नेताका अनुसरण जर्मनी जैसा सुसंस्कृत राष्ट्र क्यों करता है? इस बातपर पहले तो आश्चर्य होता है; परन्तु महायुद्धोत्तर जर्मनीकी परिस्थितिका अनुशीलन करनेसे इस प्रश्नका उत्तर मिल जाता है। वर्सायकी सन्धिसे जर्मनीपर मर्यादातीत आर्थिक बोझा लादा गया और उसी अवस्थामें मन्दी तथा अकालने चार वर्षों तक लगातार उसे चाप रखा। युद्धके उपरान्त जर्मनीमें लोक-तंत्रप्रणाली स्थापित हुई; परन्तु इस व्यवस्थामें पक्ष और उपपक्ष इतने अधिक खड़े हुए कि कोई भी एक पक्ष राज्य-सञ्चालनमें समर्थ न हो सका। जब चुनावका समय आता, तभी मारकाट और खूनखराबी हो जाया करती

महायुद्धोत्तर अव्यवस्था

थी। जर्मनीकी शिक्षा-प्रणालीके अनुसार केवल किताबी शिक्षा पाकर जो पदवीधर तैयार हुए थे, वे काम-धन्धा न मिलनेके कारण बेकार होकर इधर उधर भटकने लगे। "डाक्टर आफ फिलासफी" (पी.एच.डी.) का भी कोई मूल्य न रहा; क्योंकि बहुतसे डाक्टर हो गये। इसी मध्यम श्रेणीके लोगोंमें वर्तमान राज्य-पद्धतिके सम्बन्धमें असन्तोष उत्पन्न हो गया।

अन्य राष्ट्रोंकी तरह जर्मनीमें भी श्रमिकोंकी बेकारी बढ़ गयी थी। इसी दशामें वर्सायकी सन्धिका अपमान सहना पड़ा। सैनिक संघटनके लिए गत दो सौ वर्षोंसे जर्मनीकी ख्याति थी; किन्तु जेता राष्ट्रोंने बलपूर्वक उसे निःशस्त्र बना डाला। यह बात जर्मनीके हृदयमें चुभती थी। इसी तरह अन्यायसे जर्मन प्रान्तों-का जो विभाजन किया गया, वह भी लोगोंको अखर गया।

ऐसे अवसरपर इस परिस्थितिसे देशका उद्धार करनेवाले किसी योग्य नेताकी जर्मनोंको आवश्यकता थी। राजनीतिक नेताकी तरह दिखाई देनेवाला हिटलर जङ्गली है, यह लोग जानते थे। परन्तु उस समय छातीपर हाथ रखकर यह कहने-वाला भी दूसरा नेता सामने नहीं आ रहा था कि मेरे हाथमें अधिकार-सूत्र देकर तो देखो, क्षणभरमें मैं जर्मनीकी परिस्थिति सुधार दूँगा। इसीसे यह खयाल कर कि हिटलरके हाथमें सत्ता चली जानेसे वर्तमान परिस्थितिकी अपेक्षा देशकी दशा और अधिक तो बिगड़ नहीं सकती, जर्मनोंने उसे अपना नेता मान लिया और अप्रैल सन् १९३३ से जर्मन राष्ट्रमें नवीन क्रान्तिका आरम्भ हो गया।

मौजूदा आपत्तियोंसे उद्धार पानेके लिए जर्मनीने जब हिट-लरको शीर्ष स्थानमें स्थापित कर लिया, तब हिटलरने भी अपनी कल्पनाओं और सिद्धान्तोंको तलवारके ज़ोरपर जर्मनी-



जर्मनीके सर्वेसर्वा—हिटलर

के सिर लादनेका कार्यक्रम आरम्भ किया। हिटलरकी विचार-

हिटलरकी नीति

धारा इस प्रकार है कि जनताके मनकी परीक्षा कर उसे मान्य हो सकें, ऐसी एक दो बातें कहकर यदि उन्हींके साथ अपने भी दो एक भले बुरे सिद्धान्तों-का प्रतिपादन कर दिया जाय, तो ये दोनों ही बातें जनताकी समझमें आ सकती हैं और पहले पहल जिन बातोंसे वह हिच-कती हो, उन्हींकी पुनरुक्ति कर बारबार समझाते रहनेसे जनता अन्तमें उनको स्वीकार कर लेगी। यदि जर्मनी पुनः बलवान् होना चाहे तो राष्ट्रमें एकता स्थापित होनी चाहिये और पराभव-से उत्पन्न हुई लघुताकी भावनाको धो बहाना चाहिये, हिट-लरने यह बात जान ली और इसीके आधारपर उसने अपनी राजनीतिकी इमारत खड़ी की है।

दुर्बलता अथवा शत्रुओंकी प्रबलताके कारण महायुद्धमें जर्मनीकी पराजय नहीं हुई है। इधर लोग युद्धमें व्यस्त थे और

यहूदियोंके द्वेषकी मीमांसा

उधर मार्क्सिस्ट लोगोंने बलवा कर गृहभेद उपस्थित कर दिया, इसीसे जर्मनीकी हार हुई, नहीं तो वह अवश्य जीत जाता। यह नवीन मत हिटलरने बार बार प्रतिपादित कर लोगोंके गले उतार दिया। लोगोंमें एकता प्रस्थापित करनेके लिए किसी शत्रुकी आवश्य-कता होती है। यदि कोई विदेशी शत्रु खड़ा किया जाय, तो जर्मनीमें युद्ध करनेकी शक्ति नहीं है, ऐसा सोचकर ही हिटलर-ने मार्क्सिस्ट और यहूदियोंको जर्मनीका शत्रु घोषित कर देशमें एकता स्थापित करनेका प्रयत्न किया। ईसाइयों और यहूदियामें सदियोंसे दृढ़ वैरभाव चला आ रहा है। कार्लमार्क्स यहूदी था और उसके अनुयायियोंमें भी यहूदी अधिक हैं। इन बातोंसे लाभ उठाकर यहूदियोंके विरुद्ध जर्मनीकी मूर्ख जनताको उभाड़नेमें

हिटलरको बहुत समय नहीं लगा। यहूदियोंके प्रति हिटलरके मनमें जो विद्वेष था, वह उसने जनताके मत्थे मढ़ दिया और जर्मनीसे यहूदियोंको निकाल देनेके विचारसे वंशशुद्धिका सिद्धान्त प्रतिपादित किया। जर्मन लोग शुद्ध आर्यन् हैं और नोर्डिक वंशके हैं। उनकी विशुद्धताकी रक्षाके लिए उन्हें सेमिटिक अर्थात् यहूदियोंसे पृथक् रखना आवश्यक है। नोर्डिकवंश तेजस्वी और पुरुषार्थी है। यदि अन्य वंशोंके साथ उसकी खिचड़ी हो जायगी, तो उसकी तेजस्विता और पुरुषार्थशीलता नष्ट हो जायगी। जर्मन-संस्कृति संसारमें सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि एक ही वंशके समाजने उसका निर्माण किया है। यदि यह अपेक्षा हो कि भविष्यमें भी जर्मन-संस्कृति श्रेष्ठ बनी रहे, तो जर्मन-वंशकी विशुद्धता अक्षुण्ण रखनी होगी। इस प्रकार वंश-विशुद्धि और संस्कृति-श्रेष्ठताके मधुर सिद्धान्तके बहाने हिटलरने यहूदियोंके सम्बन्धके अपने निजी विद्वेषको वैज्ञानिक रूप दे दिया है।

राष्ट्रीय एकता और सैनिक मनोवृत्ति

राष्ट्रमें एकता स्थापित कर पुनः सैनिक शक्ति बढ़ानेके लिए यह आवश्यक था कि जो सिद्धान्त या जो बातें इसके विरुद्ध हों, उनका खंडन किया जाय। इसीसे वर्ग-कलहके सिद्धान्तपर जो कम्यूनिज़्म अवलम्बित था, उसका खण्डन कर राष्ट्रीय एकताकी भावनापर उसने ज़ोर दिया। इसी तरह पक्ष-उपपक्षके आधारपर स्थित लोकतंत्रका भी विरोध कर उसने “एक ही पक्ष, एक ही नेता और एक ही जनता” का मंत्र घोषित किया और उसे सबसे स्वीकार करा लिया। युद्धसे ऊब जानेके कारण गत पंद्रह वर्षोंमें यूरोपमें स्थायी शान्तिका जो आन्दोलन चल पड़ा था, उसने जर्मनीमें भी प्रवेश किया था। इस तरहकी हलचल सैनिक

शक्तिवृद्धिके प्रतिकूल है, यह जानकर हिटलरने 'शान्तिवादी' व्यक्तियों तथा संस्थाओंपर कड़ी दृष्टि रखी और उनके मुँह बंद कर दिये। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, विचार-स्वातन्त्र्य, लेखन-स्वातन्त्र्य और भाषण-स्वातन्त्र्यसे एकमुखी सत्ताका भङ्ग होता है, यह सोचकर हिटलरने इन विषयोंकी स्वतन्त्रता छीन ली। सामाजिक व्यवहारमें स्त्रियाँ यदि पुरुषोंके साथ काम करने लगें तो पुरुष स्त्रैण हो जायँगे और उनका सैनिक तेज घट जायगा, इस डरसे उसने स्त्रियोंको सब क्षेत्रोंसे पृथक् कर दिया और माताओं तथा पत्नियोंका ही काम उनको सौंप दिया।

सारांश, जर्मनीकी एकता और राष्ट्रीय पुनरुज्जीवनके सात्त्विक लक्ष्यके साथ अपने वर्ण-विद्वेष एवं संकुचित विचारोंके तामसिक लक्ष्यको जोड़ कर हिटलरने गंगा-जमनी और विश्रृंखल सिद्धान्त निर्माण कर राष्ट्रके गले उतार दिया। अन्य उपयुक्त नेताके अभावमें जर्मनराष्ट्रको निरुपाय होकर उसकी बातें मान लेनी पड़ीं। यद्यपि इस समय जर्मनीके राजनीतिक क्षेत्रमें अच्छे-बुरे सभी तत्त्वोंका समावेश हो गया है; फिर भी जर्मन-संस्कृतिकी मौलिकताका विचार करते हुए यह आशा की जा सकती है कि कालान्तरमें प्रचलित तत्त्वोंमेंसे जो सात्त्विक होंगे, वे ही बच रहेंगे और तामसिक आप ही आप नष्ट हो जायँगे।

चनेके साथ घुन भी

सिरपर जब जिम्मेदारी आ पड़ती है तब विवेक और समझदारी भी अपने आप आने लगती है। तदनुसार धीरे-धीरे हिटलरके स्वभावमें भी परिवर्त्तन होना सम्भव है। इटलीका मुसोलिनी जब अधिकारारूढ़ हुआ, तब उसने भी हिटलरकी नीतिका अवलम्बन किया था, परन्तु व्यवहारक्षेत्रमें उतर आने

पर उसका तीखापन जाता रहा और इस समय वह संसारके एक बड़े राष्ट्रका कर्णधार माना जाता है। जर्मन भी कहते हैं कि पहलेका हिटलर अब नहीं रहा। उत्तरदायित्त्व सिरपर आ पड़नेके कारण उसका पहलेका अविवेकी स्वभाव बदल गया और अब वह फूँक-फूँककर पैर रखता है। फिर भी नवीन आन्दोलनके आधारभूत सिद्धान्तोंमें उसकी जो श्रद्धा है, वह अभी किञ्चिन्मात्र नहीं घटी है।

सत्रहवाँ अध्याय

नाजियोंकी कार्यप्रणाली और हिन्दुस्थानको चेतावनी

अपने राजनीतिक और राष्ट्रीय सिद्धान्त निश्चित कर उन्हें व्यवहारमें परिणत करनेके लिए हिटलरके दलने जिन साधनोंका अवलम्बन किया है, उनमें रूसी और इटालियन राज्य-क्रान्तिके साधनोंका ही समावेश है। पहली बात यह है कि इस दलने एकतन्त्र सत्ता स्थापित कर सब अधिकार अपने हाथमें ले लिये हैं। दलके विरोधी पक्षों और व्यक्तियोंका अत्याचारसे अथवा अन्य उपलब्ध साधनोंसे उसने नाश कर डाला। नाजी दल कम्यूनिस्टों और यहूदियोंको अपना शत्रु समझता है। अतः उनके नेता या तो कैद कर दिये गये या देशके बाहर निकाल दिये गये। जब इस दलके अनुयायियोंको विश्वास हो गया कि कम्यूनिस्ट और यहूदी हमारे नेताओंके द्वेष-भाजन हैं, तब उन्होंने व्यक्तिगत तथा आपसके कलहका बदला चुकानेके लिए यहूदियों और

एकतन्त्र सत्ताका मार्ग

कम्यूनिस्टोंपर ऐसे-ऐसे अत्याचार किये, जो जर्मन-संस्कृतिके लिए कलंक-स्वरूप हैं। नेताओंने भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। काल्पनिक अन्तःशत्रुओंका इस प्रकार नाश कर अपनी सत्ता दृढ़ करने और सर्वसाधारण जनताकी श्रद्धा सम्पादन करनेका नाज़ी लोग प्रयत्न करने लगे। पहले उन्होंने सब समाचारपत्र हस्तगत कर लिये। विविध मतवाले समाचारपत्रोंके सञ्चालकों-पर अपना एक एक अधिकारी नियुक्त कर दिया और एकरङ्गी समाचार तथा लेख प्रकाशित किये जाने लगे। जर्मन भाषासे अनभिज्ञ कोई व्यक्ति यदि जर्मन नागरिकसे पूछता कि आजका क्या समाचार है? तो यही उत्तर मिलता कि कोई नया समाचार नहीं है। पुराने ही समाचार और पुराने ही भाषण सब समाचारपत्रोंमें छपे हैं। सब समाचार सेन्सर (जाँच) होकर छपते हैं इस कारण बिना विदेशी पत्रोंके पढ़े जर्मनीमें क्या हो रहा है, यह जर्मनीमें रहनेवालोंको भी ज्ञात नहीं हो सकता। जनताकी श्रद्धा सम्पादन करनेके लिए उसे अनिवार्य राजनीतिक शिक्षा दी जाती है। हिटलर अथवा अन्य किसी नेताका जिस समय व्याख्यान हो, उस समय कारखानोंमें छुट्टी हो जाती है और सभास्थानमें कारखानोंमें काम करनेवालोंकी हाजिरी ली जाती है। इससे इच्छा हो या न हो, कुछ राजनीतिक सिद्धान्त लोग सुन ही लेते हैं। ज़बर्दस्तीकी इस नीतिका अतिरेक होने पर कुतूहलकी अपेक्षा वह उपहासका ही कारण होगी। १२ नवम्बरको हिटलरका भाषण हुआ। उस समय समाजके सब कामकाज बन्द कर दिये गये और सभी प्रधान थियेटरों, होटलों, ग्रन्थसंग्रहालयों और सभागृहोंमें रेडियो लगा दिये गये जिससे सब ओर भाषण सुनाई दे। होटलोंमें उस समय भोजन न परोसा जाय, यह भी अनुरोध कर दिया गया था।

हिटलरकी वक्तृता

हिटलरकी वक्तृताकी बड़ी प्रशंसा की जाती है; परन्तु उसमें उत्तेजकताके अतिरिक्त कुछ नहीं होता। जर्मनभाषा स्वभावतः ओजपूर्ण और ऐंठसे भरी हुई है। फिर यदि उस भाषामें कोई मारो-काटो-लूटो इत्यादिका स्वर अलापने लगे, तो उसमें और भी अधिक तेज आ जाता है। हिटलर अपना भाषण धीरे-धीरे और गम्भीरतासे आरम्भ करता है। जब कोई उत्तेजक प्रसङ्ग आ जाता है, तो धीरे-धीरे वह अपनी आवाज़ ऊँची उठाता और बहुत ऊँची आवाज़में वाक्य समाप्त कर फिर मन्द स्वरमें बोलने लगता है। जब वह उत्तेजित हो जाता है, तब लम्बी-लम्बी वाक्यरचना कर प्रत्येक शब्दपर ज़ोर देते हुए स्पष्ट बोलता है। कभी-कभी तो गला फाड़ कर और कर्कश स्वरमें चिल्ला कर वाक्यकी परिसमाप्ति करता है। शब्दोंके लिए उसे अटकना नहीं पड़ता। कण्ठस्थ पाठकी तरह उसके मुखसे वाक्-प्रवाह प्रवाहित होता रहता है। भाषणमें यही अभिनय वह हर पाँचवें दसवें मिनटपर दिखाया करता है। आवेशको छोड़कर उसके भाषणमें विनोद, मार्दव, हास्य, उपहास आदि भावनाओंकी विविधता नहीं होती।

व्यवस्थित मतप्रचार

इस समय जर्मनीमें नाज़ी मतके विरुद्ध कोई मत सिर ऊँचा नहीं कर सकता। स्वतन्त्र सभाओं अथवा समाचारपत्रों द्वारा मत-प्रतिपादन करना सम्भव नहीं रह गया है। अत्यन्त आत्मीय और विश्वस्त व्यक्तियोंके सिवा अन्य किसीसे कोई जर्मन स्वतन्त्रतापूर्वक विचार-विनिमय भी नहीं कर सकता। विरुद्ध मतका प्रसार रोकनेके लिए जितनी दृढ़तासे काम लिया जाता है, उतनी ही व्यवस्थित रीतिसे और खुले हृदयसे नाज़ी दल अपने मतका प्रचार किया करता है। मत-प्रचारके लिए स्वतन्त्र मन्त्री (प्रोपेगैण्डा मिनिस्टर) की नियुक्ति

की गयी है। उपलब्ध सब साधनोंसे वह अपना कार्य-निर्वाह करता है। वह ऐसे संघटित रूपसे मत-प्रचार करता है, जिससे जर्मनोंकी दृष्टिके सामने और अन्तःकरणमें भी नाज़ी दलके सिद्धान्त स्थायी रूपसे बने रहें। प्रतिदिन नये-नये विज्ञापन भीतपर चिपकाये जाते हैं। रेडियो-सिनेमाओंमें भाषण होते रहते हैं और सड़कोंपर नाज़ी सेनाओं और बालचरोंके जलूस निकलते रहते हैं। इस प्रकार अनेक साधनोंके द्वारा जर्मनीमें नाज़ी मतका प्रचार किया जा रहा है। नाज़ियोंके मानस-शास्त्रका सिद्धान्त है कि बारबार एक ही मतका ज़ोरोंसे प्रतिपादन करते रहनेसे उस मतको लोग ग्रहण कर लेते हैं। तर्ककी अपेक्षा पुनरुक्तिको वे श्रेष्ठ मानते हैं।

राजनीति शास्त्रकी सगुणभक्ति और परम्परा

इस आन्दोलनमें आबालवृद्ध स्त्री-पुरुषोंको सम्मिलित करनेके लिए सर्वाकर्षक और व्यापक कार्यक्रम बनाया गया है। आठ वर्षके बालकसे लेकर पचास वर्षके प्रौढ़ मनुष्य-तक सब नागरिकोंको नाज़ी मतमें मिला लेनेके लिए हिटलरके दलने जो संघटन किया है, वह विचार करने योग्य है। साधारणतया छोटे बालकों, युवकों और अधिकांश प्रौढ़ लोगोंको फौजी पोशाक पहिनने और फौजी ठाठसे रहनेका हौसला रहता है। इस मनोवृत्तिका उपयोग कर नाज़ी दलने तरह तरहकी फौजी पोशाकें विभिन्न वयस् और योग्यताके मनुष्योंके लिए नियत कर दी हैं। नाज़ी दलकी खास सलामी (हथेली उलटी कर आकाशकी ओर ले जाना), "हाईल हिटलर" की ध्वनि, स्वस्तिक चिह्नांकित पताका, रास्तेमें दौड़ते हुए चलनेके सैनिक गान इत्यादि बातें ऐसी हैं जो सामान्य व्यक्तियोंको अच्छी लगती हैं। बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक प्रत्येकको राष्ट्रके लिए क्या क्या करना चाहिये,

यह निश्चित कर दिया गया है। इस कारण देशभक्तिका स्वरूप केवल तात्त्विक ही नहीं रह गया है; ग़रीबोंके लिए फण्ड एकत्र करनेसे लेकर निरन्तर नाज़ी दलका ही कार्य करते रहने तकके सब कामोंका देश-भक्तिके कार्यक्रममें समावेश हो गया है। रूस, इटली और जर्मनीने राजनीतिक मतों और कार्योंके प्रचारके लिए जो सामाजिक सङ्गठन किया है, प्रायः वह एक-सा ही है और उसके अनुसार भारतवर्ष भी अपना विधायक कार्यक्रम तैयार कर सकता है। किसी आन्दोलनका अन्तिम लक्ष्य कितना ही उत्तम क्यों न हो, साधारण लोगोंकी बुद्धिके लिए वह अगम्य हुआ करता है। लोग सगुण भक्ति चाहते हैं। उनके लिए मूर्तिमान् प्रतीक तैयार कर प्रत्येक व्यक्तिको उसकी योग्यताके अनुसार काम बाँट देना आवश्यक होता है। इस रीतिसे राजनीतिक विचारधारा और कार्योंकी परम्परा प्रौढ़ पुरुषोंसे लेकर युवकों-तक अविच्छिन्न रूपसे बनी रहती है।

नये क़ानून

समाज-शासनमें अपने तत्त्वोंको मूर्त रूप देनेके लिए नाज़ी दलने क़ानून अपने हाथमें ले लिये हैं। बहुतसे क़ानून बदल दिये हैं और कितने ही क़ानूनोंमें संशोधन करनेका काम चालू है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नये क़ानून कम्यूनिस्टों और यहूदियोंके विरुद्ध हैं। कम्यूनिस्टों और यहूदियोंको सरकारी नौकरियाँ नहीं मिल सकतीं, न उन्हें वकालत या डाक्टरी करनेकी ही आज्ञा दी जा सकती है। वंश-शुद्धिके लिए दो तीन क़ानून नये बने हैं। उन कानूनोंके अनुसार जर्मन लोग अपने वंश (रेस) को छोड़कर दूसरे वंशोंसे विवाह-सम्बन्ध नहीं कर सकते।

जर्मनीवाले अपनी संस्कृतिके लिए चिरकालसे प्रसिद्ध हैं, अतः प्रश्न यह उठता है कि वे संकुचित विचारोंके इस आन्दोलनमें

कैसे सम्मिलित हुए? यह बात सत्य है कि जर्मन शिक्षाप्रणाली विभिन्न विषयोंका विशेष ज्ञान प्रदान कर लोगोंको विद्वान् बनानेमें सहायक होती है; परन्तु उनकी विद्वत्ता किसी एक क्षेत्रतक ही मर्यादित होती है। उनमें सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिसे स्वतन्त्र विचार करनेवाले लोग बहुत ही कम होते हैं। प्रचलित राजसत्ताके आगे सिर झुकाना और जो राजसत्ता प्रस्थापित हो गयी हो, उसका अभीष्ट-चिन्तन करना ही पण्डितोंका काम है। उनमें भी जो स्वतन्त्र विचारोंके थे, वे जर्मनी छोड़कर चले गये। कुछ ऐसे पण्डित भी हैं, जो यह समझ कर चुप्पी साधे बैठे हैं कि यह बोलनेका समय नहीं है। स्कूलों, कालेजों और ग्रन्थालयोंके शान्त वातावरणमें जो तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है, वह मृदु होनेके कारण व्यवहारके कठोर वातावरणमें टिक नहीं सकता। विद्या और व्यवहारका इस प्रकार विच्छेद हो जानेके कारण हिटलर जैसे नेता आगे बढ़कर विद्वानोंकी आँखोंके सामने ही राष्ट्रका कान पकड़कर, उसे जहाँ चाहते हैं वहाँ ले जाते हैं। सुसंस्कृत लोगोंकी यह अवस्था है। साधारण लोगोंकी मनोवृत्तिका पहले उल्लेख हो चुका है। वे प्रायः उदासीन हैं और कहा करते हैं—"हिटलर आया है। देखा चाहिये कि क्या करता है। मौका देनेमें क्या हानि है?" महायुद्धसे पूर्वके दो सौ वर्ष जर्मनोंने सैनिक वातावरणमें बिताये हैं। सैनिक प्रबन्ध और हुकूमतसे वे चिरपरिचित हैं। व्यक्तिस्वातन्त्र्य एवं मतभेदकी अवस्थामें कोई नया मार्ग खोज निकालनेका उन्हें अभ्यास नहीं है। वे तो हुक्म मानना जानते हैं। युद्धके पश्चात् सैनिक शासनका यह धागा टूट गया था, परन्तु हिटलरने फिरसे जोड़ दिया। इसीसे जर्मनीकी भावना हो चली है कि हमारा पहला सुवर्ण दिन फिर

पण्डितों और सामान्य लोगोंकी मनोवृत्ति

लौट आया है। सारांश, जर्मनीमें जो राष्ट्रीयताका उत्कर्ष और सैनिक तेज आरोपित हो रहा है, वह लोगोंको पसन्द है। अन्य बातें निरुपाय होकर उन्हें स्वीकार कर लेनी पड़ी हैं।

हिटलर अपने आपको नेशनल सोशलिस्ट कहता है। परन्तु सोशलिज़्म (समाजवाद) की दृष्टिसे उसका कोई विधायक कार्यक्रम प्रकाशित नहीं हुआ है और उसके अनुयायियोंके भाषणोंसे भी अनुमान नहीं किया जाता कि उस ढङ्गका उसका कोई कार्यक्रम होगा। चिकित्सक-दृष्टिसे जर्मनीके आन्दोलनको देखनेसे उसके कुछ लक्ष्योंके सम्बन्धमें सहानुभूति उत्पन्न होती है, परन्तु नाज़ी दलने जिन साधनोंको स्वीकार किया है और जिन संकुचित तत्त्वोंको अपनाया है, उनको देखकर घृणा होती है। युद्धोत्तर कालकी परिस्थितिको पार कर जर्मन राष्ट्र अन्य प्रमुख राष्ट्रोंकी श्रेणीमें आ जाय और जर्मन संस्कृतिकी विशिष्टता अक्षुण्ण रहकर उसकी वृद्धि हो, इस लक्ष्यका आदर सभी करेंगे। परन्तु मनमें प्रश्न यह उठता है कि इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए वर्णभेद और नादिरशाही नीतिके अवलम्बनका क्या वास्तविक प्रयोजन था? विपक्षियोंको दबानेके लिए नाज़ी दलने जिस मार्गका अवलम्बन किया है, वह सभ्य समाजको शोभा देने योग्य नहीं है और यहूदियोंके सम्बन्धकी नीति तो अन्यायमूलक तथा अत्यधिक आत्मप्रशंसासे अतिरञ्जित है। सदियोंसे कई पीढ़ियों तक जो यहूदी जर्मनीमें रहते आये हैं, उन्हें उस देशमें रहनेका उतना ही हक़ है, जितना कि जर्मनोंको। स्वार्थी और देशद्रोही लोगोंका साथ देनेसे व्यक्तिगत रूपसे कुछ यहूदियोंको दण्ड देना उचित कहा जा सकता है; परन्तु केवल यहूदी होनेसे ही उनपर आग बरसाना बड़े ही अन्यायका काम है। वर्णभेदकी इस मनोवृत्तिका

नाज़ी आन्दोलनपर आक्षेप

समर्थन करनेके लिए आर्यन् और नोर्डिक वंशकी श्रेष्ठताका जो सिद्धान्त खोज निकाला गया है, वह इतिहास और समाज-शास्त्रकी दृष्टिसे उपहासास्पद है। जर्मनी पुरातत्वानुसन्धानका आगार है। वहाँ भी इस बे-सिरपैरके सिद्धान्तके समर्थक पण्डित मिल गये हैं, यह उस देशका दुर्भाग्य है। श्वेतवर्णीयोंकी श्रेष्ठताका यह सिद्धान्त-ज्ञान यदि जर्मनीकी भावी पीढ़ी भी मान ले और उसीका अनुकरण अन्य राष्ट्र भी करने लगें, तो हिन्दुस्थानका वर्णभेद संसारभरमें प्रस्थापित करनेका श्रेय जर्मनीको प्राप्त हो जायगा और निकट भविष्यमें श्वेत-कृष्ण, पीत-ताम्र वर्णवाले मानव-वंशोंमें कलह छिड़े बिना न रहेगा।

भारतके सम्बन्धमें नाज़ियोंकी नीति

यह नहीं कहा जा सकता कि भारतके प्रति नाज़ियोंकी दृष्टि अनुकूल रहेगी। हिटलरने एक भाषणमें कहा था—"पौर्वात्य राष्ट्रोंमें यन्त्र-सामग्री अथवा यान्त्रिक विशेषज्ञ न भेजे जायँ। यदि ऐसा किया जायगा तो यूरोपीय राष्ट्र अपना व्यापार अपने हाथों गँवा देंगे।" जर्मनीका नाज़ी दल चाहता है कि चीन और हिन्दुस्थान सदाके लिए खेतिहर बने रहें और इन देशोंमें उद्योग-धन्धोंकी अभिवृद्धि न हो। यदि उसकी यही नीति रही तो उसमें इंग्लैंड भी बाधा न देगा। अभी जर्मनीको इंग्लैंडकी मित्रताकी आवश्यकता है। उसे सन्तुष्ट रखनेके लिए जर्मनी हिन्दुस्थानके प्रतिकूल अथवा उदासीन रहा करता है। महायुद्धमें हिन्दुस्थानने जर्मनीसे मोर्चा लिया था। यह बात हिटलरके मनमें चुभती होगी। हिन्दुस्थानकी स्वतन्त्रता जर्मनी अथवा इंग्लैण्डपर अवलम्बित न होनेसे आज उस सम्बन्धमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु जर्मनीके उदाहरणसे अपने साधनोंके विषयमें हिन्दुस्थानको कदाचित् कुछ

ज्ञान प्राप्त हो सकता है। हिन्दुस्थानको पाश्चात्य यूरोपीय राष्ट्रोंका सामना करना है और जर्मनीको भी करना है। हिन्दुस्थान अपने संघर्षमें शान्ति, प्रेम, अध्यात्म आदि विषयोंकी दुहाई देता रहा, परन्तु पाश्चात्य बुद्धि उसे समझ नहीं सकी। हिटलरने उसी परिस्थितिमें पाशविक शक्तिकी गर्जना की। उसका परिणाम यह हुआ कि पाश्चात्य राष्ट्र हड़बड़ा कर जाग उठे और हिटलरके शब्दोंका मूल्य बढ़ गया, क्योंकि उसके शब्दोंके साथ बल और पराक्रम है। पाशविक पुरुषार्थकी भाषा ही पाश्चात्य मनोवृत्तिकी समझमें आती है, प्रेमकी भाषा नहीं, उक्त दोनों देशोंके उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध हो गयी है। अब हिन्दुस्थानको यही उचित है कि वह अपनी आत्मिक शक्तिको सुरक्षित रखकर क्षात्रशक्तिका सम्पादन करे।

अग्रतश्चतुरोवेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः ।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ॥

इस सिद्धान्तके अनुसार हिन्दुस्थान यदि आत्मिक सामर्थ्यके साथ-साथ भौतिक सामर्थ्य भी बढ़ाता रहे तो उसकी विशिष्टता बनी रहेगी और संसारके व्यावहारिक सम्बन्धमें भी उसे सुगमता होगी।

अठारहवाँ अध्याय

जर्मन-स्वभावका रहस्य

जर्मन-राष्ट्र और जर्मनीके लोग कुलीन (खानदानी) जान पड़ते हैं। जर्मनीके नगरों तथा जर्मन लोगोंको देखनेसे देखने-

वालेके चित्तमें यही संस्कार होता है कि इस देशकी सभ्यताको स्थिरता प्राप्त हो गयी है। किसी जर्मन नगरमें प्रवेश करते ही वहाँकी सड़कों, सवारियों, मकानात आदिकी भव्यताका भाव मनपर अंकित हो जाता है। लम्बी-चौड़ी, साफ़-सुथरी सड़कोंके बीच-बीचमें बाग़ीचे लगे हैं, जिससे सड़कों और नगरकी शोभा बढ़ गयी है। नयी और पुरानी शिल्पकलासे विभूषित विशाल भवन बने हैं। दूकानोंकी रचना मनोहर है और सर्वत्र आईनेकी तरह स्वच्छता है। जन-समाज भी शान्त और गम्भीर है। यह सब देखकर चित्तको सन्तोष होता है।

जर्मनोंकी कुलीनता

जर्मन नगरोंमें अनेक वर्षोंकी ऐतिहासिक परम्परा देख पड़ती है। हर जगह इतिहासके कुछ न कुछ अवशेष विद्यमान हैं। कहीं पुराने दुर्ग हैं, कहीं पुराने राजप्रासाद हैं, तो कहीं प्रसिद्ध पुरुषों और वीरोंके स्मारक बने हुए हैं। जर्मन लोग नागरिकों और प्रवासियोंका ध्यान उक्त वस्तुओंकी ओर इसलिए आकृष्ट करते हैं कि जर्मनीकी प्राचीन संस्कृतिकी छाप उनके चित्तपर पड़े। केवल संस्कृतिके अवशेष रहनेसे ही क्या होता है, यदि उनका उपयोग इस प्रकार न किया जाय जिससे देश और संस्कृतिके सम्बन्धमें अभिमान उत्पन्न हो। भारतमें भी बहुतसे ऐतिहासिक अवशेष पड़े हैं। परन्तु जर्मनी जिस प्रकार अपनी प्राचीन वस्तु-का इस समय उपयोग कर रहा है, उस प्रकार भारतमें कोई उद्योग नहीं होता।

प्राचीन संस्कृतिकी छाया

शिल्पकलाकी तरह अन्य कलाओंकी भी अभिवृद्धि सदियों-से जर्मनी करता आ रहा है और अब भी उन कलाओंको उत्ते-जना दी जाती है। अमेरिका जैसे देशोंमें यांत्रिक सुधारोंके

कारण हस्तकौशल नामशेष हो गया है। यह बात जर्मनीमें नहीं है। पुरानी कलाओंकी सुरक्षाके साथ उनमें सुधार भी होता रहे, इस विचारसे बड़े-बड़े नगरोंमें कला-शिक्षाके विद्यालय* स्थापित किये गये हैं। जर्मन भाषा प्राचीन है और उसमें प्रगल्भ वाङ्मय निर्माण हुआ है। जर्मन साहित्यमें जगत्प्रसिद्ध कवि, नाटककार, तत्त्ववेत्ता, शास्त्रकार आदिकी रचनाएँ होनेसे उसका प्रभाव संसारभरके साहित्यपर पड़ा है। प्राचीन वाङ्मयके अध्ययनसे पूर्व संस्कृतिका प्रवाह युवकोंके चित्तमें अखण्डरूपसे प्रवाहित होता रहता है। सारांश, भौतिक, आध्यात्मिक और मानसिक दृष्टिसे जर्मन राष्ट्र सुसंस्कृत है और उस संस्कृतिके प्रत्यक्ष बाह्य चिह्न साधारण दृष्टिसे भी देख पड़ते हैं।

अन्य देशोंमें निम्न श्रेणी और उच्च श्रेणीके लोगोंकी सभ्यतामें जितना अधिक अन्तर देख पड़ता है, उतना जर्मनीमें नहीं देख पड़ता। ज्यादा पढ़े लिखे या बिलकुल अपढ़, ऐसे दोनों ही तरहके लोग वहाँ नहीं हैं। अन्य देशोंमें पहरावे और चेहरेसे मज़दूर अलग पहिचाना जाता है। जर्मन मज़दूर एकाएक पहिचाना नहीं जाता। जर्मन श्रमिक शिक्षित, व्यवस्थित और जागरूक होता है। संस्कृति और शिक्षाकी दृष्टिसे जर्मन मज़दूर संसारमें श्रेष्ठ समझा जाता है। मध्यम श्रेणीके लोग भी शिक्षा पानेसे विद्वान् और सदभिरुचिसम्पन्न हो गये हैं। प्रायः सभीको अपनी भाषाके अतिरिक्त दो एक अन्य भाषाएँ आती हैं। इससे जर्मन भाषा अवगत न होने पर भी यात्री अंग्रेजीसे काम चला लेता है।

सुसंस्कृत समाज

संसारके मध्यम श्रेणीके लोगोंमें जो विद्वान् हैं, उनमें जर्मन पण्डितोंकी विद्वत्तामें प्रतिस्पर्धा करनेवाला मिलना कठिन है।

* Kunstgewerb Schule.

भाषा, तत्त्वज्ञान, भौतिक शास्त्र आदि सब क्षेत्रोंमें जर्मन पण्डित अग्रसर हैं। एक साधारण हाई स्कूलमें मुझे एक अध्यापक मिला था। उसे संस्कृत, प्राकृत और बंगाली भाषा अवगत थी और वह कहता था कि उसने मराठीका भी कुछ अध्ययन कर 'नवनीत' (प्राचीन मराठी कवियोंकी कुछ चुनी हुई कविताओंका संग्रह) नामक ग्रन्थ पढ़ा है। मराठीके संबंधमें यूरोपमें कहाँ कौनसे ग्रन्थ लिखे जाते हैं, इसका उसे पता था। उसने यह भी कहा कि पैरिसमें 'ज्यूल्स् ब्लाक' नामक एक फ्रेञ्च पण्डितने 'मराठी भाषाका निर्माण' (फारमेशन डी ला लैंग मराठी) नामक ग्रन्थ लिखा है। उसकी यह जानकारी देखकर मैं चकित हो गया। मेरी भाषाके सम्बन्धमें जो मुझे ज्ञात नहीं था, वह उस जर्मन पण्डितने बता दिया। जर्मन विद्वत्ताका यह एक नमूना है। ऐसे ही पण्डित जर्मनीके स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों और अनुसंधान करनेवाली संस्थाओंमें फैले हुए हैं। जिसने बहुत कुछ लिखा हो और खोज की हो, उस विद्वान् अध्यापकको प्रौढ़ अवस्थामें वहाँ प्रोफेसरकी पदवी दी जाती है। एक शिक्षा-संस्थामें मेरे साथकी स्त्रीने एक व्यक्तिसे मेरा 'प्रोफेसर' कहकर परिचय कराया तो वह आश्चर्यसे पूछने लगा—"आपकी उम्र क्या है? इस उम्रमें आप प्रोफेसर कैसे हो गये? आश्चर्य है!" प्रोफेसर, पण्डित आदि पदवियोंको प्राप्त करनेके लिए जर्मनीमें बौद्धिक तपस्या करनी पड़ती है।

पाण्डित्यका नमूना

जर्मन लोगोंमें तात्त्विक विचार करनेकी अभिरुचि अधिक है। हर एक बातका सूक्ष्म विचार करनेकी उनमें स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। यही कारण है कि अंग्रेजोंको भी शेक्सपियर जैसे कविका परिचय जर्मनोंके द्वारा हुआ। संसारको संस्कृत

वाङ्मयका परिचय जर्मनोंने कराया। तत्त्वज्ञान, वाङ्मय, शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि क्षेत्रोंमें नवीन तत्त्वोंके प्रतिपादन करनेवाले पुरुष जर्मनीमें ही हुए। इस परम्पराके कारण जर्मन मनोवृत्ति बुद्धि-प्रधान बन गयी है।

बुद्धिप्रधान मनोवृत्ति

विद्वत्ता और पाण्डित्यसे जर्मनीको लाभ हुआ और हानि भी। पण्डित लोग अपने-अपने कार्यक्षेत्रमें ऐसे मग्न हो जाते हैं कि उनके प्रिय विषयके अतिरिक्त उन्हें संसारमें कहाँ क्या हो रहा है, इसका कुछ भी पता नहीं रहता। अन्य विषयोंका विचार करनेकी उन्हें फुरसत नहीं और अभिरुचि भी नहीं। जिस आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथलका व्यवहारपर परिणाम होता है, उसके सम्बन्धमें वे उदासीन रहते हैं। जर्मनीमें सन् १९१८ तक एकतन्त्र राजशासन था, लोकतंत्र उदय नहीं हुआ था। सर्वसाधारणमें राजनीतिका चाव न था। यही परम्परा आगे भी बनी रही। यही कारण है कि अधूरे तत्त्वज्ञानके भरोसे हिटलर जैसे नेताने राज्यक्रान्ति कर डाली। जर्मन लोग विशिष्ट विचार और वातावरणमें सञ्चार किया करते हैं। स्वतन्त्र विचार और ओजस्वी क्रियाओंकी उनमें कमी है। उनसे कोई प्रश्न पूछिये, कभी तुरन्त उत्तर न देंगे और "Ach So !" (क्या यह बात ऐसी है !) कहकर सिर खुजलाते हुए सोचमें पड़ जायँगे। जर्मन मनुष्य अपने भरोसेपर आत्म-विश्वाससे किसी प्रश्नका उत्तर कभी न देगा, दो तीन लोगोंसे पूछकर खूब सोच विचार लेगा तब उत्तर देगा। सोचनेकी इस वृत्तिके कारण जर्मनोंका स्वभाव शान्त, गम्भीर और ठण्ढा हो गया है। इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशोंमें जो जोश देखा जाता है, जर्मनीमें उसका अभाव है। हर एक राष्ट्रके स्वभावमें विशिष्टता होती

ठण्ढे मिजाजमें जोशकी कमी

है और उस विशिष्टताकी जड़ें इतिहास एवं राजनीतिमें बहुत दूरतक फैली रहती हैं।

जर्मन लोग व्यवस्थिति (डिसिप्लिन) के उपासक हैं। गत सौ वर्षोंसे जर्मन सम्राटोंने उसका अभ्यास कराया। वह उनके रुधिरसे संलग्न हो गया है। लोकतन्त्रकी हड़बड़ और विशृंखलता उन्हें अच्छी नहीं लगती। वे चाहते हैं कि किसी एककी आज्ञा और पद्धतिसे सब लोग व्यवस्थित और यथा-समय व्यवहारके सब काम किया करें। युद्धके पश्चात् सन् १९१८ से १९३३ तक उन्होंने लोकतन्त्रका प्रयोग कर देखा और फिर एकतन्त्र सत्ता मान्य कर हिटलर जैसे तानाशाहके प्रत्येक हुक्मको "Ja" (हाँ-साहब !) कहकर मंजूर करना आरम्भ किया। जो प्रोफेसर मुझे स्टेशनपर पहुँचाने आया था, उसने कहा—"पहलेकी सोशल डिमाक्रेसीमें सब कुछ अनियन्त्रित और अव्यवस्थित था। अब सब व्यवस्थित, शृंखलाबद्ध और नियमित हो गया है। अब रेलगाड़ियाँ ठीक समयपर आने जाने लगी हैं।" लोकतंत्रकी हड़बड़की अपेक्षा एकतन्त्र तानाशाही जर्मन-मनोवृत्ति अधिक पसन्द करती है।

लोकतंत्रसे अधिनायकतंत्र अच्छा है

स्वच्छताका नमूना देखना हो, तो जर्मनी जाना चाहिये। सड़कोंपर वहाँ कागज़का एक टुकड़ा भी पड़ा हुआ न मिलेगा। ट्रामवे, भूमिके नीचेसे चलनेवाली गाड़ी, होटल, सार्वजनिक उद्यान, पाठशाला आदि स्थानोंमें जैसी स्वच्छता जर्मनीमें देख पड़ती है, वैसी यूरोप या अमेरिकाके किसी देशमें नहीं देख पड़ती। जहाँ लोकतन्त्र है, वहाँ व्यक्ति-स्वातन्त्र्य भी है। परन्तु ऐसे देशोंमें स्वच्छताकी कमी होती है। लोगोंपर हुकूमत करनेसे पुलिस भी डरती

आईनेकी तरह स्वच्छता

है। जर्मन लोगोंने गत तीन-चार पीढ़ियाँ बादशाह कैसरके शासनमें बितायी हैं। उस अवधिमें व्यवस्था, शृङ्खला, स्वच्छता आदिकी अच्छी शिक्षा दी गयी। वही परम्परा समाजमें अबतक बनी हुई है। मध्यवर्ती सत्ता एकतन्त्र भले ही हो, यदि वह देशाभिमानसे प्रेरित हुई हो, तो उससे समाजकी सर्वाङ्गीण उन्नति हो सकती है। जर्मनी इसका उदाहरण है। समाजकी स्वच्छता ही उस समाजकी सभ्यताके नापनेका पैमाना है। समाजकी ज्यों-ज्यों मानसिक उन्नति होती है, त्यों-त्यों वह अपने आसपासकी परिस्थिति भी आरोग्यानुकूल और सुरुचिपूर्ण बना लेता है।

संस्कृतिमूलक राष्ट्राभिमान

जर्मन स्वभावकी विशेषता यह है कि उसमें राष्ट्राभिमान कूट कूट कर भरा हुआ है। वह अभिमान ऊपरी दिखावेभरका या उथला नहीं है। उसकी जड़ें जर्मन संस्कृतिमें बहुत गहरी पैठ गयी हैं। हर एक जर्मनके मनमें अपनी संस्कृतिके सम्बन्धमें आदर और प्रेम है। इतिहास, साहित्य, श्रेष्ठ पुरुष (विभूति), कला और समाजकी विशिष्ट विचारसरणी, इन सब बातोंको मिलाकर 'जर्मन संस्कृति'* शब्द बना है। राष्ट्राभिमानका स्वरूप केवल राजनीतिक ही नहीं, सांस्कृतिक भी है। जब कोई जर्मन युद्ध करता है, तो इसी भावनासे करता है कि मैं अपनी विशाल संस्कृतिका संरक्षण कर रहा हूँ। प्रत्येक जर्मन नागरिकके अन्तःकरणमें राष्ट्राभिमानकी भावना प्रसुप्त अवस्थामें बनी रहती है। उसीके बलपर पराजित जर्मनी केवल पन्द्रह वर्षोंमें ही पुनः अपने पैरोंपर खड़ा होकर अपयशका परिमार्जन

* Denchtum.

करनेके लिए प्रस्तुत हो गया है। जर्मनीकी यात्रासे यदि कुछ शिक्षा मिल सकती है, तो राष्ट्राभिमान की। संस्कृतिके सम्पूर्ण ज्ञानपर जर्मनीका राष्ट्राभिमान आरूढ़ हुआ है। यदि उसका अनुकरण भारतवर्ष करे, तो उसे भी जर्मनी जैसा महत्त्व प्राप्त होगा।

उन्नीसवाँ अध्याय

साम्राज्य-राजधानीका प्रथम दर्शन

भूत और वर्तमान साम्राज्य

संसारके इतिहासमें आजतक कितने ही साम्राज्योंका उदय और अस्त हो चुका है। जब जो साम्राज्य विद्यमान थे, तब उनके अधिपति यही समझ रहे थे कि हमारा साम्राज्य चिरस्थायी है। सिकन्दरने अपने साम्राज्यकी सीमा हिन्दुस्थानतक बढ़ा ली थी। रोमन लोग किसी समय इंग्लैण्डपर शासन करते थे। तुर्क लोगोंका सारे यूरोपपर प्रभाव था और वे सार्वभौम कहलाते थे। ईरानियोंका भी एक समय साम्राज्य था। परन्तु उक्त सब साम्राज्य इस समय इतिहास-शेष हो रहे हैं। उन साम्राज्योंके इतिहासका अवलोकन करनेसे उनके उदय और अस्तकी कारण-मीमांसा की जा सकती है। परन्तु हमारी आँखोंके सामने जो साम्राज्य निर्माण हो रहे हैं और विनष्ट भी हो रहे हैं, उनकी प्रक्रिया सहज ही ध्यानमें नहीं आती। जो इतिहास निर्माण हो रहा है, उसके पर्यवसानकी कल्पना करना कठिन है। आज दिन संसारमें इंग्लैण्ड, फ्रान्स, अमेरिका और जापानके साम्राज्य

फैले हुए हैं। किसी साम्राज्यमें सूर्यका अस्त न होता हो, अथवा किसी साम्राज्यकी बर्फ गल न जाती हो, तो इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कालने किसीको अमरताका पट्टा लिख दिया है। विद्यमान साम्राज्योंकी वर्तमान प्रवृत्तिके गर्भसे ही उनके भविष्य-कालका जन्म होगा। उस भविष्य-कालके सब सूत्र लण्डन, पैरिस, बर्लिन, मास्को, वाशिंगटन और टोकियोमें जो उथल-पुथल हो रही है, उससे सन्नद्ध हो गये हैं। उक्त स्थानोंमें जो कुछ होगा, उसीपर उन साम्राज्योंका भविष्य अवलम्बित है।

लण्डनका स्वरूप

भूगोल पढ़ते समय हमने कण्ठस्थ कर लिया है कि इंग्लैण्डकी राजधानी (लण्डन) टेम्स नदीपर स्थित है। इसके अतिरिक्त पाठ्य-पुस्तकोंमें लण्डनकी रमणीयता और भव्यताका भी बहुत वर्णन हमने पढ़ा है। परन्तु लण्डनका प्रत्यक्ष दर्शन करने पर उसकी किताबी रमणीयता और भव्यता विनष्ट हो जाती है। जिसने बम्बई शहर देखा है, उसकी दृष्टिमें लण्डनमें कोई नवीनता नहीं देख पड़ती। इस कारण उसे निराशा हो जाती है। अमेरिका और यूरोपकी अन्य राजधानियोंको देखकर लण्डनमें आने पर ज्ञात होता है कि हम किसी ग्राममें आ गये हैं। हमारा यह कथन अतिशयोक्तिसे रहित नहीं है; परन्तु यह असन्दिग्ध है कि कल्पना और वस्तुस्थितिमें बहुत ही विरोध है। बम्बईके फोर्टमें घूमने-फिरनेवाले लोग बड़ी-बड़ी सड़कें, संगीन इमारतें, बिजलीके दीपक, ट्राम गाड़ियाँ आदि देखा करते हैं। साधारणतया लण्डनमें इससे अधिक कुछ भी नहीं है। बर्लिन, विएना, पैरिस अथवा न्यूयार्क देखकर जो लोग लण्डन आते हैं, उन्हें वहाँकी इमारतोंकी भव्यता और नगरकी रमणीयता नहीं जँचती,

वहाँके रङ्ग-ढङ्गसे उन्हें ऐसा भ्रम होने लगता है मानो वे ग़लतीसे किसी दूसरे स्थानमें जा पहुँचे हों। बहुत पुराना नगर होनेके कारण लण्डन धीरे-धीरे अव्यवस्थित रूपसे बसता गया है। अन्य देशोंकी राजधानियोंकी रचना पूर्वयोजनाके अनुसार बुद्धि-पूर्वक की गयी है। लण्डनमें यह बात देख नहीं पड़ती। फिर भी अंग्रेज़ लोग लण्डनको 'डियर ओल्ड लण्डन' (प्रिय चिरन्तन लण्डन) कहते हैं। भावनाबद्धता ही इसका कारण है। पूना-बम्बईके निवासी अन्यत्र जाते हैं, तो उनकी अवस्था ज़मीनपर पड़ी हुई मछलीकी तरह हो जाती है। लण्डनके सम्बन्धमें अंग्रेज़ लोगोंकी भी वही बात है।

ग़रीबों-अमीरोंके स्वतन्त्र निवासस्थान

साठ लाखकी आबादीवाले लण्डन नगरमें तरह-तरहकी चीज़ें और परस्पर विरोधी दृश्य देख पड़ते हैं। एक ओर बड़े-बड़े राज-प्रासाद, राज-मार्ग और उद्यान हैं तो दूसरी ओर पूनेकी गलियोंको भी मात करने-वाली गलियाँ और ग़रीबोंके पुराने मकान हैं। शहरकी बस्तीका विभाग अमीरों-ग़रीबोंके विचारसे किया गया है। कुछ भागमें मज़दूरों और ग़रीबोंके निवास-स्थान हैं और कुछ भागमें केवल श्रीमान् सरदारोंके ही भवन हैं। वहाँके ग़रीबोंकी बस्तीमें एक विशेषता है। मकान कितने ही पुराने और घनी बस्तीमें क्यों न हों, बाहरसे उन्हें स्वच्छ रखनेका प्रयत्न प्रबन्धक किया करते हैं। सुबह या दोपहरको घरके सामनेका चबूतरा अथवा आँगन बुहारती हुई स्त्रियाँ देख पड़ती हैं। भारतीय नगरोंकी बस्तियोंका विभाग प्रायः जातिके हिसाब-से किया गया है। अंग्रेज़ी शहरोंकी बस्तियोंका विभाग आर्थिक वर्गभेदके अनुसार हुआ है। वर्णभेदकी छाप भी अधिक स्थानों-में देखी जाती है। हिन्दुस्थानीको इच्छित स्थानमें रहनेके लिए

मकान नहीं मिलता। कुछ निश्चित स्थानोंमें ही वे रह सकते हैं। इस कारण इंग्लैण्डमें रहनेवाले सैकड़ों हिन्दुस्थानी विद्यार्थी एक ही प्रान्तमें बस गये हैं।

गरीबीका चित्र और सुधारोंकी क़ब्र

इंग्लैण्डका साम्राज्य दो-तीन सौ वर्षोंसे बना हुआ है। इससे स्वाभाविक रूपसे ही अनुमान होता है कि संसारसे ढो ढो कर जो सम्पत्ति अंग्रेज़ अपने यहाँ ले आये हैं, वह लण्डनमें देख पड़ेगी और वहाँके लोग सम्पन्न तथा सुखी अवश्य होंगे। बन्दरमें पैर रखते ही वहाँके काम करनेवाले मज़दूरोंके फटे-पुराने कपड़े देखकर उक्त अनुमान मिथ्या सिद्ध हो जाता है। उपनिवेशोंसे अंग्रेज़ोंने जो सम्पत्ति इकट्ठी की है, उसका हिस्सा वहाँके ग़रीबोंको नहीं मिला। वे बेचारे निर्धनता और कङ्गालीकी अवस्थामें ही दिन काट रहे हैं। हिन्दुस्थानमें नौकरी कर इंग्लैण्डमें पेन्शन पानेवाले तथा प्रख्यात व्यापारी व्यक्तिगत रूपसे धनी बन गये हैं और परम्परागत उमराओंमें उनकी गणना होने लगी है; परन्तु उनके धनी होनेसे सर्वसाधारणको लाभ बहुत ही थोड़ा, सो भी अप्रत्यक्ष रूपसे, हुआ है। इस विषयमें हिन्दुस्थान और इंग्लैण्डके लोग समान रूपसे पापके अंशभागी हैं। लण्डनमें श्रमिकोंका जीवन अत्यन्त दीनताका हो रहा है। तीन-चार आदमियोंका कुटुम्ब एक छोटी-सी कोठरीमें रहता है। हर एक आदमीको अलग अलग बिछौना-ओढ़ना नहीं मिलता। स्कूलोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको अभ्यासके लिए एकान्त स्थान मिलना असम्भव है। श्रमिकोंके निवासों (स्लम्ज़) के सुधारका आन्दोलन आजकल प्रिन्स आफ़ वेल्सके तत्वावधानमें हो रहा है; परन्तु घरोंके मालिक उसका प्रायः विरोध करते हैं। यह तो हुई घरकी ग़रीबी। वर्तमान व्यापारिक मन्दीके कारण रास्तेमें

भी दरिद्रताके दृश्य देख पड़ने लगे हैं। 'चायके लिए पैसा दो' कहकर हाथ पसारनेवाले दो-चार भिखारी प्रायः प्रतिदिन मिल ही जाते हैं। कुछ लोग स्वाभिमानका भाव दिखाकर सम्भावित रीतिसे भीख माँगते हैं। बेकार गायक-वादक सड़कोंपर गा-बजाकर याचना करते हैं। चितेरे सड़कोंकी पटरियोंपर अपने चित्र सजाते या फ़र्शपर प्रतिदिन नये चित्र बनाते हैं और अपने चित्रोंका तमाशा कर पैसा-अधेला देनेवाले दाताओंकी मार्ग-प्रतीक्षा किया करते हैं। इस रीतिसे भी उदर-निर्वाह न होनेके कारण एक चित्रकारने उद्विग्न होकर पत्थरपर क़ब्रका चित्र बनाया और उसके नीचे लिख दिया—'टूमस्टोन आफ़ माडर्न सिविलिज़ेशन' (आधुनिक सभ्यताकी क़ब्र)। रावणके जैसा साम्राज्य जिसके अधीन है, एक क्षणमें सहस्रों जीवनोपयोगी वस्तुएँ तैयार करनेवाली यन्त्र-सामग्री जिसके पास है और अच्छे-बुरे तरीकोंसे पृथ्वीकी सम्पत्ति बटोर लाये हुए कुबेर जहाँ रहते हैं, उस देशके हट्टे-कट्टे तथा कुलीन लोगोंपर भीख माँगनेकी नौबत आयी हुई देखकर यही कहना पड़ता है कि उस देशका समाज सात्विक वैभवसे च्युत हो रहा है।

साम्राज्य-निष्ठा और देशाभिमान

इंग्लैण्डमें प्रवेश करते ही आस-पासकी परिस्थिति देखकर विदेशी यात्री समझने लगता है कि मैं किसी विशिष्ट वातावरणमें आ पहुँचा हूँ। वहाँके वातावरणमें साम्राज्यनिष्ठा तथा देशाभिमानकी भावना प्रधान रूपसे देख पड़ती है और उसीका संस्कार नागरिकोंके चित्तमें अज्ञात रूपसे जन्मसे लेकर मरणतक बना रहता है। दूकानोंके विज्ञापनोंमें 'इम्पीरियल, ब्रिटिश और इंग्लिश' लिखा रहता है। इन शब्दोंके बिना विज्ञापनकी पूर्ति नहीं होती। कोई वस्तु खरीदिये, उसपर 'ब्रिटिश

मेक' लिखा हुआ मिलेगा। लण्डनमें स्थान स्थानपर 'बुलवर्थ एण्ड कम्पनी' नामक अमेरिकन कम्पनीके गोदाम हैं। वह कम्पनी जानती है कि स्वदेश-प्रेमी समाजमें अमेरिकन मालकी खपत न होगी। इस कारण इंग्लैण्डमें ही वह माल तैयार कर बेचती है। समाचारपत्रोंमें भी प्रायः इसीका विवरण रहता है कि ब्रिटिश मालकी बिक्री कैसी घटती-बढ़ती है; इस सम्बन्धमें व्यापारियोंकी स्वार्थवृत्ति देखकर तटस्थ व्यक्तिको हँसी आ जाती है। ब्रिटिश थियेटरोंपर अमेरिकन फिल्मोंने अधिकार कर लिया था, परन्तु ब्रिटेनके चित्रपटोंको अमेरिकन थियेटरोंमें स्थान नहीं मिलता था। एक साल इंग्लिश फिल्मोंकी अमेरिकामें खपत बढ़ जानेसे अंग्रेज़ी अखबारोंके आनन्दकी सीमा न रही। जो यह चाहते हैं कि अपने देशमें विदेशी मालकी खपत न हो, उनके देशका माल जब विदेशोंमें खपने लगता है तो उन्हें आनन्द होता है। इस भावनाके मूलमें जो स्वार्थ-वृत्ति है, उसपर दया आ जाती है। जापानी या रूसी माल जब इंग्लैण्डमें आने लगता है, तब अंग्रेज़ लोग चिल्ल-पों मचाने लगते हैं, परन्तु अनेक उपायोंसे अपना माल हिन्दुस्थानके सिर मढ़नेमें उन्हें कुछ भी हिचक नहीं होती। अपने देशमें जो स्वदेशीका समर्थन करते हैं, दूसरे देशकी स्वदेशी प्रवृत्तिका भी उन्हें आदर करना चाहिये। परन्तु इस प्रकारकी उदार मनोवृत्ति व्यापारिक स्वार्थमें देख पड़ना कठिन ही है। अमेरिकाकी मनोवृत्ति इंग्लैण्डके ठीक विपरीत है। इंग्लैडमें 'ब्रिटिश मेड' माल खपता है; किन्तु अमेरिकामें 'इंपोर्टेड' (आयात) मालकी माँग रहती है। बीचमें व्यापारिक मन्दीके कारण 'बाई अमेरिकन' अर्थात् अमेरिकन माल खरीदनेके सम्बन्धमें कुछ दलके लोगोंने आन्दोलन उठाया था; परन्तु सर्वसाधारणने उसका साथ न देकर तिरस्कार ही

किया। समझदार अमेरिकनोंका मत है कि यदि अपना माल विदेशोंमें खपाना हो, तो विदेशोंका माल भी अपने देशमें आने देना चाहिये। औद्योगिक दृष्टिसे जो देश आगे बढ़ गये हैं, उन्हें इसी नीतिका अवलम्बन करना उचित है। परन्तु हिन्दुस्थान अभी यान्त्रिक उद्योग-धन्धोंकी बाल्यावस्थामें है। ऐसे देशके लिए स्वदेशी और 'बाई इण्डियन' की नीतिको ही स्वीकार करना आवश्यक है। इस तत्त्वको इंग्लैण्ड जैसे देश जब अङ्गीकार करते हैं, तब वे वैसे ही उपहासास्पद बनते हैं जैसे साठ वर्षके बुड्ढे छः मासके बच्चेका कनटोपा पहन कर बन सकते हैं। जो हो, अंग्रेज़ोंका स्वदेशप्रेम भारतीयोंके अनुकरण करने योग्य है, इसमें सन्देह नहीं।

बीसवाँ अध्याय

समाजकी विशिष्टता और विरोधी परम्परा

परम्परा राष्ट्रके लिए तारक है या मारक?

हर एक राष्ट्रमें अच्छी-बुरी मिश्र परम्पराएँ हुआ ही करती हैं और हर एक राष्ट्रके लोग उन परम्पराओंको बनाये रखनेके लिए बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करते हैं। परन्तु अपनी परम्पराका आदर कर अन्य समाजोंकी परम्पराओंका उपहास करने और अपना श्रेष्ठत्व सिद्ध करनेकी प्रवृत्ति प्रायः सभी समाजोंमें देख पड़ती है। परम्परा-प्रियताके सम्बन्धमें भारत, इंग्लैण्ड और अमेरिकाकी प्रवृत्ति बड़ी ही मनोरञ्जक है। हिन्दुस्थानके साथ तुलना करते हुए अंग्रेज़ लोग अपने आपको प्रगतिशील और हिन्दुओंको परम्परा-

बद्ध कहा करते हैं, परन्तु अमेरिकनों अथवा अमेरिकामें जो कुछ दिनोंतक रह आये हैं, उन प्रवासियोंसे बातचीत करते समय अभिमानसे कहते हैं कि "हम परम्पराप्रिय अर्थात् कांज़रवेटिव हैं" और परम्पराविहीन अमेरिकनोंको तुच्छ समझते हैं। अंग्रेज़ोंका परम्पराप्रिय भारतीयों तथा नवीन संस्कृतिकी सीढ़ीपर पैर रखनेवाले अमेरिकनोंको तुच्छ कहना केवल आत्मश्लाघा और वस्तु-स्थितिका समर्थन करना है। हर एक नये-पुराने समाजमें अच्छी-बुरी दोनों प्रकारकी परम्पराएँ हुआ करती हैं। उन परम्पराओंके लथेड़नेमें कोई गुण नहीं और न उन्हें छातीसे लगा रखनेमें कोई पुण्य ही है। परम्परा और सम्प्रदाय समाजके साधन हैं। उनका अन्धतासे संरक्षण करना किसीका लक्ष्य न होना चाहिये। प्रत्येक समाजको अपना अन्तिम लक्ष्य स्थिर करना पड़ता है और उसके अनुकूल पुरानी परम्पराको स्थिर रखकर नवीन सम्प्रदाय निर्माण करना पड़ता है। इस प्रकारकी समीक्षक-दृष्टि और विचारपूर्ण नीतिसे यदि कोई समाज अपनी परम्परा बनाये रहे तो अन्य समाजोंको उसके प्रति आदर प्रकट करना चाहिये।

दो विरोधी परम्पराओंकी सुरक्षा

इंग्लैण्डने जिन परम्पराओंकी सुरक्षा की है, उनके दो परस्पर विरोधी लक्ष्य हैं। पूर्ववर्ती आंग्ल राजाओंसे जनताने जो स्वातन्त्र्य और राजनीतिक अधिकार प्राप्त किये हैं, उनका संरक्षण करना पहला लक्ष्य है। अंग्रेज़ोंने संसारपर चढ़ाई कर और आवश्यकतानुसार अपना खून बहाकर जिस साम्राज्यकी स्थापना की है, उसका स्वाभिमानपूर्वक नयी पीढ़ीके द्वारा संरक्षण कराना दूसरा लक्ष्य है। अपनी स्वतन्त्रताको अक्षुण्ण रखना और अन्य समाजों तथा देशोंमें जो साम्राज्य-विस्तार किया है उसको

स्थिर रखना, ये दो परस्पर विरोधी लक्ष्य इंग्लैण्डकी परम्परा-रक्षामें देख पड़ते हैं। एक लक्ष्य प्रशंसनीय और दूसरा निन्दनीय है। लण्डनके प्रधान प्रधान स्थानोंमें स्वतंत्रतापर मर मिटनेवाले अंग्रेज़ वीरोंके स्मारक हैं। पार्लिमेण्ट भवनकी दीवारोंपर ऐसे अनेक दृश्य अङ्कित हैं, जिनके देखनेसे अंग्रेज़ोंको स्मरण हो आता है कि उनके पूर्वजोंने लोक-स्वातन्त्र्यके लिए कितनी वीरता प्रकट की थी और कितना स्वार्थ-त्याग किया था। उन चित्रों-को देखकर अंग्रेज़ युवकोंको अनायास स्वातन्त्र्यकी शिक्षा मिल जाती है। वेस्ट-मिन्स्टर एबे तथा सेण्ट पाल केथिड्रलमें आंग्ल वीरोंके स्मारक और क़ब्रें हैं। उन्हें देखकर जनताके अन्तःकरण-में पूर्व शताब्दीका स्वातन्त्र्य-प्रेम जाग उठता है और स्वातन्त्र्य तथा देशभक्तिकी परम्पराके सम्बन्धमें आदर उत्पन्न होता है। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध पब्लिक स्कूलोंमें पूर्व शताब्दियोंकी परम्परा मूर्तिमान् रूपमें देख पड़ती है और उसी वातावरणमें तरुण पीढ़ीको शिक्षा मिलती है। उक्त स्थानोंमें स्वातन्त्र्य-परम्पराके साथ-साथ साम्राज्य-परम्पराके भी स्मारक बनाये गये हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापनाके बादसे अबतक संग्राममें भाग लेकर जिन्होंने भारतवर्षको अधीन कर अपने अधिकारमें रखा, उन सब अंग्रेज़ोंकी मूर्तियाँ उक्त स्थानोंमें स्थापित की गयी हैं। हमारी स्वतन्त्रताका हरण करनेवाले वारन हेस्टिंग्ज़ जैसे व्यक्तिके प्रति हिन्दुस्थानियोंके मनमें भले ही अनादर हो, किन्तु अंग्रेज़ों-की दृष्टिमें वे आदर्श वीर हैं और इसीसे उनकी मूर्तियाँ तथा स्मारक आदरके साथ राष्ट्रके देवालयोंमें स्थापित किये गये हैं। सेण्ट पीटर्स केथिड्रलका मन्दिर विशुद्ध धर्म-स्थान है; परन्तु वहाँ भी परायी स्वतन्त्रताका अपहरण कर अपना साम्राज्य स्था-पित करनेवाले पुरुषोंके स्मारक बने हैं। इससे यही स्पष्ट होता है

कि राजनीतिज्ञ अंग्रेज़ोंकी मनोवृत्ति राजनीति और साम्राज्य-भावनासे सर्वथा पृथक् शुद्ध अध्यात्मका ज्ञान ग्रहण करनेमें असमर्थ है। स्वातन्त्र्य-भावना और धर्मकी इस विडम्बनाको देखकर तटस्थ दर्शकको हँसी आ जाती है। परन्तु परम्पराके बलपर ही अंग्रेज़ोंने अपनी स्वतन्त्रता स्थायी रखकर साम्राज्यकी रक्षा की है, यह बात न भूलनी चाहिये। उक्त स्मारकों और परम्पराके वातावरणमें जबतक तरुण अंग्रेज़ शिक्षा पा रहे हैं, तबतक यह आशा नहीं की जा सकती कि भावी अनेक शताब्दियोंमें भी कभी अंग्रेज़ लोग स्वेच्छासे साम्राज्य-भावनाको त्याग कर पादाक्रान्त गुलाम राष्ट्रोंको स्वतन्त्रता प्रदान करेंगे।

परम्परा और देशाभिमानकी सुरक्षा

फ्रान्स, जर्मनी, एशिया, अमेरिका, जापान, इटली आदि देशोंमें पाठ्य-पुस्तकों द्वारा व्यवस्थित रूपसे देशभक्तिकी शिक्षा दी जाती है। इंग्लैण्डके लोग इस उलझनमें नहीं पड़ते। सप्ताहमें दो-तीन घण्टे शिक्षा देनेकी अपेक्षा चौबीसों घण्टे विद्यार्थियोंके आस-पास देशभक्तिका वातावरण निर्माण करनेकी ओर अंग्रेज़ोंका अधिक झुकाव है। घरसे बाहर निकलते ही 'ब्रिटिश, इम्पीरियल इंग्लिश' इन शब्दोंका घोष सुनाई देता है। नाटक-सिनेमा जैसे मनोरञ्जनके कार्यक्रमके अन्तमें जबतक 'गाड सेव दि किंग' का गीत न गाया जाय, तबतक उस कार्यक्रमकी पूर्णता नहीं होती। प्रत्येक चित्रपट दिखानेके पहले 'यह आंग्लभाषामें है' यह भावना-प्रधान विज्ञापन प्रकाशित किया जाता है। लण्डनमें एक दो सप्ताह रह जानेसे आंग्ल परम्पराके अनेक चामत्कारिक दृश्य देख पड़ते हैं। सदियोंसे जो भारी और भद्दी पोशाक सैनिक अर्थात् गार्डस् पहनते आये हैं, उसे पहनना लण्डनमें भूषण माना जाता है। उसी पहनावेमें प्रतिदिन सैनिकोंका जलूस

निकलता है और उसे देखनेके लिए सड़ककी दोनों पटरियोंपर लोग कतार बाँधकर खड़े हो जाते हैं। जब लण्डनके मेयरका जलूस निकलता है, तब वह पुराने चालकी चार पहियेवाली चार घोड़ोंकी गाड़ीमें बैठता है और कोचवान सोलहवीं सदीकी पोशाक पहन कर गाड़ी हाँकता है।

बड़े नामका जादू और सर्वसाधारण

अंग्रेज़ नेता जानते हैं कि परम्परा और सम्प्रदायका सर्वसाधारणके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वे जनताके मनोदौर्बल्यका अच्छे-बुरे कामोंमें यथासमय उपयोग भी कर लेते हैं। इंग्लैण्ड अपने आपको डेमाक्रेटिक अर्थात् सामान्य जनतन्त्र कहता है; परन्तु अमीर-उमराओंकी प्रबलता और सत्ता इस देशमें बहुत अधिक मात्रामें पायी जाती है। नेताओंको कोई काम करना हो तो यह नहीं बताया जाता कि वह क्यों किया जाना चाहिये; किन्तु बड़े-बड़े लोगोंके नामोंका उपयोग कर सर्वसाधारणको उस काममें प्रवृत्त कराया जाता है। जैसे कि, देशके अन्त्यजोंकी बस्तियों (स्लम्ज़) का सुधार करनेका जब आन्दोलन खड़ा किया गया, तो प्रिन्स आफ़ वेल्सके द्वारा कहलाया गया कि देशसे 'स्लम्ज़' उठ जाने चाहिये। इसी तरहके वहाँ सब आन्दोलन हुआ करते हैं। किसी लार्ड या अर्लका नाम होनेसे ही आन्दोलन गहरा समझा जाता है। राजघरानेके पुरुषोंको भारतमें बार बार लाकर जिस प्रकार भारतकी प्रजाके चित्त आकृष्ट किये जाते हैं, उसी प्रकार अंग्रेज़ नेता इंग्लैण्डकी जनतापर भी यही जादू चलाते हैं। अज्ञानान्धकारमें रखी हुई जनता सब देशोंमें एकसी ही होती है। उसके अज्ञान और मनोदौर्बल्यका अच्छी-बुरी बातोंमें उपयोग कर लेना नेताओंकी उदात्त अथवा स्वार्थी मनोवृत्तिपर अवलम्बित रहता है।

हिन्दुस्थानकी तरह इंग्लैण्डमें भी जातिभेद है। हिन्दुस्थानमें सैकड़ों जातियाँ हैं, किन्तु इंग्लैण्डमें दो ही जातियाँ हैं।

इंग्लैण्डका जाति-भेद

हिन्दुस्थानका जातिभेद 'जन्मना' माना गया है, किन्तु इंग्लैण्डका जाति-भेद सम्पत्तिपर अवलम्बित है। आर्थिक सिद्धान्तपर स्थापित यह वर्गभेद लण्डनमें सर्वत्र देख पड़ता है। लार्डोंके लिए पार्लिमेण्टका जो मन्दिर बना है, वह सुनहरी सजावटसे सजाया गया है और इंग्लैण्डका सब आर्थिक वैभव वहाँ एकत्रित हुआ है। उसीके पास कामन्सका भवन है। वहाँ सादगी और ग़रीबीकी छटा छायी हुई है। पार्लिमेण्टके लार्डों (उमराओं) और कामन्स (सर्वसाधारण) के मन्दिरोंका यह अन्तर समस्त आंग्ल समाजकी रचनाका निदर्शक है। इंग्लैण्डमें धनी और निर्धनोंकी ही दो जातियाँ हैं। धनिकोंके बालकोंके लिए पृथक् पाठशालाएँ हैं। उनमें निर्धनोंके बालक, बृहस्पति तुल्य बुद्धिमान् होने पर भी, भरती नहीं हो सकते। हमारे शिक्षा-विशेषज्ञ जिन पब्लिक स्कूलोंका अनुकरण करना चाहते हैं, वे स्कूल श्रीमान् सरदारोंके बालकोंके लिए सुरक्षित हैं और वहाँसे उत्तीर्ण हुए बिना बड़े बड़े ओहदोंकी नौकरियाँ नहीं मिलतीं। इंग्लैण्ड और हिन्दुस्थानका शासन करनेवाली नौकरशाही वहीं तैयार होती है। सामान्य ग़रीब विद्यार्थियोंके लिए वहाँ प्रवेश निषिद्ध है। साधारण विद्यार्थियोंके लिए जो हाई-स्कूल हैं उनमेंसे एक हाई-स्कूल देखनेके लिए जब मैं गया, तब एक अध्यापकने मुझसे स्पष्ट ही कहा कि "हम कहा करते हैं, हिन्दुस्थानमें जाति-भेद है; परन्तु इस देशमें भी अन्यायमूलक जाति-भेदका अभाव नहीं है। इस स्कूलका कोई ग़रीब बुद्धिमान् विद्यार्थी आक्सफोर्ड या केम्ब्रिजके विश्वविद्यालयोंसे उत्तीर्ण होने पर भी सिविल सर्विस-

में प्रवेश नहीं पा सकता। ग़रीबोंकी इस पाठशालामें वह पढ़ा है, यही एक बात आजीवन उसकी उन्नतिमें बाधक हो जाती है।" थियेटरों जैसे सार्वजनिक स्थानोंमें भी आर्थिक जाति-भेद दृग्गोचर होता है। ग़रीबोंके लिए आखिरी दर्जेमें दो-तीन सौ स्थान रहते हैं। प्रवेशके लिए दो-तीन घण्टे पहिलेसे ग़रीब लोग थियेटरके द्वारपर कतार बाँधे खड़े रहते हैं। प्रवेश हो जाने पर कुछ लोगोंको कुर्सियाँ मिल जाती हैं, शेष अन्ततक खड़े ही रह जाते हैं। किसीको कुर्सी न मिलने पर वह खाली सीढ़ीपर भी नहीं बैठ सकता। इससे थियेटरकी अमीरीका अपमान होता है, किन्तु खड़े रहनेसे नहीं होता!

हिन्दुस्थानी जाति-भेदकी अपेक्षा अंग्रेजोंका जाति-भेद कुछ नरम है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु वह नरमियत भी मर्यादित है। निम्न स्तरसे उच्च स्तरमें भी वहाँ कुछ व्यक्ति पहुँच सकते हैं; परन्तु ऐसा मौक़ा बहुत कम मिलता है। वरिष्ठ समाजमें शामिल होनेका प्रधान साधन शिक्षा है; परन्तु इंग्लिश शिक्षाप्रणालीमें आर्थिक समाज-रचनाका प्रतिबिम्ब उतरा हुआ होनेसे शिक्षाके द्वारा भी वरिष्ठ समाजमें प्रवेश करना कठिन हो जाता है। कुछ लोग व्यक्तिगत कर्तृत्व-शक्तिके बलपर इस अवस्थामें भी आगे बढ़ते और प्रतिष्ठा तथा धन प्राप्त कर वरिष्ठ समाजमें सम्मिलित हो जाते हैं; परन्तु ऐसे बुद्धिमान् और कर्मण्य लोग जब कनिष्ठ जातिसे वरिष्ठ जातिमें पहुँच जाते हैं, तब उसी वरिष्ठ जातिमें, कुलीन वर्गमें और उमराओंमें विलीन हो जाते हैं। उनकी वरिष्ठता या नेतृत्व-शक्तिसे सर्वसाधारणको कोई लाभ नहीं होता। इसके उदाहरणस्वरूप भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री रैमसे मेकडानलड हैं। उनपर नेताके नाते अब श्रमिकोंका विश्वास नहीं रह

आंग्ल समाज-रचनाकी विशेषता

गया। एक अंग्रेज़ने मुझसे कहा–"मेक्डानल्ड सरदारोंमें शामिल हो गया है। उसके बालबच्चोंका कल्याण हुआ है। अब वह सर्वसाधारणकी चिन्ता क्यों करने लगा?" सारांश, चुने चुनाये, बुद्धिमान् और कर्तृत्ववान् पुरुषोंको उच्च श्रेणीमें लेकर निम्न श्रेणीके लोगोंका उनका नेतृत्व नष्ट कर दिया जाता है। इस चालसे कनिष्ठ श्रेणीके लोगोंका असन्तोष भी बढ़ने नहीं पाता और कनिष्ठ समाज सदा कनिष्ठ ही बना रहता है। आंग्ल समाज-रचनाकी यही विशेषता है। सर्वसाधारणको शिक्षित होनेका अवसर देकर, उनका सुधार कर, उन्हें सुसंस्कृत कर उन्नतावस्थामें पहुँचानेका लक्ष्य अंग्रेज़ी समाज-रचनामें नहीं है। शिक्षा-विस्तारके सम्बन्धमें धनी लोगोंका अब-तक विरोध रहा है और अब भी वह बना हुआ है। उदाहरणाथ, वहाँ अनिवार्य शिक्षाकी वयोमर्यादा चौदह सालकी है। कामन्स सभा उसे बढ़ाकर पन्द्रह वर्षकी करना चाहती थी, परन्तु उसका प्रस्ताव लार्डोंकी सभाने नामंजूर कर दिया; क्योंकि उस प्रस्तावके पास होनेसे ग़रीबोंके बालकोंको लाभ होनेवाला था। धनिकोंके बालकोंकी शिक्षाका उत्तम प्रबन्ध है ही। उक्त प्रस्तावसे उनका कोई लाभ होनेकी सम्भावना न थी, उलटे कुछ आर्थिक हानि ही होती।

किसी भी समाज-रचनामें वर्गीकरणके बिना काम नहीं चलता। वर्गहीन-समाजकी कल्पना केवल स्वप्न-साध्य है। परन्तु

इष्ट और अनिष्ट वर्गभेद

महत्त्वका प्रश्न यह है कि वर्गीकरण किस सिद्धान्तपर हुआ है और उसमें लचीलापन कहाँ तक है? भारतीय समाजका विभाग 'जन्मना' हुआ है, इंग्लैण्डका समाज आर्थिक सिद्धान्तपर विभक्त हुआ है और रूस अपने नवीन समाजको 'कर्मणा' विभक्त कर

रहा है। तीनों समाज केवल जन्म, सम्पत्ति अथवा कर्मको प्रधानता देकर उन्नत नहीं हो सकते। जो समाज वरिष्ठ माना गया हो, उसमें चारित्र्य, शील, स्वार्थत्याग और समाजके कल्याणकी भावना होनी चाहिये। नहीं तो वह कनिष्ठ वर्गका शोषण कर स्वार्थ साधता रहेगा। चरित्रवान् और लोक-कल्याण-क्षम समाज यदि सदा वरिष्ठ माना जाने लगे तो वह समाजके कल्याणकी दृष्टिसे अपने नेतृत्वका उपयोग कर सकेगा। और भी एक बात होनी चाहिये। समाज-रचनामें ऐसा लचीलापन होना चाहिये, जिससे हर एक व्यक्तिको वर्ग-संक्रमणमें सुभीता हो। अभेद्य वर्गभेदकी रचनासे जकड़े हुए समाजमें व्यक्तिको अपनी उन्नति करनेका सुभीता नहीं होता। जबतक ऐसा आदर्श समाज निर्माण नहीं होता, जिसमें चरित्रवान् वर्गकी वरिष्ठता और व्यक्ति-विकासके अनुकूल सरलताकी व्यवस्था हुई हो, तबतक अंग्रेज़ों और भारतीयोंके लिए परस्परकी समाज-पद्धतिको दोष देना वृथा है। यदि दोनों अपनी अपनी समाज-रचनाके लक्ष्योंकी परीक्षा कर सुधारोंकी ओर अग्रसर होनेमें अपना समय लगावें तो दोनोंका और कनिष्ठ माने गये बहुजन-समाजका बहुत कल्याण होगा।

इक्कीसवाँ अध्याय

इंग्लैण्डमें 'इण्डिया'

विदेशोंमें कहीं भी 'इण्डिया' शब्दके देखनेसे भारतीयोंको आनन्द होता है, क्योंकि साधारणतः सर्वत्र इण्डियाका

उल्लेख गौरवपूर्ण रीतिसे किया जाता है। परन्तु इण्डियाका सूचितार्थ जैसा अन्य देशोंमें होता है, वैसा इंग्लैण्डमें नहीं होता। जर्मनी, अमेरिका, फ्रान्स, आदि देशोंमें 'इण्डिया' शब्दके उच्चारणके साथ ही हिन्दुओंकी संस्कृति, सभ्यता, उनकी कलाएँ, धर्म, गूढ़वाद आदि बातें सूचित होती हैं; परन्तु इंग्लैण्डमें 'इण्डिया' शब्दका उच्चारण करते ही वहाँके लोगोंके मनमें साम्राज्यका उपनिवेश, सिविल सर्विसेज़, गोल्फ, मिशन्स, व्यापार, आमोद-प्रमोद आदिकी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। भारतीयों और उनकी संस्कृतिके सम्बन्धमें कोई विचार ही उनके चित्तमें नहीं उठता। दुष्यन्तको जो चन्द्रमा काव्यमय देख पड़ता है, वही चन्द्रमा विदूषकको मोदक (लड्डू) के समान देख पड़ता है। चन्द्रमा-सम्बन्धी दोनोंके सूचितार्थ भिन्न हैं। विदेशोंमें 'इण्डिया' शब्दकी भी यही अवस्था है। लण्डनकी सड़कोंपर एक विज्ञापनमें 'इण्डिया' का उल्लेख इस प्रकार किया गया था—"मेक् इण्डियाज् मिलियन्स यूअर बायर्स" अर्थात् भारतके करोड़ों खरीदारोंको बटोरिये। सारांश, हिन्दुस्थान इंग्लैण्डके मालकी खपत करनेका एक बाज़ार है। वहाँ जाकर अपना माल बेचने, पूँजी लगाकर उद्योग-धन्धोंके कारखाने खोलने, वहाँकी सम्पत्ति लूटने, विलायती पूँजीसे स्थापित कम्पनियोंके हिस्से (शेअर) खरीदने, सिविल-सर्विस या मिलिटरीमें अपने युवकोंको भरती करने आदिकी आर्थिक प्रवृत्तिकी भावनाएँ अंग्रेज़ोंके मनमें 'इण्डिया' शब्दसे जाग्रत होती हैं। अंग्रेज़ोंको इण्डिया शब्दसे 'अर्थ' का ही मुख्यतः अर्थबोध होता है। वेस्ट-मिन्स्टर-एबेमें महायुद्धका एक स्मारक बना है। उसमें उपनिवेशोंका उल्लेख किया गया है और शीर्ष-स्थानमें हिन्दुस्थान-

'इण्डिया' शब्दसे सूचित होनेवाले दो अर्थ

का नाम लिखा है। यह बात हिन्दुस्थानके लिए गौरवास्पद है अथवा इससे 'हिन्दुस्थान हमारे साम्राज्यमें है', इस भावनाका गौरव है, इसका निर्णय दर्शक और पाठक स्वयं ही कर लें।

सर्वसाधारण और शिक्षित लोगोंकी भावना

हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें वहाँ सर्वसाधारणका जो मत है उसका मुख्य आधार दैनिक समाचारपत्र हैं। जो लोग 'टाइम्स' और 'मार्निङ्ग पोस्ट' पढ़ते हैं, वे साम्राज्यवादी हैं। अन्य लोग तटस्थ या उदासीन वृत्तिके हैं। स्वतन्त्र वाचन अथवा अभ्याससे जिन्होंने अपना मत निश्चित किया हो, ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं। एक चमारसे हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें चर्चा छिड़ी तो वह कहने लगा—"हिन्दुस्थानियोंको अंग्रेज़ी राज्यकी अपेक्षा है। यहाँ आपके देशके बहुतसे राजा-महाराजा आये थे, उनका भी यही मत था कि अंग्रेज़ी राज्य अच्छा है। हमने हिन्दुस्थान-को जीत लिया है, उसे अकारण हाथसे क्यों जाने दें?" इसी तरह एक फल बेचनेवालेने कहा—"यदि आज हम (अंग्रेज़) हिन्दुस्थानको छोड़ दें तो वहाँ हमारे स्थानमें रूस, जापान, जर्मनी या अन्य कोई राष्ट्र अधिकार जमा लेगा! फिर हम ही क्या बुरे हैं? भारत आत्मरक्षा नहीं कर सकता, इस कारण हमें उसकी रक्षा करनी पड़ती है। हमारा राज्य शान्ति-पूर्ण होनेसे ही सब लोग आत्मरक्षाके लिए हमारी शरणमें आया करते हैं।" यह वहाँके सर्वसाधारण लोगोंकी भावना है। शिक्षित लोगोंकी भावनाका भी उदाहरण देखिये। आक्सफोर्डके एक ग्रेज्युएटने बातचीतमें कहा—"यदि हम लोग हिन्दुस्थानसे चल दें तो हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेकी छाती-पर चढ़ बैठेंगे और सदा आन्तरिक कलह छिड़ते रहेंगे।" सारांश, समाचारपत्रों, पादरियों और हिन्दुस्थान तथा अन्य

उपनिवेशोंमें सिविल अथवा मिलिटरी सर्विस करके स्वदेश लौटे हुए लोगोंके द्वारा जो कुछ ज्ञात हुआ है, उसीके आधारपर हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें वहाँका लोकमत बन गया है। एकाध बार यदि हिन्दुस्थानके अनुकूल लोकमत देख पड़े तो उसे आश्चर्यकी ही बात समझना चाहिये। दो सौ वर्षोंसे हिन्दुस्थानमें अंग्रेज़ोंका राज्य है; परन्तु हिन्दुस्थानकी प्रतिशत नब्बे जनता निरक्षर तथा निर्धन है और यहाँके सब उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये हैं, इसका इंग्लैण्ड-निवासियोंको पता भी नहीं है। उन्हें हिन्दुस्थानका जो कुछ अधूरा सा परिचय प्राप्त हो गया है, उसीको पर्याप्त समझते हैं। इंग्लैण्डमें तीन हज़ार हिन्दुस्थानी विद्यार्थी रहते हैं। उनमेंसे कदाचित् ही किसीको किसी सभामें हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें भाषण करनेका अवसर मिलता हो। अमेरिकामें जो हिन्दुस्थानी विद्यार्थी हैं, उनमेंसे कोई भी कमसे कम चार-पाँच सभाओंमें हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें भाषण किये बिना स्वदेश नहीं लौटता। इंग्लैण्डमें रहनेवाले तीन हज़ार हिन्दुस्थानी विद्यार्थियोंका वहाँकी जनताको भारतीय परिस्थितिके समझानेमें बहुत कुछ उपयोग हो सकता है। परन्तु अंग्रेज़ोंकी उदासीनता और हिन्दुस्थानी विद्यार्थियोंकी संकुचित वृत्तिके कारण वहाँकी जनताके मतपरिवर्तनके कार्यमें इंग्लैण्डमें रहकर भी हिन्दुस्थानी विद्यार्थियोंका कुछ भी उपयोग नहीं हो रहा है।

लण्डनकी विशिष्ट परिस्थितिके कारण हिन्दुस्थानी विद्यार्थी न तो आंग्ल समाजमें रह सकते, न उनके साथ मेल-जोल ही बढ़ा सकते हैं। हिन्दुस्थानी विद्यार्थियोंको कुलीनोंके घरों अथवा बस्तियोंमें रहनेके लिए स्थान नहीं मिलता। किसी घरकी मालकिनके पास यदि कोई हिन्दुस्थानी विद्यार्थी स्थान माँगने जाता है,

लण्डनकी हिन्दुस्थानी बस्तियाँ

तो वह उसे स्पष्ट 'ना' नहीं कहती और बीस शिलिङ्गके बदले बीस गिन्नी किराया बताकर ज़ोरसे दरवाज़ा बन्द कर लेती है। यदि साहस कर कोई घरवाला किसी हिन्दुस्थानीको एकाध कमरा दे भी दे तो वहाँके अन्य किरायेदार उस घरको छोड़ देते हैं और घरका भाड़ा घट जाता है। उस अवस्थामें वहाँ हिन्दुस्थानी विद्यार्थी बस जाते हैं। अंग्रेज़ोंकी इस मनोवृत्तिके कारण हिन्दुस्थानी विद्यार्थियोंकी बस्ती एक विशेष भागमें बस गयी है। लण्डनके उस भागको अंग्रेज़ लोग उपहाससे 'इंडियन ज़ू' (हिन्दुस्थानी अजायबघर) कहा करते हैं। इसीसे वहाँ महीनों रहकर भी हिन्दुस्थानी विद्यार्थी अंग्रेज़ोंके समान दर्जेपर नहीं पहुँच पाता, न स्थानीय लोगोंसे उसका आत्मीय सम्बन्ध ही स्थापित हो सकता है। वहाँके लोगोंसे उसका जो कुछ परिचय होता है, कालेजों और सार्वजनिक संस्थाओंमें ही होता है। इसके कुछ अपवाद भी हो सकते हैं; किन्तु इससे सामान्य सिद्धान्तमें कोई बाधा नहीं होती।

अस्पृश्यताका रोग

हर एक समाजके कुछ अस्पृश्य भाग हुआ करते हैं। हिन्दुस्थानमें कुछ अछूत जातियाँ हैं। उन जैसी अस्पृश्यता इस बीसवीं सदीमें उन्नतिका दम भरनेवाले राष्ट्रोंमें देख पड़े तो इसे दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। अमेरिकामें नीग्रो लोग अस्पृश्य हैं, इंग्लैण्डमें हिन्दुस्थानी अस्पृश्य हैं और अब जर्मनीमें यहूदी लोग अस्पृश्य माने जा रहे हैं। यह सब देखकर अनुमान होता है कि इस समय हिन्दुस्थानमें जो छोटे रूपमें स्पृश्यास्पृश्यका झगड़ा छिड़ा है, समय पाकर वह विशाल रूप धारण कर संसारके राजनीतिक क्षेत्रमें भी फैल जायगा। अबतकके सब महायुद्ध राज्योंकी सीमाएँ बढ़ानेके लिए हुए हैं। अब जो महायुद्ध होगा, वह कदाचित् गोरों-

कालोंकी श्रेष्ठता-कनिष्ठताका निपटारा करनेके लिए हो। अमेरिकन, इंग्लिश और जर्मन लोग सभी पौर्वात्योंको 'काला आदमी' समझते हैं और उन्होंने स्थिर कर लिया है कि काले आदमी उनके साथ रहने योग्य नहीं हैं। जबतक चीनी और भारतीय दुर्बल हैं और आफ्रिकन बाल्यावस्थामें हैं, तभीतक वे इस सामाजिक अपमानको सहन करेंगे। परन्तु उक्त समाज जब बलवान् हो जायँगे तब गोरों-कालोंका निपटारा ग्रन्थों अथवा क़ानूनोंके क्षेत्रमें ही सीमित न होकर समरक्षेत्रमें ही होगा। वर्तमान परिस्थितिका विचार करते हुए वह समय अभी दूर जान पड़ता है।

भारतके लिए एक विचारणीय बात

इंग्लैण्डकी सामान्य परिस्थिति और वातावरणको ध्यानमें रखकर स्वतन्त्रताके लिए प्रयत्न करनेवाले भारतवर्षको एक महत्त्वपूर्ण बात जान लेनी चाहिये। इंग्लैण्डमें ऐसे अनेक वीरोंके स्मारक स्थान-स्थानपर स्थापित किये गये हैं, जिन्होंने साम्राज्य-स्थापन करनेके लिए विदेशोंमें रक्त बहाकर प्राण विसर्जन किये हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके समयसे लेकर अबतक, क्लाइवसे लेकर जनरल डायरतक साम्राज्यके लिए भारतमें कार्य करनेवाले जितने न्यूनाधिक महत्त्वके लोग हुए हैं, उन सबकी क़ब्रें और स्मारक इंग्लैण्डमें बने हैं और उनके सम्बन्धी वहीं रहते हैं। उनका स्मरण जबतक अंग्रेज़ोंके हृदयमें बना हुआ है, तबतक हिन्दुस्थान-सम्बन्धी उनकी भावनाओंमें विशेष परिवर्त्तन होना सम्भव नहीं प्रतीत होता। साम्राज्य स्थापित करनेके लिए इंग्लैण्डने जितना स्वार्थत्याग किया है, उतना त्याग किये बिना हिन्दुस्थानको स्वतन्त्रता प्राप्त होना असम्भव है। नौकरियोंके सम्बन्धसे कितने ही अंग्रेज़ोंके स्वार्थ हिन्दुस्थानके साथ निग-

डित हुए हैं, कितने ही अंग्रेज़ोंके बाल-बच्चे सिविल, मेडिकल और मिलिटरी सर्विसकी तैयारी कर रहे हैं, कितने ही अंग्रेज़ व्यापारियोंकी पूँजी हिन्दुस्थानमें फँसी हुई है। इस प्रकार हज़ारों अंग्रेज़ोंका जीवन हिन्दुस्थानपर अवलम्बित है और उससे चार पाँच गुने लोगोंका जीवन उक्त लोगोंपर अवलम्बित है। ऐसी अवस्थामें कोई अंग्रेज़ कितना ही उदार क्यों न हो, अपने जीवन-निर्वाहके आर्थिक साधनपर पानी फेरनेके लिए कदापि प्रस्तुत नहीं हो सकता। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर दूसरोंका भरोसा कहाँतक करना चाहिये और अपनी सामर्थ्य-पर कितना अवलम्बित रहना चाहिये, इसका निर्णय कर भारत-को आगे बढ़ना उचित है।

बाईसवाँ अध्याय

अंग्रेज़ोंके स्वभावकी विशेषता

हिन्दुस्थान अथवा आफ्रिकामें जो अंग्रेज़ नौकरी कर आते हैं, वे पौर्वात्योंको हीन तथा अपनेको श्रेष्ठ समझने लगते हैं और वह श्रेष्ठता स्थायी रखना चाहते हैं। हिन्दुस्थानी लोग तो इतना ही चाहते हैं कि जिन अंग्रेज़ोंने हिन्दुस्थानकी नौकरी की हो, हिन्दुस्थानका अन्न खाया हो, हिन्दुस्थानके धनसे जायदाद बना ली हो, वे इंग्लैण्ड लौट जाने पर हिन्दुस्थानके प्रति कृतज्ञ रहें और उनके देशमें जो हिन्दुस्थानी जाय, उसके साथ सहानु-भूतिका बरताव रखकर उसकी हर तरहसे सहायता करें। परन्तु

अंग्रेज़ोंके स्वभावके दो पहलू

इंग्लैण्डमें जो हिन्दुस्थानी विद्यार्थी हैं, उनका अनुभव तो यही बताता है कि उक्त आशाकी पूर्त्ति करनेवाला एक भी प्रमाण वहाँ नहीं मिलता। संभव है कि हिन्दुस्थानके अन्नका ही यह गुण हो। विदेशोंमें लगभग पाँच हज़ार भारतीय विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। उनमेंसे चार साढ़े-चार हज़ार विद्यार्थी तो ग्रेट ब्रिटेनमें ही हैं। अमेरिकामें लगभग तीन सौ विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिनमेंसे सैकड़े पीछे ५०-६० विद्यार्थियोंको कालेजोंसे छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं और बाक़ी विद्यार्थी असमर्थ अथवा अर्द्ध-असमर्थ विद्यार्थियोंको मिलनेवाली सहायताके भरोसे शिक्षा पाते हैं। जर्मनीमें भी प्रतिवर्ष कुछ ऐसे विद्यार्थी आते हैं, जिन्हें छात्रवृत्तियाँ मिला करती हैं। परन्तु इस प्रकारकी सहायता जिन्हें मिलती हो, ऐसे हिन्दुस्थानी विद्यार्थियोंकी इंग्लैण्डमें इतनी अल्प संख्या है कि वे एक दो अँगुलियोंपर ही गिनाये जा सकते हैं। जो इंग्लैण्ड हिन्दुस्थानकी सम्पत्तिसे ही श्रीमान् हुआ है, उसे हिन्दुस्थानी विद्यार्थियोंकी इससे बहुत अधिक सहायता करनी चाहिये।

इंग्लैण्डमें काले-गोरेकी भावना बहुत प्रबल है और किसी न किसी बहाने वह जाग्रत रखी जाती है। हालमें ही आफ्रिकाके किसी काले रईसने नैतिक अपराधके कारण एक गोरे अधिकारीको अवैध रीतिसे पीटा था। उसका जो समाचार इंग्लैण्डके समाचारपत्रोंने छापा था, उसमें वर्णद्वेषकी मात्रा भरपूर थी। समाचारपर शीर्षक था—'ह्वाइटमैन फ़्लाग्ड' अर्थात् गोरे आदमीको कोड़े लगाये गये। इस प्रकार गोरे रङ्गका महत्त्व बताकर अपराधीके अपराधको गौण बना दिया गया।

सारांश, जो अंग्रेज़ उपनिवेशोंमें रह आये हैं, वे अपने साम्राज्यके गौरवको अच्छी तरह जानते हैं; क्योंकि उपनिवेशों-

के लोगोंपर साम्राज्यकी ओरसे वे हुकूमत कर चुके हैं। गोरोंके ऊँचे दर्जेका उन्हें सदा ध्यान रहता है और उस दर्जेको स्थिर रखकर काले लोगोंपर हुकूमत करने तथा उनपर प्रभाव जमाये रहनेका भाव उनमें बना रहता है। इसीसे हिन्दुस्थानियोंके साथ वे खुले दिलसे नहीं मिलते, उनका आदर नहीं करते और उनके साथ ऐसा व्यवहार भी नहीं करते, जो स्वाभाविक मानवी मनोवृत्तिके लिए अपेक्षित हो। उनमें इन गुणोंकी कमी है।

उक्त राजनीतिक तथा वर्ण-सम्बन्धी बातोंको छोड़कर अन्य सब बातोंमें अंग्रेज़ सभ्य हैं और आत्मीयता करना जानते हैं। लण्डनमें यदि कोई रास्ता भूल जाय और किसीसे पूछे तो वह अपना दो मिनट ख़र्च कर उसे रास्ता बता देगा, फिर अपने काममें लग जायगा। यह वृत्ति लण्डनके लोगोंमें ही नहीं, यूरोपके सब लोगोंमें देख पड़ती है। अंग्रेज़ोंका बरताव शिष्टाचारकी जातिगत कल्पनाओंके अनुसार होता है। दिखावेकी सभ्यताका व्यवहार वे पसन्द करते हैं। इस कारण उनका परिचय होनेमें विलम्ब लगता है। बहुत मेलजोल हो जाने पर ही वे किसीसे आत्मीयता करते हैं। अमेरिकनोंका स्वभाव इसके ठीक विपरीत है। अमेरिकन मनुष्य मिलते ही आत्मीयतापूर्वक हाथ मिलाता है, अपना नाव-गाँव बताता है और कोरे शिष्टाचारोंकी कल्पनामें न फँसकर तुरन्त मित्रता कर लेता है। अमेरिकन मित्र पहली भेंट होते ही भोजन या चाय-पानीका निमन्त्रण दे देता है, किन्तु अंग्रेज़ नवपरिचित व्यक्तिके घर जाकर जबतक उसका पूरा परिचय प्राप्त नहीं कर लेता तबतक उसे अपने घर निमन्त्रित नहीं करता। अपने घर किसीको एक बार निमन्त्रित कर लेने पर वह उसके साथ अपने कुटुम्बियों जैसा व्यवहार करने लगता है।

अंग्रेज़ोंका बरताव

हिन्दुस्थानके नगरोंमें पड़ोसियोंका जैसा निकट सम्बन्ध देखा जाता है, वैसा इंग्लैण्डमें नहीं देख पड़ता। अंग्रेज़ी कुटुम्ब-के लोग रातमें ब्यालू कर घरमें ही बैठ रहेंगे अथवा मनोरञ्जनके लिए थियेटरमें जायँगे। बिना बुलाये वे पड़ोसीके घर नहीं जाते और न यही पूछते हैं कि "कहिये क्या हाल है? अमुककी तबीयत कैसी है? आज तरकारी क्या बनी थी?" इत्यादि। हिन्दुस्थान-में यदि कोई स्त्री घरमें अकेली हो और उसे कहीं बाहर जाना हो, तो वह अपना बच्चा पड़ोसिनको सौंप कर चली जाती है। यह पड़ोसी-धर्म इंग्लैडमें नहीं देख पड़ता। अंग्रेज़ी मनोवृत्ति विशेष व्यक्तिनिष्ठ है।

घरका रहन-सहन और कुटुम्ब

मध्यम श्रेणीके अंग्रेज़ गृहस्थके घरमें पाँच-छः कमरे होते हैं और रेडियो, पियानो तथा कहीं-कहीं टेलीफोन भी होता है। अधिकांश लोग सप्ताहमें कमसे कम एक बार सिनेमा या नाटक देखने अथवा सङ्गीत सुनने जाते हैं। मनकी संस्कृति-वृद्धिके लिए इन बातोंको वे आवश्यक समझते हैं। शिक्षाविभाग-की रिपोर्टोंसे पता चलता है कि इंग्लैण्डके लोगोंकी जनन-संख्या घट रही है। लण्डनके निकटके एक गाँवमें देखा गया कि वहाँके पाँच-छः कुटुम्बोंमेंसे केवल एक ही कुटुम्बमें दो बच्चे खेल रहे थे। अन्य कुटुम्बोंके लोगोंने कारण-विशेषसे सन्तति-निग्रह कर लिया था। यदि जापान इस प्रवृत्तिका अनुकरण कर ले, तो उसे बढ़ती हुई लोकसंख्याके कारण पड़ोसी राष्ट्रोंसे युद्ध करनेकी बारी न आवेगी।

अंग्रेज़ोंमें आत्मविश्वास है। कभी कभी आत्मप्रशंसा और गर्वमें भी उसका रूपान्तर हो जाता है। उनकी भावना है कि अंग्रेज़ोंकी राज्य-प्रणाली संसारमें सर्वोत्कृष्ट है, अंग्रेज़ी

शिक्षा-प्रणाली तथा स्कूलोंका दर्जा अन्य राष्ट्रोंसे बढ़कर है और अंग्रेज़ी संस्कृति सर्वोत्तम है। अपनी सभी बातें सर्वश्रेष्ठ मान लेने पर दूसरोंकी सब बातें निकृष्ट हो जाती हैं। अमेरिकनोंसे अंग्रेज़ोंके सम्बन्धमें आदरके उद्गार सुने गये हैं, किन्तु अंग्रेज़ोंसे अमेरिकनोंके सम्बन्धमें गौरवसूचक एक शब्द भी नहीं सुना गया। अंग्रेज़ोंको अपने शीलका बड़ा घमण्ड होता है। अन्य राष्ट्रोंकी शिक्षा-प्रणालीमें भी चरित्र-शिक्षाकी गुञ्जाइश है, इसकी वे कल्पना तक नहीं कर सकते। सारांश, अपनी ही सब बातें श्रेष्ठ हैं, यह भावना स्वाभिमानकी दृष्टिसे ठीक होने पर भी यदि समीक्षा-बुद्धि और परसहिष्णुताका उसके साथ मेल न हो, तो वही भावना आत्मप्रशंसामें परिणत हो जाती है और उससे आत्म-सन्तुष्टि तथा अहंभावकी वृद्धि होकर समाजकी विकास-क्षमता नष्ट हो जाती है।

अंग्रेज अपनी सभी बातें श्रेष्ठ समझते हैं

सामान्यतः अंग्रेजोंका स्वभाव संस्कृतिप्रिय होता है। रविवार अथवा छुट्टीके दिन चित्र-कलाके प्रदर्शन या म्यूज़ियम देखनेके लिए लोग जाया करते हैं। उच्च श्रेणीके नाटक अथवा चित्रपट देखनेके लिए थियेटरोंमें बड़ी भीड़ होती है और थियेटरमें प्रवेश करनेसे पहले ठण्ढमें लोग घण्टों खड़े रह जाते हैं। नगरके जिस भागमें थियेटर होते हैं, वहाँ शनिवार और रविवारको इतनी अधिक भीड़ होती है कि राहगीरोंको चलनेके लिए रास्ता नहीं मिलता। लोग सप्ताहके छः दिन उत्साहसे काम करते और अन्तिम दिन मनोरञ्जन अथवा विश्राममें व्यतीत करते हैं।

संस्कृतिकी अभिरुचि

तेईसवाँ अध्याय

इटलीका नूतन जन्म

इटली पाश्चात्योंका तीर्थस्थान है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रान्स जर्मनी आदि सब देशोंसे बहुसंख्यक लोग इटलीमें रोम, मिलान, वेनिस, फ्लारेन्स, नेपल्स आदि नगर देखनेके लिए ग्रीष्मकालमें आते हैं। नासिक, पण्ढरपुर, काशी आदि तीर्थोंमें यात्रियोंका सुभीता कर जीवन-निर्वाह करनेवालों (पण्डों-पुरोहितों) का जैसा बड़ा समाज है, वैसा इटलीके कुछ नगरोंमें भी है। सभी यात्री धार्मिक कारणसे ही इटलीमें नहीं आते, फिर भी बिना 'पापा' (पोप) का दर्शन किये वे नहीं लौटते। रोम कैथोलिक ईसाइयोंके धर्मगुरुका स्थान है। इस कारण संसारके असली और धर्मान्तर करके बने हुए ईसाई आचार्यके दर्शनके लिए रोम जाते हैं। परन्तु धर्मक्षेत्रकी अपेक्षा कला और ऐतिहासिक क्षेत्रके कारण ही इटलीकी विशेष प्रसिद्धि है। उत्कृष्ट चित्रकला, दिव्य सङ्गीत, संसार-प्रसिद्ध मूर्तिशिल्प-कला (स्कलपचर) और इतिहासप्रसिद्ध भवनों तथा उनके भग्नावशेषोंकी इटलीमें इतनी विपुलता है कि वहाँ कलाप्रेमियों एवं जिज्ञासुओंकी सदा भरमार रहती है।

पाश्चात्योंकी काशी

फ्लॉरेन्सकी जगत्प्रसिद्ध आर्ट गैलरीमें बहुत पुराने रङ्गीन चित्रों (पेंटिंग्स) के नमूने हैं। कला-विशेषज्ञ उन्हें देखनेके लिए वहाँ जाया करते हैं। मिलानमें उत्कृष्ट शिल्प-कला देख पड़ती है। वेनिस और रोम ऐतिहासिक अवशेषोंकी दृष्टिसे प्रसिद्ध हैं। नेपल्स-के निकटका पाम्पी नगर दो सहस्र वर्ष पूर्व ज्वालामुखीकी

कला-प्रेमियोंका यात्रा-स्थान

राखके नीचे दब गया था। अब वह साफ हो गया है। वहाँकी पुरानी संस्कृति और समाजपद्धति जाननेके लिए अब तर्कका आश्रय लेनेकी आवश्यकता नहीं रह गयी है। वह वहाँ प्रत्यक्ष देख पड़ती है। रोमकी तुलना दिल्लीसे की जा सकती है। दिल्लीके आस-पास कई मीलोंकी दूरीपर पुरानी सात राजधानियोंके अवशेष पाये जाते हैं। इसी तरह रोमके आस-पास भी दो-ढाई हज़ार वर्ष पूर्वके ऐतिहासिक अवशेष विद्यमान हैं। समस्त यूरोपपर जब रोमन लोगोंका अधिकार था, उस समयके साम्राज्यसूचक अवशेष अबतक रोमके आस-पास देख पड़ते हैं।

उत्साहवर्धक इतिहास

इस प्रकार ऐतिहासिक परम्परासे वर्त्तमान इटलीका जन्म हुआ है। यह कहावत भले ही यथार्थ न मानी जाय कि "जिस राष्ट्रका इतिहास नहीं उसका भविष्य भी उज्ज्वल नहीं" किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि जिस राष्ट्रने अपने इतिहासका अच्छा उपयोग कर लिया है, उसका दिव्य भविष्यकाल निश्चित है। मुसोलिनीने जब इटलीका अधिकारसूत्र अपने हाथमें लिया, तब सबसे पहले महत्त्वका यह काम किया कि ऐतिहासिक अवशेषोंका पुनरुद्धार करनेके लिए एक विभाग खोल दिया और उस विभागमें बहुतसा धन लगा दिया। उसने ताड़ लिया कि शिथिल इटालियनोंको यदि जाग्रत करना है तो उनका वैभवपूर्ण इतिहास मूर्तरूपमें उनकी आँखोंके सामने आ जाना चाहिये। उत्खनन (खोदाई) का काम विदेशियोंके धनसे होता था, किन्तु अब इटलीने स्वाभिमानसे प्रेरित होकर उसे अपने हाथमें ले लिया है। यदि हमें वर्त्तमान इटलीका स्वरूप जानना हो तो इटालियन लोगोंकी दृष्टिके सामने उनके पूर्व साम्राज्यका जो इतिहास है, उसपर दृष्टि डालनी होगी। उसी

इतिहासके आधारपर वर्त्तमान इटलीके राष्ट्रीय अन्तःकरणका गठन हुआ है। महत्त्वाकांक्षी इटालियन लोगोंकी भावना है कि जिस रोमने किसी समय सारे यूरोपपर अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया था, जिन रोमन लोगोंने इंग्लैण्डका शासन किया था, जिन रोमन सम्राटोंने पूर्वमें एशियातक और दक्षिणमें आफ्रिका तक अपने साम्राज्यका विस्तार किया था, उन्हींकी हम सन्तान हैं। जो पुरुषार्थ हमारे पूर्वज कर चुके हैं, वही हम फिर कर सकेंगे। संसारमें रोमको किसी समय जो सम्मान प्राप्त था, वह फिर प्राप्त होना चाहिये। इटालियनोंकी इस मनोवृत्तिका परिणाम संसारकी राजनीतिपर हुए बिना न रहेगा।

शिथिल समाजपर आघात

हर एक समाजको बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य ये तीनों अवस्थाएँ प्राप्त हुआ करती हैं और उन्हींकी पुनरावृत्ति होती रहती है। इटलीकी भी यही दशा हुई। कुछ समयतक इटली परतन्त्रतामें पड़ा था। जिस समाजको वृद्धावस्था प्राप्त होती है, उसपर जब बाहरसे आघात होने लगते हैं, तब वह जाग्रत हो जाता है और उसका पुनर्जन्म हो जाता है। इटलीकी वही बात है। आस्ट्रियाकी अधीनतामें जो इटली गुलाम हो चुका था, उसी इटलीमें कावूर, मैजिनी, गेरीबाल्डी जैसे देशभक्त उत्पन्न हुए और उन्होंने अपना देश स्वाधीन बना डाला। जो देश दीर्घ कालतक पराधीनतामें सड़ता रहा हो, वह यदि स्वतन्त्र भी हो जाय तो भी एकाएक वैभवके शिखरपर आरूढ़ नहीं हो सकता। रचनात्मक कार्यक्रम बनाकर उसे लोगोंसे स्वीकार करानेवाले नेता जब उत्पन्न होते हैं तभी यह काम बनता है। इटली स्वतन्त्र हो गया सही, किन्तु सर्वसाधारणकी मनोवृत्तिमें विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ। स्वतन्त्रताके लिए राज्यक्रान्ति हुई, परन्तु वह

समाजके अन्तस्तलतक न पहुँच सकी। मुसोलिनीने जब फासिस्ट राज्यक्रान्ति की, तभी इटली राष्ट्र आमूलाग्र हिल गया। राजनीतिक क्रान्तिके साथ ही यदि सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति भी हो तो समाजमें परिवर्त्तन हो जाता है, अन्यथा फ्रांसकी राज्यक्रान्तिकी तरह समाज पहलेके मार्गका ही अनुसरण करने लगता है।

इटलीमें, विशेषतः उसके दक्षिण भागमें, प्रवास करनेवालेको हिन्दुस्थानका स्मरण हो आता है। पूर्व यूरोपके देशों और इटलीके रहन-सहन तथा संस्कृतिमें बहुत अन्तर है। उक्त प्रान्तके इटालियनोंके रहन-सहन और स्वभावको देखकर ध्यानमें आ जाता है कि वहाँ मुसोलिनी जैसे पुरुषका प्रभाव क्यों जमा और ऐसे पुरुषकी क्यों आवश्यकता थी। इटालियन लोग ग़रीब हैं। उनका रहन-सहन पूर्व यूरोपकी तुलनामें बहुत निम्न श्रेणीका है। उनमें अभी शिक्षाका भी अधिक प्रचार नहीं हुआ है। यों सारा देश खेतीपर ही अवलम्बित है, परन्तु इधर कुछ यान्त्रिक उद्योग-धन्धे भी बढ़ रहे हैं। रेलके तीसरे दरजेमें प्रवास करनेवालेको इटलीकी साधारण जनताका परिचय हो जाता है। स्वच्छता, व्यवस्थित रहनसहन, शिष्टाचारकी विशिष्ट पद्धति आदि बातों-का समाजके निम्न स्तरतक वहाँ प्रचार नहीं हुआ है। नगर-रचना, सड़कें, दूकानें, कोने-कोनेमें बने हुए छोटे-छोटे देवा-लय आदिके बाह्य रूप देखकर यही प्रतीत होता है कि भौतिक दृष्टिसे वह समाज अभी बहुत अनुन्नत है। लोगोंका वेष साधारणतया ग़रीबों जैसा ही होता है। बरसातमें सड़कों-पर कीचड़ हो जाता है, इस कारण सफाई कम देख पड़ती है। दूकानों और स्टोर्समें जो माल रहता है, उसमें इटलीका बना

अनुन्नत समाज

माल बहुत कम होता है। अमेरिका या जर्मनीके स्टोर्समें जो वैभव देख पड़ता है, वह इटलीमें नहीं है। ऐसे समाजको यूरोपके उत्कृष्ट राष्ट्रोंकी श्रेणीमें ला बिठानेकी मुसोलिनीकी महत्त्वाकांक्षा है।

समाजमें व्यवस्था और चारित्र्यकी आवश्यकता

राजनीतिक दृष्टिसे जैसी फासिस्ट राज्यक्रान्ति की गयी, वैसी क्रान्ति धीरे-धीरे समाजके जीवनमें भी करानेका मुसोलिनी उद्योग कर रहा है। इटालियन लोगोंको नवीन युगमें प्रवेश करानेके योग्य शिक्षा देनेके उसके प्रयत्न जारी हैं। सड़कोंपर नागरिक लोग यातायात किस प्रकार करें, इसकी शिक्षा स्थान-स्थानपर पुलिस खड़ी होकर दिया करती है। यह भी प्रयत्न किया जा रहा है कि देशमें अपराध कम हों और समाजको चरित्रकी शिक्षा मिले। रोमकी किसी सड़कसे जाइये, दो-एक पुलिसमैन अवश्य मिलेंगे। कहा जाता है कि ऐसे पुलिस रक्षकोंकी समाजके सब अङ्गोंपर दृष्टि रहनेसे पहलेकी अपेक्षा अब अपराध कम होने लगे हैं। इस प्रकार समाजके स्वभावमें क्रान्ति होना कितना आवश्यक है, यह बात इटलीमें प्रवास करनेवालोंके ध्यानमें सहज ही आ जाती है। इटालियन नागरिकोंसे जिन्हें काम पड़ चुका है, वे उनके स्वभावकी निन्दा किये बिना नहीं रहते, चाहे वह निन्दा कितनी ही सौम्य भाषामें क्यों न हो। होटलवाला स्टेशनपर एक दर बताता है और होटलमें ले जाकर दूसरी। स्टेशनपर कुछ पैसे पानेकी इच्छासे रेलका कर्मचारी लगेज रोक लेता है और थोड़ा हाथ गरम होते ही छोड़ देता है। ऐसे समाजमें स्वाभिमान, महत्त्वाकांक्षा, राष्ट्रीयता और सैनिक व्यवस्था उत्पन्न करनेका काम फासिस्ट लोग कर रहे हैं। यह बात सही है कि इटलीमें अधिनायकतंत्रकी स्थापना हुई,

है, किन्तु वहाँके समाजको देखकर और इटालियन लोगोंके स्वभावका विचार कर इसकी आवश्यकता भी प्रतीत होती है। अभी कुछ समयतक जबतक कि संसारमें इटलीको उचित सम्मानका स्थान नहीं प्राप्त हो जाता और उसमें दूसरोंसे अपनी रक्षा करनेकी सामर्थ्य नहीं आ जाती, उसे एकतन्त्र सत्ताके अधीन रहकर व्यवस्था, चारित्र्य और सुसंस्कृत जीवनकी शिक्षा मिलना आवश्यक है। कैसरके शासन-कालमें जर्मनी विश्रृंखल हो गया था; परन्तु कैसरकी सत्ता नष्ट होते ही बलवान् हो गया। इटलीके नेता भी यही करना चाहते हैं। यह काम थोड़े समयमें, थोड़े व्ययसे, थोड़े मनुष्य-बलके द्वारा तभी सम्पन्न हो सकता है, जब आपद्धर्म समझकर देश अधिनायकतन्त्रको स्वीकार कर ले। यह नैमित्तिक परिस्थिति है; परन्तु सदाके लिए यही एकतन्त्र सत्ता बनी रहे या इसमें कुछ परिवर्तन किया जाय, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है।

चौबीसवाँ अध्याय

फ़ासिज़्म—आपत्कालीन राजनीतिक सिद्धान्त

रोममें आजकल दो प्रकारके यूनिफार्म देख पड़ते हैं—एक सैनिक और दूसरा धार्मिक। दोनों यूनिफार्म दो प्रकारकी मनोवृत्तिके द्योतक हैं।

धर्म और राजनीतिका सख्यसम्बन्ध

इटलीने जड़वादी समाजसत्तावादको नहीं अपनाया, इसका कारण इटालियन समाजकी धार्मिक परम्परा है। पोपका धर्मपीठ वहीं होनेसे सर्वत्र काले, सफेद और लाल वस्त्र पहिने हुए संन्यासी तथा धर्मोपाध्याय दृष्टिगोचर होते हैं। इसी

प्रकार विभिन्न तरहकी वेशभूषा धारण किये हुए सिपाही और 'बलिल्ला' आन्दोलनके बाल सैनिक भी सर्वत्र देखे जाते हैं। लोगोंकी धर्मबुद्धिपर आघात न कर, उनकी सैनिक शक्ति और राष्ट्रीय वृत्तिकी अभिवृद्धि करनेकी ओर मुसोलिनीका विशेष ध्यान है। इस कारण धार्मिक दृष्टिसे होनेवाले विरोधकी मात्रा घट गयी। आजकल इटलीके सब स्कूलोंमें मुसोलिनी और पोपके चित्र पास-पास लटकाये गये हैं। इससे ज्ञात होगा कि फ़ासिज़्मने धर्मके साथ राजनीतिका कैसा सख्य-सम्बन्ध प्रस्थापित कर दिया है।

फासिज्मका जन्म-वृत्तान्त

महायुद्धके कारण जो अनेक क्रान्तियाँ हुईं और जिन अनेक राजनीतिक तत्त्वोंका आविष्कार हुआ, उनमें इटलीकी फ़ासिस्ट राज्य-क्रान्ति और उसके आधारभूत फ़ासिज़्मका प्रधानतया उल्लेख करना आवश्यक है। जर्मनीकी नेशनल सोशलिस्ट राज्यक्रान्ति फ़ासिज़्मका ही एक रूपान्तर है। फ़ासिज़्म और सोशलिज़्म दोनोंकी राजनीतिक तथा आर्थिक भूमिकाएँ कुछ कुछ समान हैं। परन्तु दोनोंके अन्तिम लक्ष्य भिन्न हैं। स्वयं मुसोलिनी किसी समय सोशलिस्ट मतका प्रचारक था। इटलीमें लोकतन्त्र अवश्य स्थापित हुआ, किन्तु लोकतन्त्रका अनुभव इटालियनोंको नहीं था। इस कारण देशमें सर्वत्र अन्धा-धुन्धी मच गयी, दलबन्दी होने लगी, घूसखोरी बढ़ गयी और राजनीतिक सत्ता दुर्बल हो गयी। मुसोलिनी चाहता तो उस समय सोशलिज़्म अथवा फ़ासिज़्म दोनोंमेंसे कोई भी राज्यपद्धति स्थापित कर सकता था। परन्तु देशकी परिस्थिति और इटालियन मनोवृत्तिका विचार कर उसने निश्चय कर लिया कि सोशलिज़्मके वर्गयुद्ध, जड़वादी जीवन, अन्तर्राष्ट्रीय नीति,



बलिल्लासंघके बालक मशीनगनोंका चलाना सीख रहे हैं—



इटलीके अधिनायक—मुसोलिनी

व्यक्तिगत सम्पत्तिपर सरकारी अधिकार आदिके तत्त्वोंको समाज पचा न सकेगा। यही कारण है कि उसने समाजवादके प्रतिस्पर्धी और इटलीकी परिस्थितिके अनुकूल नवीन राजनीतिक सिद्धान्तोंका निर्माण किया। वर्गयुद्धके बदले राष्ट्रहितके विचारसे सब वर्गोंमें एकता स्थापित होनी चाहिये, जड़वादी जीवनके बदले मनुष्यके उच्चतर आध्यात्मिक जीवनका पोषण होना चाहिये, अन्तर्राष्ट्रीय हितके पहले राष्ट्रीय हितका ध्यान रखना चाहिये, व्यक्तिगत सम्पत्ति नष्ट न कर उसपर उचित सरकारी नियन्त्रण रहना चाहिये—इसी विचार-परम्पराके अनुसार उसने जो राजनीतिक मत चलाया, उसीका नाम फ़ासिज़्म है। फासिज्मका मूल धात्वर्थ है—एकता। उसका प्रतीक (चिह्न) मुसोलिनीने प्राचीन इतिहाससे प्राप्त किया है। फ़ासिज़्मका प्रतीक है लाठियोंका गट्ठा और फरसा। इसका सरल अर्थ है—एकता और क्षात्र तेज।

यह बात नहीं कि फ़ासिज़्मके सिद्धान्त पहले स्थिर कर फिर मुसोलिनीने राज्यक्रान्ति की। क्रान्ति करते हुए ज्यों ज्यों अनुभव प्राप्त होता गया, त्यों त्यों वह अपने सिद्धान्त स्थिर करता गया। मज़दूरोंके सम्बन्धकी फ़ासिस्ट नीति मज़दूरोंको पसन्द नहीं है। परन्तु उससे कोई नापसन्दी भी जाहिर नहीं करता। इटलीकी परिस्थिति बातचीतसे नहीं जानी जा सकती। यह जानकर कि दीवारके भी कान होते हैं, स्पष्ट बोलनेसे सभी डरते हैं। किसीसे कोई बात पूछिये, वह कन्धे नीचे-ऊँचे कर और मुँह बनाकर बिना उत्तर दिये ही बात टाल देता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि देशदशा सुधरी हुई भले ही देख पड़ती हो, परन्तु उससे लोगोंमें सन्तोष नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि परिस्थिति और अनुभवसे फ़ासिज़्मके सिद्धान्त

धीरे धीरे निश्चित किये जा रहे हैं। प्रकृत अवस्था तो यह है कि जो कुछ मुसोलिनी कहे, वही फ़ासिज़्म है। इसके रूपमें अभी और क्या क्या फेरफार होगा, कहा नहीं जा सकता।

तटस्थ होकर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि फ़ासिज़्म आपद्धर्मका ही एक राजमार्ग है। विदेशी शत्रुओंसे सामना करनेके लिए अल्प समयमें राष्ट्रीय एकता स्थापित कर समाजको कार्य-प्रवृत्त बनानेके विचारसे फ़ासिज़्मके सिद्धान्त उत्तम हैं। आवश्यक आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रोंपर नियन्त्रण रखकर अन्य क्षेत्रोमें लोगोंको परम्पराके अनुसार बरतनेकी स्वतन्त्रता दे देनेसे एकता स्थापित करनेमें सुगमता हो जाती है, विवाद और मतभेद कम हो जाते हैं और मुख्य राजनीतिक तथा आर्थिक उलटफेरोंकी ओर विशेष ध्यान दिया जा सकता है। फ़ासिज़्मके सिद्धान्तानुसार सत्ता, सम्पन्नता और सुरक्षितता प्राप्त हो जाने पर उसका उपयोग किस उच्च लक्ष्यकी सिद्धिके लिए किया जायगा? इस प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर अभी फ़ासिज़्म नहीं दे सका है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी अपनी मनोवृत्तिके अनुसार ही इसका उत्तर दे सकता है।

आपत्कालीन सिद्धान्त

भारतवर्ष जैसे किसी राष्ट्रको यदि 'विशेष परिस्थितिका आपद्धर्म' समझकर फ़ासिज़्मका स्वीकार करना पड़े तो इससे यह न समझना चाहिये कि उसे उसके अच्छे-बुरे सब सिद्धान्त मानने ही पड़ेंगे। राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीयताके लिए सब वर्गोंका स्वार्थत्याग, समाजके सब वर्गों, दलों और जातियोंमें सहकारिता, राष्ट्र-हितकी दृष्टिसे आर्थिक क्षेत्रपर नियन्त्रण आदि प्रधान सिद्धान्तोंको मानकर और परिस्थितिके अनुसार उनमें अन्य

हमारा राजनीतिक सिद्धान्त

आवश्यक बातोंको जोड़कर भारतवर्ष जैसे देशका राजनीतिक सिद्धान्त निर्माण किया जा मकता है। इटली और जर्मनीमें जिस प्रकार नेशनलिज़्म और सोशलिज़्ममें संघर्ष हुआ और उससे फ़ासिज़्म तथा नाज़ीज़्मका जन्म हुआ, वैसी ही परिस्थिति भारतवर्षमें भी दस पंद्रह वर्षोंमें उत्पन्न होगी। यहाँ भी अब राष्ट्रीयतावाद और समाजवादमें संघर्ष होनेवाला है। परिणामतः समाजवादके आर्थिक नियन्त्रण और मज़दूरोंको उचित तथा न्याय्य पारिश्रमिक देनेके सिद्धान्तोंका समावेश राष्ट्रीयतावादमें किया जायगा। जर्मनीकी तरह भारतवर्षमें भी संभवतः राष्ट्रीय समाजवाद स्थापित होगा, मतलब यह कि इस तात्त्विक विवादके सम्बन्धमें देशमें अभी विशेष विचार नहीं हुआ है। भावी राजनीतिमें इसपर विचार किया जायगा और इस विचारमें जो प्रान्त नेतृत्त्व ग्रहण करेगा, वही प्रान्त भावी राजनीतिक क्षेत्रमें अग्रसर माना जायगा। जो हो, यह निश्चित मालूम होता है कि अगली दो तीन पीढ़ियोंमें ही राष्ट्रीय-समाजवाद भारतवर्षका राजनीतिक सिद्धान्त बन जायगा।

चौथा विभाग

संसार और भारतवर्ष—वर्तमान विचार-प्रवाह

पच्चीसवाँ अध्याय

संसारके विचार-प्रवाहमें भारतवर्ष

पूनेके एक विद्वान् मित्रके साथ मैं अंग्रेज़ी वर्षकी प्रतिपदा-की रातमें न्यूयार्कके टाइम्स स्क्वेअरमें गया था। इस अवसरपर नवीन वर्षका स्वागत करनेके लिए वहाँ लाखों स्त्री-पुरुष एकत्र होकर धूमधाम मचाया करते हैं। त्यौहारके दिन आनन्दोत्सव मनाने और मौज उड़ानेमें पाश्चात्य लोग बड़े उत्साहित रहते हैं। उस दिन वहाँ इतनी भीड़ हुई थी कि उसमें हम समा गये, हमारे पैर ज़मीनसे उठ गये और उस भीड़की बाढ़में हम किस ओर जा रहे हैं, इसका भी ज्ञान हमें न रहा। उस समय मैं सोचने लगा कि भारतकी भी यही दशा हो रही है। संसारमें विचारोंकी इतनी रेल-पेल हो गयी है कि भारत स्थिर आसनके अभावमें अपनेको सम्हाल न सका और सँसारके प्रवाहमें परवश होकर बहा जा रहा है। उसे कोई दिशा नहीं सूझती। उसके पैर ज़मीनसे उखड़ गये हैं।

विचारोंकी बाढ़

पूर्वकालीन ऋषियोंकी तरह पाँच-छः वर्षोंतक समाधि-अवस्थामें तपस्या कर जो व्यक्ति फिर हिन्दुस्थानी समाजमें सम्मिलित होगा, वह जान जायगा कि इस समाजमें अज्ञात रूपसे क्रांति हो रही है। न जाने कहाँसे इस देशमें नयी नयी वस्तुओं और विचारोंकी ऐसी वर्षा हो रही है, जिससे इस समाजका मूल स्वरूप ही बदल जायगा। हमारा बाह्य स्वरूप तो बदल ही गया है, किन्तु वे ही संस्कार अब हमारे आन्तरिक जीवनपर भी प्रभाव डाल रहे हैं।

अज्ञात क्रान्ति

पाश्चात्य देशोंसे हमारे देशमें आज बहुत बड़े परिमाणमें वस्तुओं, फैशनों और विचारोंका आयात हो रहा है।

वस्तुओं, फैशनों और विचारोंका आयात

बाज़ारकी दूकानों और अपने घरकी हर-एक वस्तुको देखकर निश्चय हो जाता है कि पाश्चात्योंने हमपर पूर्ण आक्रमण किया है। हमारे उद्योग-धन्धोंकी ऐसी दुर्दशा हो गयी है कि स्त्रियोंकी धोतियों या साड़ियोंके लिए स्वदेशी सूत नहीं मिलता। मकानोंके रङ्ग, घड़ियाँ, फाउण्टेनपेन, छाते, कन्दील, काँचका सामान, सब वस्तुएँ बाहरसे आती हैं। इन वस्तुओंके कारण हमारे रहन-सहनपर पाश्चात्योंका प्रभाव पड़ रहा है। यह बात पूना-बम्बई जैसे नगरोंके शिक्षित लोगोंके बच्चों और स्त्री-पुरुषोंकी वेषभूषा देखनेसे ही ध्यानमें आ जाती है। हमारी पराधीनताका चिह्न साहबका टोप है। वह भी खद्दरका बनने लगा है। इन सब बातोंसे कोई विशेष हानि नहीं है। सजग रहकर बुद्धिपूर्वक यदि इन बातोंका स्वीकार किया जाय, तो कोई क्षति नहीं है; क्योंकि ये सब बातें जीवनके बाह्य स्वरूपके सम्बन्धकी हैं और गौण हैं।

वस्तुओं और फैशनोंके साथ पाश्चात्य विचार भी तीव्रतासे हमारे समाजमें घुस रहे हैं। उन्हें भी यदि पहलेकी तरह हम

नवीन विचारोंका तीव्र वेग

असावधान रहकर मनमाने तौरसे स्वीकार करने लगें, तो हमारे समाज, संस्कृति और तत्वज्ञान-की विशिष्टता नष्ट हो जायगी। गत सौ वर्षोंसे उक्त विचारोंसे हमारा सम्पर्क होता रहा है; परन्तु अब विचार-प्रचारके साधनोंके बढ़ जाने और विचारोंकी उपजकी वृद्धि होने-से हिन्दुस्थानपर उनका अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ रहा है।

ऐसी अवस्थामें शिक्षित लोगोंको समीक्षा कर समझ लेना

स्वीकार, प्रतीकार और संस्कार

चाहिये कि उन विचारोंका स्वरूप क्या है। उनमेंसे कौन-कौन त्याज्य हैं, कौन उचित संस्कारके बाद ग्राह्य हैं और कौन प्रतीकार करने योग्य हैं ? इसका भी निर्णय हो जाना चाहिये। साथ ही साथ स्वीकार, प्रतीकार या संस्कार करने योग्य विचारोंकी परख करनेके लिए सामाजिक तथा शास्त्रीय कसौटी भी निर्माण होनी चाहिये। गत तीस वर्षोंसे हम व्यावहारिक उलझनोंमें इतने अधिक व्यस्त रहे हैं कि अपने समाजके सिद्धान्तों और लक्ष्यका विचार करनेके लिए हमें समय ही नहीं मिला। अब ऐसा समय आ गया है कि इन बातोंका विचार किये बिना भावी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नीति सम्बन्धी प्रश्नोंके उत्तर हम न दे सकेंगे। नूतन परिस्थितिके अनुकूल निश्चित सिद्धान्तोंके अभावसे हमारा समाज दो ओरसे खींचा जा रहा है। पाश्चात्य विचारोंको ही आदर्श और प्रमाण माननेवाले एक पक्षके उत्पन्न होते ही दूसरी ओर प्राचीन संस्कृतिको ही आदर्श माननेवाला दूसरा पक्ष विरुद्ध दिशामें अपना सङ्गठन करने लगा है। बहुजन-समाज और व्यावहारिक लोग तात्कालिक अवस्थापर दृष्टि रखकर किसी प्रकार समय बिता रहे हैं।

पाश्चात्य देशोंसे इधर जो विचार आ रहे हैं, उनका जन्म उन देशोंका औद्योगिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितिसे हुआ है। हिन्दुस्थानकी परिस्थिति उन देशोंसे ज्यों ज्यों समरस होती जायगी, त्यों त्यों इस देशमें भी विदेशी विचारोंका प्रभाव बढ़ता जायगा। पाश्चात्य देशोंकी अस्वस्थता और हलचलके मूलमें कुछ विशिष्ट कारण हैं।

औद्योगिक उन्नतिके कारण यातायातके और परस्पर सम्बन्धके विपुल साधन हो गये हैं। विविध समाज और राष्ट्र

भौतिक दृष्टिसे एक दूसरेके बहुत निकट आ गये हैं और उनके सम्बन्ध बहुत सुदृढ़ हो गये हैं। एक ही समाजकी विविध जातियों और वर्गोंका तथा विविध राष्ट्रोंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है; परन्तु इस ऐहिक सम्बन्धमें एक प्रकारकी स्वार्थ-पूर्ण दृष्टि थी और अब भी है। शरीर जितने निकट पहुँच गये, अन्तःकरण उतने निकट न पहुँच सके। अतः इस निकटताका परिणाम यह हुआ कि श्रेष्ठोंने कनिष्ठोंको, बलवानोंने दुर्बलोंको और धनिकोंने निर्धनोंको चूस डाला। सारांश, समाजमें पारस्परिक सम्बन्धोंकी वृद्धि अवश्य हुई, परन्तु समाजके अनुकूल नयी मनोवृत्ति, धर्म, अथवा तत्त्वज्ञानका उदय नहीं हो सका। यही कारण है कि जिनपर आजतक ज़ोर-ज़बरदस्ती होती रही, उन समाजों और समाजके वर्गोंने इससे अपना छुटकारा कर लेनेके लिए आन्दोलन आरम्भ किया और उसकी पुष्टिके लिए एक बौद्धिक विचारप्रणालीका निर्माण कर लिया।

नया युग, पुरानी वृत्ति

यह कहनेमें अतिशयोक्ति न होगी कि गत पच्चीस वर्षोंमें विज्ञानका जितना उत्कर्ष हुआ है, उतना उससे पहलेके हज़ार वर्षोंमें भी नहीं हो सका था। भौतिक विज्ञानका प्रभाव सामाजिक जीवनपर बहुत पड़ा। इसके साथ ही गत २-३ दशाब्दोंमें समाज-शास्त्रकी भी बहुत उन्नति हुई है। विभिन्न जङ्गली समाजोंका पता लगा है। अनेक संस्कृतियोंका लोगोंने अध्ययन किया, जिससे उनका ज्ञान बढ़ गया है। समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और दर्शनके सम्बन्धमें पर्याप्त विचार हुआ है जिससे ज्ञानकी अनेक शाखाओं और नयी नयी बातोंका पता लगा है। धर्मकी और धार्मिक सिद्धान्तोंकी तरह तरहसे परीक्षा-समीक्षा

ज्ञानके कारण सन्देह

की गयी और उसमें शाश्वत अंश कितना है और विनाशी कितना है, इसकी भी छानबीन की गयी। इससे जो जो बातें ज्ञात हुईं, उनका यह परिणाम हुआ कि प्राचीन धर्म, समाज-रचना, आर्थिक संघटन, संस्कृति आदिके सम्बन्धमें लोगोंके चित्तमें सन्देहवृत्ति उत्पन्न हो गयी। जो कुछ विद्यमान है, वही उत्तम है और इससे अधिक उत्तम कुछ हो नहीं सकता, यह भावना नष्ट हो गयी और समाजको आत्मविश्वास हो गया कि कोई नयी और अनुकूल समाजपद्धति निर्माण की जा सकती है। इस कारण प्राचीन समाजपद्धतिको वदलकर अथवा उसका संस्कार कर समाजका पुनः संघटन करनेकी प्रवृत्ति लोगोंमें उत्पन्न हो गयी।

फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिके समय समताके सिद्धान्तका उदय हुआ और उस सिद्धान्त रूपी वृक्षमें औद्योगिक युगमें नये फल आ गये। यान्त्रिक उन्नतिके कारण श्रमिकोंकी संख्या वढ़ी। उनमें शिक्षाका प्रचार होनेकी वजह समताकी भावना जाग्रत हुई। संसारमें जो वर्ग कनिष्ठ समझे जाते थे, उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। उन्होंने समझ लिया कि सामाजिक श्रेष्ठता और कनिष्ठता ईश्वरनिर्मित नहीं, मनुष्य-निर्मित है। जो वर्ग कनिष्ठ माने गये थे, वे अव इस ज्ञानसे अपने ऊपर होनेवाले अन्यायका अनुभव करने लगे। स्त्रियाँ कनिष्ठ मानी जाती थीं, वे भी पुरुषोंकी बराबरीमें आ गयीं। श्रमिकवर्ग कनिष्ठ समझा जाकर सत्ता, सम्पत्ति और सुख-सामग्रीसे वञ्चित रखा जाता था, अव वह भी पुरुषार्थत्रयीकी माँग कर रहा है। नीग्रो जैसे कुछ लोग अस्पृश्य माने जाते थे, उनमें भी स्वाभिमान और समताका भाव उत्पन्न हो गया है। इसी तरह भारत, चीन, जापान आदि पौर्वात्य

हम ही कनिष्ठ क्यों हैं?

राष्ट्र जो कनिष्ठ और अवनत समझे जाते थे, अब यह कहने लगे हैं कि हम श्रेष्ठतामें पाश्चात्योंसे किसी प्रकार कम नहीं हैं। सारांश, जो वर्ग कनिष्ठ कहे जाते थे, उन्होंने अब श्रेष्ठ समाजके विरुद्ध विरोधका झण्डा खड़ा कर दिया है। अब सभी लोग समझने लगे हैं कि प्राकृतिक विषमताकी मर्यादाओंका पालन करते हुए सामाजिक वैषम्य नष्ट हो जाना चाहिये और श्रेष्ठ पदपर पहुँचनेका सबको अधिकार होना चाहिये।

तटस्थ वृत्ति अनावश्यक है

भौतिक और समाजशास्त्रके उत्कर्षसे, यान्त्रिक उन्नतिके कारण विभिन्न समाजोंका निकट सम्बन्ध हो जानेसे, और कनिष्ठ माने गये समाजोंमें समताकी भावना जाग्रत हो जानेसे पाश्चात्य देशोंमें खलबली मच गयी, उसीकी हवा अब हिन्दुस्थानतक आ पहुँची है। यही कारण है कि जीवनके हर एक क्षेत्रमें नवीन विचारोंकी लहरें उठ रही हैं। इस सन्धिकालमें हमारे तटस्थ रहनेसे काम न चलेगा; क्योंकि नवीन विचारोंका प्रभाव हमारे समाजपर पड़ रहा है और वह क्रमशः बढ़ता ही जायगा। नवीन परिस्थिति उत्पन्न होनेके पहले ही यदि हम उसपर अच्छी तरह विचार कर लें, तो यह दूरदर्शिताका काम होगा।

छब्बीसवाँ अध्याय

लोकतन्त्र या अधिनायकतन्त्र ?

सारे संसारमें आग लगा देनेवाले महायुद्धमें जब मित्र राष्ट्र संलग्न हुए, तब उन्होंने घोषणा की थी कि हमारे लड़नेका अभिप्राय

संसारमें लोकतन्त्र शासन-प्रणालीको सुरक्षित बनाये रखना ही है। इस मन्त्रसे प्रेसिडेण्ट विलसन भी मुग्ध हो गये और उन्होंने अमेरिकाको युद्धमें ढकेलकर मित्र राष्ट्रोंको जिता दिया। जर्मनीकी एकतन्त्र राजसत्ता नष्ट हुई और उसके स्थानमें सोशल डेमाक्रेसी अर्थात् समाजवादी लोकतन्त्र शासन-प्रणालीकी स्थापना की गयी। परन्तु वह भी बारह वर्षोंके अन्दर ही विलुप्त हो गयी और उसका स्थान हिटलरके अधिनायक-तन्त्रने ग्रहण किया।

केवल जर्मनीमें ही यह परिवर्तन नहीं हुआ, किन्तु पूर्व यूरोपके अधिकांश राष्ट्रोंमें किसी न किसी रूपमें डिक्टेटरशिप (अधिनायकतन्त्र) प्रचलित हो गयी है और पश्चिमी यूरोपके इंग्लैण्ड जैसे राष्ट्रों तथा अमेरिकाकी लोकतन्त्र शासन-प्रणाली भी बहुत कुछ नियन्त्रित हुई है।

संसारके सामने आज यह प्रश्न उपस्थित है कि समाज-शासनकी आदर्श पद्धति कौनसी हो सकती है ? लोकतन्त्र, अधिनायकतन्त्र या अन्य कोई नवीन तन्त्र? अभी हिन्दुस्थानके सामने इस प्रश्नके उपस्थित होनेमें विलम्ब है। हमारे शासकोंका जो सिद्धान्त हो, वही हम अपना सिद्धान्त समझते हैं और यह अपरिहार्य है। परन्तु इस अवस्थामें भी विचारशील हिन्दुस्थानियोंको सोच रखना चाहिये कि यदि कोई 'वरं ब्रूहि' कहे या उनके हाथमें शासन-सत्ता आ जाय, तो वे किस पद्धतिका अवलम्बन करेंगे ? किसी पद्धतिके प्रचलित होनेसे बहुत वर्ष पूर्व ही उसके सम्बन्धमें अच्छी तरह विचार कर लेना आवश्यक होता है। कार्ल मार्क्सने सोशलिज्म और कम्यूनिज्मके सिद्धान्तका आविष्कार किया था; किन्तु उसके पश्चात् बहुत

विचारशील, हिन्दुस्थानियोंके सामने प्रश्न

समय बीत जाने पर वह सिद्धान्त व्यवहारमें लाया गया। इसी तरह जो समाजपद्धति अथवा राज्यपद्धति प्रचलित करनी हो, उसके सम्बन्धके विचार समाजमें पहलेसे ही फैल जाने चाहिये और अनुकूल भूमि तैयार हो जानी चाहिये।

लार्ड ब्राइस नामक एक अंग्रेज़ ग्रन्थकारने लोकतन्त्रके विषयमें दो ग्रन्थ लिखे हैं। संसारके विभिन्न देशोंमें प्रचलित लोकतन्त्र शासनका निरीक्षण कर भारतके सम्बन्धमें वह लिखता है कि लोकतन्त्र भारतीयोंके अनुकूल नहीं है; क्योंकि इसके उपयुक्त न तो उन्हें शिक्षा मिली है, न उनकी इसके योग्य राजनीतिक मनोवृत्ति है और न उत्तरदायित्व ग्रहण करनेकी उनमें अभिरुचि है।

क्या लोकतन्त्र हमारे अनुकूल होगा ?

ब्राइसका मत यथार्थ हो या अयथार्थ, उसके कथनमें एक सचाई यही है कि कोई भी शासन-प्रणाली समान रूपसे सब समाजोंके अनुकूल हो नहीं सकती। प्रत्येक समाजकी परिस्थिति और मनोवृत्ति पृथक् पृथक् होती है। उसके अनुकूल जो राज्य-प्रणाली हो, वही टिकती है, अन्यथा नष्ट हो जाती है। व्यवस्था और आज्ञापालन, इन गुणोंकी क़द्र करनेवाले जर्मनोंको लोकतन्त्र नहीं पचा। उन्हें किसी आज्ञा करनेवालेकी आवश्यकता थी और वह उन्हें मिल भी गया। हमें अभीसे विचार कर रखना चाहिये कि हिन्दुस्थानियोंकी मनोवृत्तिके अनुकूल कौनसी शासन-प्रणाली हो सकती है। हमपर जो लोकतन्त्र लादा जा रहा है, इसे समाजकी संक्रमणावस्था समझना उचित है।

महायुद्धके समयतक सभी अग्रगामी राष्ट्रोंकी धारणा थी कि लोकतन्त्र ही सर्वोत्तम राज्यपद्धति है और संसारको उसे ही अपना लेना चाहिये। विभिन्न समाजोंने अनेक राज्यपद्धतियोंके

योग कर देखे। एकतन्त्र राज्यपद्धतिसे प्रयोग प्रारम्भ हुआ। उसका निचोड़ यही निकला कि वह लोकतन्त्र शासनप्रणाली, जो जनताके हितके लिए जनताके ही द्वारा परिचालित होती हो, सर्वोत्तम है*।

उत्कृष्ट पद्धति कौनसी है ?

यःप्राप्त प्रत्येक व्यक्तिको मतका अधिकार रहे, जिससे सर्वसाधारणका मत जाना जा सके और बहुमतके अनुसार शासन-कार्य हुआ करे, जिससे बहुजनकी सम्मतिसे ही बहुजनका हित साधित होता रहे—इस सिद्धान्तके अनुसार मत-पद्धति तथा बहुजनसम्मत शासनपद्धति प्रचलित की गयी। इससे समाज-शासकोंको आशा हो गयी कि अब शीघ्र ही सुवर्ण-युग अथवा सत्ययुग आरम्भ हो जायगा।

परन्तु अनुभव क्या कहता है? सबको मत देनेका अधिकार तो मिल गया, किन्तु किसको मत देना चाहिये, इसकी बुद्धि किसीमें नहीं उपजी। आगे चलकर शिक्षासे लोग समझने भी लगे कि किसे मत देना चाहिये; परन्तु उनके सामने जब योग्य और रिश्वत देनेवाले, दोनों प्रकारके उम्मेदवार खड़े किये गये, तब बहुजन-समाजने स्वार्थको ही प्रधान स्थान दिया। परिणाम यह हुआ कि योग्य व्यक्ति पिछड़ गये और कलदारकी थैलियाँ लेकर खड़े हुए अयोग्य व्यक्ति आगे बढ़ गये। योग्य उम्मेदवारोंके बदले धनिक उम्मेदवार चुने जाने लगे। चारित्र्य एवं लोकसेवाकी दर घट गयी और धनसम्पन्नता तथा स्वार्थकी दर बढ़ गयी। बहुजन-समाजका हित कोनेमें पड़ा रहा और

अनुभव क्या कहता है ?

* Government of the people, by the people, and for the people.

रुपयेके बलपर चुने गये धनिक लोग अपने स्वार्थकी दृष्टिसे शासन-कार्य करने लगे। जो राज-सत्ता पहले किसी राजाके अथवा उसके सरदारोंके हाथमें रहा करती थी, वह अब धनिकों-के हाथमें आ गयी।

जनताको लाभ कुछ नहीं हुआ

अमेरिका, इंग्लैण्ड और फ्रान्स, तीनों राष्ट्र लोकतन्त्रके बहुत अधिक समर्थक हैं। परन्तु उन देशोंकी सामान्य जनताकी दशा देखकर यही जान पड़ता है कि वहाँकी शासन-प्रणालीसे उसका कोई लाभ नहीं हुआ। अंग्रेज़ मज़दूरोंके दीनतादर्शक फटे-पुराने कपड़ों, फ्रान्सके दरिद्रोंकी झोपड़ियों और अमेरिकाके 'स्लम्ज़' अर्थात् ग़रीबोंकी बस्तियोंको देखकर विश्वास हो जाता है कि उक्त राष्ट्रोंको अभी सर्वसाधारणके लिए कल्याणकारी किसी शासन-प्रणालीका पता लगाना है।

जनतन्त्रकी अन्धेर नगरी

सम्पत्तिके बलपर जो धनिक उम्मेद्वार सार्वजनिक उत्तर-दायित्वके पदपर चुने जाते हैं, वे चुनावके पहले और पीछे किस प्रकार स्वार्थ साधकर जनहितकी उपेक्षा करते हैं, इसका कुछ कुछ अनुभव हिन्दुस्थानियोंको भी हो चला है। संसारमें न्यूयार्क बहुत बड़ा और श्रीसंपन्न नगर है। जेम्स वाकर नामक लोकप्रिय उम्मेद्वार उस नगरका अध्यक्ष चुना गया था। परन्तु उसीके शासनकाल-में घूसखोरी, ग़बनग़ीरी और अव्यवस्था इतनी बढ़ गयी कि उससे नागरिकोंको लज्जा होने लगी। जब समुन्नत देशोंके बड़े बड़े नगरोंकी यह अवस्था है, तब अन्य देशोंके जनतन्त्रका कहना ही क्या है। कुछ धनिक लोग मिलकर अपनी पूँजीसे समाचारपत्र निकालते हैं, उनके द्वारा लोकमत अनुकूल कर जिसे चाहते उसे चुन लेते हैं और उन्हींके हाथमें राजसत्ता

सौंप देते हैं। यही व्यवहार सब ओर देखा जाता है। इस प्रणालीसे अधिकांश समाज राजसत्तासे वञ्चित है और उसकी पूर्व परिस्थितिमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। जनताको कुछ सुविधाएँ अवश्य प्राप्त हुई हैं, परन्तु जैसी आशा थी, यह शासनप्रणाली सफल नहीं हो सकी।

यूरोपमें प्रतिक्रिया

लोकतन्त्र शासनपद्धति बाह्यतः बहुजनके मतका आदर करनेवाली भले ही देख पड़ती हो, पर व्यवहारमें थोड़ेसे समर्थ व्यक्तियोंके हाथमें ही इस पद्धतिके अनुसार सब सत्ता आ जाती है। यह दोष जब स्पष्टतया देख पड़ा, तब महायुद्धके पश्चात् पूर्व यूरोपके राष्ट्र अधिनायकतन्त्रके पक्षपाती बन गये। मतभेद और दलबन्दीके आधारपर जो पद्धति प्रचलित हो रही थी, उसे उन राष्ट्रोंने त्याग दिया और एक मत तथा एक ही दलके सिद्धान्तको माननेवाली अधिनायकतन्त्र पद्धतिकी स्थापना की। इस पद्धतिके चलानेवाले रूसके स्टेलिन, जर्मनीके हिटलर और इटलीके मुसोलिनीके नाम सर्वप्रसिद्ध हैं।

दो परस्पर विरोधी सिद्धान्त

अधिनायकतन्त्र और लोकतन्त्र दोनों प्रणालियोंके मूलमें समाज-सम्बन्धी दो विभिन्न कल्पनाएँ हैं। लोकतन्त्रका आधारभूत सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्तिका स्वतन्त्र अस्तित्व है, स्वतन्त्र मत है और अपना अलग अर्थात् समाजसे पृथक् स्वार्थ भी है। इस प्रकार एक मतके अनेक व्यक्ति यदि राज्य-शासन करें, तो अधिकसे अधिक व्यक्तियोंको लाभ पहुँच सकता है। विद्यमान अधिनायकतन्त्र प्रणाली इससे भिन्न सिद्धान्तपर स्थित है। अधिनायकतन्त्रवादियोंका मत है कि समाज एक है, व्यक्तियोंको स्वतन्त्र मताधिकार नहीं है, उनका समाजसे भिन्न कोई स्वार्थ भी नहीं हो सकता; समाज-

का लाभ ही व्यक्तिका लाभ है। समाज और व्यक्तिके स्वार्थमें कोई विरोध नहीं है। इस मतके लोग अपना मत राष्ट्रके किसी अलौकिक पुरुषके मुखसे प्रकट करते हैं। उनमें मतभेद या दलबन्दीका झगड़ा नहीं है। जर्मनीमें जब मत माँगे जाते हैं, तब सब ओर विज्ञापनोंके द्वारा घोषित किया जाता है कि एक ही नेता और एक ही जनता है; इस कारण एकमत होकर अनुकूल मत दीजिये।

यूरोपके तीन अधिनायक

रूसमें इस समय कम्यूनिस्ट दलकी एकतन्त्र सत्ता है और उसका प्रधान स्टैलिन है। जर्मनीमें हिटलरने पहलेके लोकतन्त्रको धीरे-धीरे छुट्टी दे दी और सब शासन-सूत्र अपने हाथमें ले लिये। इटलीका सर्वेसर्वा मुसोलिनी है और वह स्पष्ट शब्दोंमें कहता है कि लोकतन्त्र एक ढोंग है। इन तीनों देशोंमें आजकल एक ही दल है और एक ही मत है। यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ विरोधी दलों और मतोंके लोग हैं ही नहीं; परन्तु उन्हें विश्वास है कि यदि उन्होंने सिर उठाया तो वे नष्ट कर दिये जायँगे। विरुद्ध मतके लोग देशसे निकाल दिये जाते या कारागारोंमें ठूँस दिये जाते हैं। यह प्रसिद्ध ही है कि कम्यूनिस्ट नेता ट्राटस्की मतभेदके ही कारण आज विदेशोंमें दिन काट रहा है। जर्मनीमें होनेवाले हत्याकाण्डके समाचार बार बार सुनाई देते हैं। मुसोलिनीके प्रारम्भिक शासनकालमें कितनी ही बार उसके वधका यत्न किया गया था, इसीसे विरोधी दलके सम्बन्धमें उसकी नीति जानी जा सकती है।

संसारमें अधिनायकतन्त्र शासन-प्रणालीका भी मूल्य है; परन्तु कुछ मर्यादित समयतक ही। किसी देशमें कोई नयी शासन-प्रणाली प्रचलित होने पर जबतक वह दृढ़ और चिरञ्जीव



सोवियट रूसके प्रधान, स्टेलिन



कम्यूनिस्ट नेता—ट्राटस्की

न हो जाय तबतक उसका कोई विरोध न करे यह उचित ही है।

मर्यादित कालतक क्षम्य है

इस दृष्टिसे रूस और इटलीका वर्तमान अधिनायकतन्त्र आक्षेपार्ह नहीं है। मत-स्वातन्त्र्यके पक्षपाती अंग्रेज़ और अमेरिकन भी अपनी राज्य-प्रणालीकी स्थिरताके लिए क्रान्तिकारक कम्यूनिस्टोंके मुँह बन्द कर दिया करते हैं। सारांश यह कि चाहे जो राज्यपद्धति हो, आत्मरक्षाके विचारसे वह राज्यपद्धति विरोधी मतोंको जड़से उखाड़ देती है। यह अवश्य है कि अधिनायकतन्त्रमें इस सिद्धान्तका अतिरेक हो जाता है।

लोकतन्त्रकी तरह अधिनायकतन्त्रमें भी दोष हैं। किसी प्रबल व्यक्ति या दलके हाथमें राजसत्ता आ जाने पर यदि यह देख पड़े

परम्परा बनी रहना कठिन है

कि शासन सर्वसाधारणके हितके विरुद्ध हो रहा है, तो उस शासन-व्यवस्थाके बदल देनेका कोई साधन जनताके हाथमें नहीं रह जाता। यह नहीं कहा जा सकता कि स्टेलिन या मुसोलिनी जैसे नेताओंकी परम्परा उनके पीछे भी बनी रहेगी। सम्भव है कि उनके पाश्चात् स्वार्थी और अत्याचारी लोगोंके हाथमें राजसत्ता चली जाय। उस अवस्थामें अत्याचारोंके सहनेके सिवा जनता कुछ नहीं कर सकती। लोकतन्त्र शासन-प्रणालीमें जनताको विचार करने, उत्तरदायित्व ग्रहण करने और नेतृत्व करनेका अभ्यास रहता है, एकतन्त्र प्रणालीमें वह नष्ट हो जाता है। सारांश, मुसोलिनी-स्टेलिन जैसे नेता वर्तमान समयमें हितकारी हो सकते हैं, परन्तु यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि उनकी परम्परा आगे भी बनी रहेगी।

भारतके सामने अब प्रश्न यह है कि यदि लोकतन्त्र और अधिनायकतन्त्र दोनों सदोष हैं, तो किस पद्धतिका अङ्गीकार किया

जाय और कमसे कम दोष किसमें है? लोकतन्त्रमें म
स्वातन्त्र्यकी गुञ्जाइश है, राज्य-पद्धतिके बद
देनेकी सम्भवनीयता है और अत्याचारोंके विरु
आन्दोलन करनेका सुभीता है। इस दृष्टि

मतदान-प्रणालीका सुधार आवश्यक

अधिनायकतन्त्रकी अपेक्षा लोकतन्त्र उत्तम है; परन्तु लोकतन्त्र
नेताके चुनने और मतदान-प्रणालीका जो तन्त्र अथवा यन्त्र निर्मा
किया है, वह सदोष है। उसमें सुधार होना आवश्यक है। इ
यन्त्रकी रचना ही ऐसी है कि स्वार्थी लोग और स्वार्थी ने
उम्मेदवार होकर खड़े होते हैं और मत देनेवाले भी उन्हीं
मत देते हैं, जिनसे उनका स्वार्थ सधे। इस व्यवस्थासे अन्त
सब शासन स्वार्थमय हो जाता है। निःस्वार्थ, जनहितका विच
कर शासन करनेवाले, उच्च लक्ष्यके और विशेषज्ञ नेता ही च
जायँ और नेताओंके चुननेकी योग्यता तथा ज्ञान जिनमें हो
ही मत दिया करें, ऐसा कोई उपाय हम खोज निकालें,
पाश्चात्य लोकतन्त्रमें जो दोष हैं, उनकी पुनरावृत्ति यहाँ
होगी। लोकतन्त्रमें दो ही बातें—व्यक्तिस्वातन्त्र्य और बहुज
हितकी रक्षा—मुख्य हैं। वे अविच्छिन्न रहनी चाहिये। वर्त
मतदान-प्रणाली और नेताओंके चुननेकी रीति गौण है।
बदली जानी चाहिये। यदि ऐसा हो, तो लोकतन्त्र शासनप्रण
सफल हो सकती है। आपद्धर्म समझकर कुछ समयतक अ
नायकतन्त्र प्रणाली भले ही प्रशस्त मान ली जाय, किन्तु
तन्त्रके आधारपर जिस लोकतन्त्र-प्रणालीकी स्थापना हुई
सदाके लिए वही अङ्गीकार करने योग्य हो सकती है।

सत्ताइसवाँ अध्याय

युद्ध और शान्तिकी संभावना

अमेरिकामें हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें जब मैं व्याख्यान दिया करता था, तब लोग प्रश्न करते थे कि "क्या महात्मा गान्धीके बताये हुए शान्तिमय मार्गका ही लोग अन्त-तक अनुसरण करते रहेंगे? और क्या इस मार्गसे स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी?" मैं उत्तर दिया करता था कि "हम शान्तिके मार्गका अनुसरण करें या हिंसाके मार्गका, इसका निश्चय हमपर नहीं, पाश्चात्य लोगों-पर ही अवलम्बित है। जो भाषा पाश्चात्योंकी समझमें आ सकती हो, उसी भाषामें हमें उनसे बातचीत करनी चाहिये। अन्यथा हमारे भाव वे कुछ भी समझ नहीं पाते। गत बारह वर्षोंसे हम अहिंसावादकी भाषामें ही ब्रिटिशों और पाश्चात्योंसे बोलते आये हैं, परन्तु उस भाषाका वे अर्थ ही नहीं समझते, न उसका उनपर कुछ प्रभाव ही पड़ता है। जर्मनी हमारी ही स्थितिमें है, पराजित है और निःशस्त्र है; परन्तु उसकी भाषा झटसे आप लोगोंकी समझमे आ जाती है। अतः जो भाषा आपकी समझमें आ सके, उसीमें बोलनेका प्रयत्न कदाचित् भारतीय लोग कर रहे हैं।"

हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें प्रश्न

महायुद्धके समय सभीके मुखसे ये शब्द निकल रहे थे कि यह लड़ाई दुनियाँसे लड़ाइयोंका खातमा कर देनेके लिए लड़ी जा रही है। युद्ध-समाप्तिके बाद कुछ वर्षोंतक यूरोपवालोंके मनमें युद्धकी ओरसे घृणा रही। उस समयकी लोगोंकी करुणाजनक अवस्था, भूखों मरने और अनाथ कुटुम्बोंके बाहुल्यका चित्र उनकी

सच्ची शांति कौन चाहता है?

आँखोंके सामने खिंचा रहता था। इसलिए दुनियाँमें शांतिकी रक्षाके उद्देश्यसे अनेक संस्थाएँ स्थापित की गयीं, राष्ट्रसंघ और निरस्त्रीकरण सम्मेलनोंने इसके लिए ज़बर्दस्त कोशिशें कीं और ईसाई-धर्म-संघके उदार विचारवाले नेताओंने शांतिके अनुकूल लोकमत तैयार करनेका यत्न आरंभ किया। आज यूरोप अमेरिकामें यह स्थिति है कि साधारण जन-समाज तो युद्ध नहीं चाहता, पर दुर्भाग्यकी बात यह है कि युद्ध करने न करनेका निश्चय करना सभी देशोंमें जनसाधारणके हाथमें न होकर देशके शासन-यंत्रका संचालन करनेवाले मुट्ठी भर राजनीतिज्ञोंके हाथमें है। उन्हें शांति प्रिय न हो सो बात नहीं पर उन्हें उतनी ही शांति चाहिये जितनीसे उनको खुद कोई हानि न पहुँचे और उनकी अन्यायपूर्ण योजनाओंके चलती रहनेमें रुकावट न पड़े। स्वार्थ और सत्ताकी रक्षाके लिए तलवार उठानी हो तो इससे वे कभी पीछे हटनेवाले नहीं।

यूरोपीय राष्ट्रोंके तीन भेद

इस समय यूरोपमें तीन प्रकारके राष्ट्र हैं। इंग्लैण्ड और फ्रांस जैसे साम्राज्यवादी राष्ट्र अपनेसे छेड़कर किसीसे लड़नेवाले नहीं। कारण यह कि तत्काल उनका साम्राज्य दुनियाँ भरमें फैला हुआ है और अब उन्हें युद्धसे नया कुछ मिलनेकी आशा नहीं, उलटे कहीं हार हुई तो गांठकी पूँजी भी गँवानी पड़ सकती है। इसलिए ये राष्ट्र खुद लड़ाई नहीं छेड़ सकते, पर मौक़ा आ पड़े तो अपने साम्राज्यकी रक्षा करनेके लिए अंततक लड़नेसे पीछे न हटेंगे। दूसरा वर्ग जर्मनी, इटली जैसे राष्ट्रोंका है। इटलीकी महत्वाकांक्षा यह है कि पुराने समयके रोमन-साम्राज्यका बल वैभव उसे पुनः प्राप्त हो और जर्मनी चाहता है कि उसके देश की सीमा रूसकी सरहदके भीतर जा घुसे। ये राष्ट्र कभी

कभी लड़ाई छेड़कर ही रहेंगे। जबतक उनकी ज़बर्दस्त तैयारी-की योजना पूरी नहीं हो जाती तभीतक दुनियाँमें शांति रहेगी।* हाँ, बेल्जियम, स्विटज़रलैण्ड, डेनमार्क आदि छोटे राष्ट्र ही सच्चे मनसे शांति चाहते हैं। मंचूरियाके मामलेमें जापानकी आक्रमण-नीतिका इन्हीं नन्हें राष्ट्रोंने विरोध किया, इंग्लैण्ड, फ्रांस जैसोंने नहीं, पर बलवानोंके 'धरमधक्के' में इन बेचारे छोटे राष्ट्रोंको कौन पूछता है!

तात्पर्य यह कि जबतक दुनियाँका नक़शा बदल नहीं जाता, तबतक उसमें शांतिका राज्य स्थापित होना संभव नहीं। इंग्लैण्ड, फ्रांस जैसे देश जबतक खुद बड़े बड़े उपनिवेश दबाये बैठे हैं, तबतक जर्मनी, इटली और जापान जैसे राष्ट्रोंके मनमें भी यही महत्वाकांक्षा बनी रहेगी और युद्धका अग्निकुण्ड कभी ठंढ़ा न होगा, भीतर भीतर सुलगता ही रहेगा। खुद बड़े बड़े साम्राज्योंके मालिक बने रहकर इंग्लैण्ड और फ्रांस, जापान, जर्मनी जैसोंको अपनी महत्वाकांक्षाकी पूर्त्तिसे नहीं रोक सकते। इस कारण इन देशोंकी साम्राज्य-तृष्णा बढ़ती ही जायगी और कलहका बीज दुनियाँमें बना रहेगा।

इस समय यूरोपमें भ्रमण करनेवालेको वहाँ शांतिकी अपेक्षा युद्धकी तैयारी ही अधिक होती दिखाई देती है। स्कूल

युद्धकी तैयारी और विरोध

कालेजोंमें अनिवार्य सैनिक-शिक्षा चल रही है और युवकोंकी मनोवृत्ति युद्धके अनुकूल बनायी जा रही है। हवाई हमला होनेपर लोग किस तरह आत्मरक्षा कर सकते हैं, इसकी शिक्षा दी जा रही है।

*लेखककी यह भविष्यद्वाणी सत्य प्रमाणित हुई। इटलीने अबीसी-नियासे युद्ध कर उसे अपने साम्राज्यमें मिला ही लिया। इधर जर्मनी भी अपने खोये हुए उपनिवेशोंको पुनः प्राप्त करनेके लिए सचेष्ट है।—सं०

जल, स्थल और वायु-युद्धकी शिक्षाके लिए नक़ली लड़ाइयाँ हो रही हैं। हरएक राष्ट्र अपनी अपनी युद्धसामग्री बढ़ानेमें लगा है। प्रयोगशालाओंमें विद्वान् प्रोफेसर प्राणसंहारक गैसें और किरणें बना रहे हैं। मुसोलिनी हिटलर जैसे अधिनायक अपनी जनताकी मनोभूमिको युद्धके बीज बोने लायक बनानेका यत्न कर रहे हैं। गोला-बारूद और तोप-बंदूकें बनानेवाले कारखाने ग्राहक पाकर अपनी अपनी थैलियाँ भरनेमें लगे हैं। इस सारी परिस्थितिकी भट्ठीसे महायुद्धके सिवा और कौनसी चीज़ ढलकर बाहर निकल सकती है? पर इस नये युद्धके अवसरपर जनताकी ओरसे राजनीतिज्ञोंकी योजनाओंका विरोध होगा, यह आशा रखी जा सकती है। हर एक देशमें कितने ही शांतिवादी नेता हैं और उन्होंने अभीसे कह रखा है कि लड़ाई छिड़ी तो हम हथियार न उठावेंगे, उल्टा उसका विरोध करेंगे। ईसाई धर्मसंघ (चर्च) ने आरंभसे ही विरुद्ध सुर निकाला है और यह निश्चय है कि ऐन वक्तपर उसका परिणाम भी राष्ट्रका तेजोभंग करनेवाला होगा। अमेरिका, इंग्लैण्ड और फ्रांसमें जो विद्यार्थी-आंदोलन चल रहे हैं उनमें "हम अगली लड़ाईमें शामिल न होंगे" कहनेवालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है।

समाजवाद और भीतरी क्रांतिकी संभावना

उक्त तीनों देशोंमें समाजवादी और कम्यूनिस्ट दल मौजूद हैं और फिर कोई महायुद्ध छिड़नेपर वे देशका शासनसूत्र हथियानेकी कोशिश किये बिना रहनेवाले नहीं। अगली लड़ाईमें राष्ट्रीय सरकारोंको श्रमजीवी वर्गसे जितनी चाहिये उतनी सहायता और समर्थन मिलनेका नहीं, उलटे इसकी बहुत संभावना है कि युद्ध जारी रहते ही रूस और जर्मनीमें जिस तरह समाजवादी और सोशल डेमोक्रेटिक क्रांतियाँ हो

गयीं, इंग्लैण्ड, फ्रांस और अन्य देशोंमें भी वैसा ही हो। गत महायुद्धमें समाजवादियोंका बल जिस तरह बढ़ा था, भावी युद्धमें वह उससे भी अधिक बढ़ेगा यह निश्चित है।

पर जिन लोगोंकी मनोवृत्ति आज युद्धके विरुद्ध है वे तोपोंका गर्जन आरंभ हो जानेके बाद भी लड़ाईके विरोधी बने रहेंगे, इसका कोई निश्चय नहीं। कारण, मनुष्यका स्वभाव भाव-प्रधान है; जब अपने देशपर अन्य देशका राज्य स्थापित होनेकी आशंका हो, उस समय मनको क़ाबूमें रखकर अपने शांतिवादपर दृढ़ रह सके, इतना मनोबल इने गिने आदमियोंमें ही होता है। इसलिए युद्धका आरंभ अगर एक मतसे हुआ तो भी उसका अंत कुछ देशोंमें भीतरी क्रांतिके रूपमें होगा, ऐसा अनुमान होता है।

हम क्या करें ?

भारतके विषयमें विचार करते समय केवल भारत और इंग्लैण्डके सम्बन्धका विचार करनेसे काम न चलेगा। कारण, इन दोनों देशोंका झगड़ा मिट जानेपर भी भारतका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बना रहेगा। पूर्वमें जापान और पश्चिममें जर्मनी–इटली जैसे साम्राज्यवादी आक्रमणशील और महत्वाकांक्षी राष्ट्रोंसे भारतका वास्ता लगा है। ये राष्ट्र शांतिकी भाषा नहीं समझते और अभी कमसे कम १०० सालतक समझेंगे भी नहीं। अतः उनके साथ व्यवहार करनेमें शांतिवादका अवलंबन करनेसे काम नहीं चलनेका, उनसे तो उन्हींकी बोलीमें बोलना होगा। भारत शांतिवादी और आदर्शवादी है किन्तु अपनी इस विशेषताकी रक्षा करते हुए भी दूसरे राष्ट्रोंसे लड़नेका बल उसे अपनी भुजाओंमें उत्पन्न करना चाहिये। अंतर इतना ही होगा कि दूसरे राष्ट्र जहाँ अपने बलका प्रयोग दुर्बलोंका दलन करनेमें कर रहे हैं वहाँ भारत

उसका उपयोग आत्मरक्षण और दुर्बलोंकी सहायता करनेमें करेगा। यह सच है कि वह समय अभी बहुत दूर है पर उसकी ओर दृष्टि रखकर ही हम अपने आजके प्रश्नोंको हल कर सकेंगे। युद्ध और शांतिके सम्बन्धमें राष्ट्रके सिद्धान्त भविष्यकी ओर दृष्टि रखकर निश्चित होने चाहिये। शांतिके यत्नका अर्थ बल और सामर्थ्यसे दूर भागना नहीं होता, क्षात्रतेज और शांति परस्पर विरोधी नहीं हैं। भारत अपने युवकोंको जल-स्थल और वायु-युद्धकी शिक्षा दिलावे तो इससे उसके शांति-वादी बने रहनेमें कोई बाधा न होगी। इस प्रकार अपने युवकों-में क्षात्रतेज, सैनिक मनोवृत्ति और बलकी भावना उत्पन्न करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। पर इसके साथ ही उन्हें ऐसे सिद्धांत और विचार भी देना चाहिये जिससे वे इस बलका ठीक प्रकारसे उपयोग कर सकें, अन्यथा लक्ष्यहीन बलका उपयोग जिस तरह अन्यत्र नर-संहारमें हो रहा है उसीकी आवृत्ति अपने यहाँ भी होगी।

अठाइसवाँ अध्याय

संपत्तिका मालिक कौन है ?

पुरुषार्थकी कल्पनामें परिवर्त्तन

श्रीरामचंद्रके ऐसा सात्विक-वृत्तिका राजा भी दिग्विजयकी महत्वाकांक्षासे अछूता न रह सका। उन्होंने अपना घोड़ा सारी पृथ्वीपर स्वच्छंद घूमनेके लिए छोड़ दिया और घोषणा की कि मैं इस विश्वका एक मात्र विजेता हूँ। सिकंदर जब अपनी कल्पनाके अनु-सार सारी दुनियाँको जीत चुका तो यह सोचकर उदास हुआ

कि अब जीतनेको और कुछ बाक़ी न रहा। विश्वविजयी कहानेके लिए ही जीवन समर्पण कर देनेवाले अनेक पुरुष इतिहासमें हो गये हैं। उस समयकी पुरुषार्थकी कल्पना ही ऐसी थी। प्रत्येक युगमें पुरुषार्थ और कर्तृत्वके विषयमें कोई विशेष कल्पना होती है। मानव-जीवन और मनोविकासके इतिहासका सिंहावलोकन करनेसे ऐसा दिखाई देगा कि पुरुषार्थकी कल्पनामें बराबर उत्क्रान्ति और परिवर्तन होता आ रहा है। एक युग पराक्रम, सिपाहियाना कारनामे और दिग्विजयकी महत्वाकांक्षाका रहा। उसके बादके युगमें अखिल भू-मण्डल धर्म-प्रसारकी महत्वाकांक्षासे व्याप्त दिखाई देता है। दूसरे देशोंपर चढ़ाई करके उन्हें जीतनेके बराबर ही महत्व अन्य समाजोंको अपने धर्म-साम्राज्यमें ले आनेके विचारको दिया गया। ईसाई धर्मका शान्ति और जोर-जुल्मके द्वारा प्रचार करनेवाले नरेश, तलवारके ज़ोरपर सारी दुनियाको इस्लामके झण्डेके नीचे लानेको निकले हुए मुसलमान और प्रेमके बलपर अपने धर्म-साम्राज्यका विस्तार करनेवाले अशोक जैसे बुद्धानुयायी सब एक ही युगकी विशेष कल्पनासे प्रेरित थे। इस युगकी कल्पनाके अनुसार धर्म-प्रचार ही प्रधान पुरुषार्थ था। परन्तु आजके युगमें केवल कीर्तिलाभ या धर्म-प्रचारके लिए दिग्विजय करनेका विचार पीछे छूट गया है। कल्पनाके सहारे प्राचीन युगमें रहनेवाले और वर्तमान कालकी ओरसे आँखें बन्द रखनेवाले थोड़ेसे आदमियोंको छोड़कर और लोगोंको इस दिग्विजयकी कल्पनासे विशेष उत्साह नहीं उत्पन्न होता।

आजका युग आर्थिक महत्वाकांक्षाका है। प्रचुर धन-संग्रह किया जाय, व्यापार-व्यवसाय बढ़ाया जाय, कारखाने खोले जायँ, विदेशोंपर व्यापार-साम्राज्य स्थापित किया जाय, वहाँ

पूँजी लगायी जाय, हर एक आदमी धनी हो जाय और दुनियाके सुख भोगे, यह युग इस प्रकारके पुरुषार्थका है। आज क्या व्यक्ति, क्या समाज और क्या साम्राज्य सभीकी दौड़-धूप आर्थिक प्राधान्य प्राप्त करनेके लिए ही है। तेलकी खानें, कोयलेकी खानें, व्यापारके बाजार, आजका संघर्ष इन्हींको लेकर है। सार यह कि शौर्य, पराक्रम और धर्मको छोड़कर मानवजातिने 'अर्थ' को पुरुषार्थ मान लिया है। यह युग भी बहुत दिन रहनेवाला नहीं। कुछ शताब्दियोंमें 'अर्थ-युग' 'संस्कृति-युग' के लिए जगह खाली कर देगा। धनार्जन गौण हो जायगा और व्यक्ति तथा समाजकी पुरुषार्थकी कल्पना साहित्य-सङ्गीत-कलाकी वृद्धि करना और उस कलाको आत्मसात् कर लेना हो जायगी। बल्कि यों कह सकते हैं कि चर्पटपंजरी के पुरुषकी अभिरुचि बाल्य, तारुण्य और वार्द्धक्यमें जिस प्रकार विकसित होती है वही स्थिति मानवजातिकी भी है।

'अर्थ' प्रधान युग

'अर्थ' आजके युगकी विशेषता है, भारतीयोंको यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये। सारी दुनियाका प्रयास आज उसीके लिए है। जो जाति इसमें पीछे रहेगी वह सदाके लिए पीछे छूट जायगी। यह सच है कि पैसेको ही पुरुषार्थका लक्ष्य बनाना जड़वादका लक्षण है, पर शेष संसारके साथ रहनेके लिए इस लक्ष्यको स्वीकार किये बिना अपने निजके अध्यात्म-प्रधान लक्ष्यको देख सकना सम्भव न होगा। दुनियाँमें जीवित रहनेके लिए व्यक्ति और समाजमें कुछ सर्वसामान्य और कुछ विशेष गुण होनेकी आवश्यकता होती है। सामान्य गुणोंके सहारे वे जीवित रहते और विशेष गुणोंके बलपर दूसरे व्यक्तियों तथा समाजोंपर अपनी छाप डालते हैं।

सामान्य और विशेष गुण

यूरोप अमेरिकामें भ्रमण करनेवालेको ऐसा दिखाई देगा कि इस समय वहाँकी सारी दौड़-धूप; सारा प्रयास-प्रयत्न 'अर्थ'के उद्देश्यसे ही हो रहा है। देशके भिन्न-भिन्न दलोंका संघटन और विभाजन आर्थिक सिद्धान्तोंपर ही हुआ है, और देशकी शासन-व्यवस्थाका सङ्गठन भी उन विशेष आर्थिक सिद्धान्तोंके आधार-पर ही हो रहा है। प्रत्येक देशमें आर्थिक सिद्धान्तोंके आधारपर समाजवादी और पूँजीवादी दल बन गये हैं और राजशक्ति हस्त-गत करनेके लिए उनमें सङ्घर्ष चल रहा है।

संपत्तिके विषयमें पुरानी कल्पना

धन-संपत्तिके स्वामित्व और उपयोगके विषयमें मनुष्योंके विचार बराबर बदलते जा रहे हैं। समाजकी एकदम आदिम अवस्थामें यह माना जाता था कि जो कुछ जिसके हाथ पड़ जाय वह उसकी निजी संपत्ति है और वह चाहे जिस तरह उसका उपयोग कर सकता है। राजा और सरदार अपने धनको चाहे जैसे उड़ावें-पड़ावें, किसीकी हिम्मत नहीं कि उसका विरोध करे। इसी प्रकार व्यक्तिको भी अपनी कमाईका मनमाना उपयोग करनेकी पूर्ण स्वाधीनता थी। इसके बादके युगमें उच्च धर्म बुद्धि-का उदय हुआ और उससे लोगोंके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि व्यक्तिगत संपत्तिका लाभ संपूर्ण समाजको मिलना चाहिये। अपने खाने पहननेसे बचे हुए धनको यह समझकर रख छोड़ो कि वह किसी औरके काम आ जायगा और दानधर्म करो। भोगकी अपेक्षा त्याग अधिक श्रेष्ठ है, धर्मने इस विचारका प्रचार किया और इस तरह संचित धनके समाजमें पुनः वितरित होने-का उपाय किया। इस दानधर्म और त्यागवृत्तिका महत्व इतना बढ़ा कि कुछ समाजोंमें कुछ समयतक राजाओंमें अपना सारा ख़ज़ाना दान द्वारा खाली कर देने और पुनः धनसंग्रह कर

उसे भरनेकी परम्परा चलती रही। महाराज अशोकके ऐसा करनेके दृष्टांत इतिहासमें प्रसिद्ध हैं।

दान और धर्मभावसे समाजमें संपत्तिका वितरण होता रहा सही पर उसकी एक हद थी। इसलिए आगे चलकर इस सिद्धान्तकी उत्पत्ति हुई कि सम्पत्ति और सम्पत्तिके उत्पादनके साधनोंपर व्यक्तिका नहीं समाजका स्वत्व है और इस सामाजिक सम्पत्तिका लाभ समाजके अन्तर्गत सब व्यक्तियोंको मिलना चाहिये। धनका उपयोग उसे बटोरकर रखनेमें नहीं है, किन्तु इसमें है कि समाज उसका उपभोग कर सके। हमारे पुरखा किसी स्थानमें औरोंसे पहले आ बसे तो इस कारण वहाँकी ज़मीन हमारी मिलकियत नहीं हो गयी। बाप-दादेकी कमाई किसीको मिल जाय तो उसपर उसका व्यक्तिगत अधिकार नहीं हो जाता। उस सारे धनका उपयोग श्रम करनेवाले और धनोत्पादनमें सहायता करनेवाले व्यक्तियोंको होना चाहिये।

वर्तमान युगकी कल्पना

सम्पत्तिके विषयमें ऊपर जो तीन कल्पनाएँ बतायी गयी हैं उनमेंसे कौन खरी है और कौन खोटी है, इसका निर्णय करना कठिन है। यह अपने-अपने मनकी और मान लेनेकी बात है। समाजका लक्ष्य ऐसा होना चाहिये जिसमें प्रत्येक व्यक्तिमें पुरुषार्थकी महत्वाकांक्षा रह सके और मानव अन्तःकरणसे धर्म, न्याय, दया आदि उच्च भावनाओंका लोप न हो जाय। सम्पत्तिकी जो कल्पना और जो आर्थिक सिद्धान्त इस लक्ष्यके अनुकूल हो उसे स्वीकार करना चाहिये।'

पुराणोंके समाजमें नारद महाराज चुगली खाकर झगड़ा लगाया करते थे। आजके समाजमें कलें कलह करा रही हैं। सारे आर्थिक आन्दोलनों और अशान्तिकी जड़में यही यन्त्रोंका

आविष्कार है। उनका उचित उपयोग न हो सकनेके कारण मानवजीवनका माधुर्य नष्ट हो गया-सा दिखाई दे रहा है। यन्त्रकलाकी उन्नति जितनी तेज़ीसे हुई मनुष्यके मनकी इतनी तेज़ीसे नहीं हुई, इस कारण आज सारी दुनियाँ आर्थिक उलझनोंमें फँस गयी है।

कलोंसे कलह

यन्त्रके आविष्कारसे हाथके धन्धे पीछे रह गये। छोटेमोटे घरेलू धन्धे नष्ट हो गये और बड़े-बड़े कल-कारखाने खुल गये और वे थोड़ेसे आदमियोंकी सम्पत्ति हो गये। मालिक नौकर हो गये और किसान मज़दूर बन गये। कारखानोंकी मालिकी जिन थोड़ेसे आदमियोंको मिली वे लखपती करोड़पती हो गये। दूसरोंकी मेहनतका नफ़ा उनके पल्ले पड़ने लगा। इस प्रकार थोड़ेसे आदमियोंके पास प्रचुर धन सञ्चित हो गया और समाजमें आर्थिक विषमताकी उत्पत्ति हुई। जिस देशमें यान्त्रिक उन्नति अधिक हुई वहाँ आर्थिक वैषम्य भी अधिक तीव्र रूपमें है। आज अमेरिकाकी ऐसी स्थिति है कि दस प्रतिशत आदमियोंके पास नब्बे प्रतिशत सम्पत्ति है और शेष दस प्रतिशत सैकड़े पीछे नब्बे आदमियोंमें बँटा है। इस कारण यह स्थिति हो गयी है कि देश धनी है पर लोग ग़रीब हैं।

यान्त्रिक उन्नति और स्वार्थ-मूलक व्यक्तिवादके प्रचारका काल एक साथ ही आया। प्रत्येकके अपने-अपने स्वार्थकी चिन्ता करनेसे समाजका स्वार्थ अपने-आप सध जायगा, व्यक्तिकी ऐहिक उन्नति होनेके लिए पहले उसे पूर्ण स्वाधीनता मिलनी चाहिये, समाजका कोई बन्धन उसपर न रहना चाहिये—इन विचारोंका प्रचार आरम्भ हुआ और इस विचारधाराको 'व्यक्तिवाद' (इनडिवीजुअलिज़्म) का नाम दिया गया। इस व्यक्तिवादको

स्वार्थमूलक व्यक्तिवाद

आधुनिक यान्त्रिक उन्नतिकी सहायता मिलते ही बुद्धिमान, कार्य-कुशल पर स्वार्थी मनुष्योंने समाजको निचोड़ कर सम्पत्तिका बड़ा भाग अपने हाथमें कर लिया। इस प्रकार पूँजीपति नामसे एक नये वर्गकी उत्पत्ति हुई। पहलेकी धर्मभावनाका स्थान अब स्वार्थमय व्यक्तिवादने ले लिया, इसलिए धन कमानेमें हम किन साधनोंका उपयोग कर रहे हैं, और दूसरे मनुष्योंके साथ किस तरह व्यवहार करते हैं, इस ओर किसीका ध्यान न रहा। इस कारण यन्त्रचालित उद्योगोंमें अमानुषिक पद्धतिका प्रवेश हुआ और इस प्रवृत्तिके प्रतिक्रिया रूपमें पाश्चात्य देशोंमें समाज-सत्तावादने जन्म लिया। स्वार्थ, निष्ठुरता, मानवजीवनकी ओरसे लापरवाही, ये दोष आधुनिक यान्त्रिक उद्योगोंमें न होते तो आज समाजवादको इतना ज़ोर न मिला होता। सारांश, समाज-वादका जन्म स्वार्थमूलक व्यक्तिवादके प्रतिक्रियारूपमें हुआ है। समाजकी घड़ीका पेंडुलम पहले एक सिरेपर चला गया था, अब दूसरेपर चला गया है और जबतक फिर बीचमें न आवे, वहीं रहेगा।

सन् १९१९ ई० में रूसमें जो विराट क्रान्ति हुई उसकी छाया पश्चिमकी ओर यूरोप, अमेरिकापर और पूर्वमें एशिया महादेशपर भी पड़ी है। रूसने अपनी समाज-वादी क्रान्तिसे दुनियाँके भावी इतिहासको एक नयी दिशामें मोड़ दिया। समाजवाद वर्तमान कालकी आर्थिक अवस्थाका परिणाम है, लोक नेता इस बातको ध्यानमें रखकर अपनी नीति निर्द्धारित करें तो बहुतसे भावी अनर्थ टल जायँ और समाजको क्रान्तिके भूकम्प सदृश धक्के न लगें।

रूसकी छाया

यूरोप-अमेरिकाके सभी देशोंमें आज समाजवादकी कुछ न कुछ झलक मिलने लगी है। पूँजीपति वर्गपर सौम्य सरकारी

नियन्त्रण स्थापित करनेसे लगाकर सारी ज़मीन, सम्पत्ति और कारखाने सरकारके अपने हाथमें ले लेनेतक समाजवादके अनेक स्वरूप हैं। यह बवण्डर आज नहीं तो कल अपने देशमें भी आकर रहेगा, यह सोचकर उसके कुछ आवश्यक तत्वोंका समावेश शासन-पद्धतिमें कर लेनेका यत्न यूरोपके सभी देशोंमें आरम्भ हो गया है। अमेरिका पूँजीवादका गढ़ और रूसकी स्थितिकी बिलकुल दूसरी सीमा समझा जाता है। पर वहाँ भी राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा निर्द्धारित कार्यक्रम (एन. आर. ए.) (नैशनल रिकवरी एडमिनिस्ट्रेशन) पूँजीवादका नियन्त्रण कर रहा है और इस कारण विरोधी आलोचक उसे समाजवादके सिद्धान्तपर तैयार किया गया बता रहे हैं। इंग्लैण्ड और फ़्रान्समें भी समाजवादियोंका बल बढ़ता जा रहा है और आज नहीं तो कल राष्ट्रीय नीति और कार्यकलापपर उनका असर अवश्य पड़ेगा। जर्मनीने अपने नाज़ी आन्दोलनको "नैशनल सोशलिज्म" अथवा राष्ट्रीय समाजवादका नाम दिया है और मौक़ा मिलनेपर निजी व्यवसायों तथा पूँजीपर नियन्त्रण स्थापित करनेकी बात यहाँ भी कही जाती है पर दस बीस बीघेकी खेती और छोटी निजी सम्पत्तिको हाथ लगानेकी नीतिको जर्मनीने सिद्धान्ततः स्वीकार नहीं किया है। उसका विचार समाजवादकी सीमा केवल बड़े व्यवसायोंतक ही रखनेका है। पूँजीपतियोंके विरोधके कारण यह विचार अभी कार्यान्वित न हो सका और आगे भी होगा या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं।

सारांश, भावी आर्थिक पुनस्संघटनमें संपत्तिपरसे वैयक्तिक स्वत्व हटाकर उसकी जगह समाजका अधिकार स्थापित करनेकी प्रवृत्ति तत्काल पश्चिमी देशोंमें दिखाई दे रही है। पूँजीपतियों और व्यवसायोंपर सरकारी नियंत्रण स्थापित होना इस

आंदोलनकी पहली सीढ़ी है। छोटी बड़ी सब तरहकी निजी संपत्ति समाजके अधीन कर ली जाय, दुनियाँके इस अति सीमातक जानेकी संभावना नहीं दिखाई देती। ऐसा जान पड़ता है कि अनियंत्रित निजी संपत्ति और संपूर्ण समाज-सत्ता इन दोनोंके बीचमें दुनियाँ कहीं न कहीं थमेगी। सर्वथा अनियंत्रित पूँजी-पद्धतिमें कमजोर, अधिकारहीन, अज्ञान, कष्टसे जीवन यापन करनेवाला और सार्वकालिक दारिद्र्यमें रहनेवाला श्रमजीवी वर्ग सामाजिक अधिकारोंसे वंचित रहता है। संस्कृतिकी दृष्टिसे प्रत्येक व्यक्तिको उच्चतम आत्म-विकासका अवसर मिलना चाहिये, पर पूँजीवादी व्यवस्थामें साधारण जन-समाजको यह अवसर नहीं मिल सकता, इसलिए आगे चलकर वह अवश्य अनिष्ट और त्याज्य समझी जायगी। पूँजीवादी समाज-रचनाका अनुभव प्राप्त करनेके लिए समाजको पिछली दो शताब्दियोंका समय मिल चुका, समाजवादी व्यवस्थाके लिए अभीतक यह बात नहीं हुई। पर जैसे सभी अच्छी व्यवस्थाओंमें आगे चलकर गुणदोष उत्पन्न होते और समाजको उसे बदलना पड़ता है वैसे ही समाजवादके विषयमें भी होगा। अपने पास एकाध टुकड़ा ज़मीन, कोई छोटा मोटा घर, चार चीज़-वस्तुएँ हों, यह इच्छा मनुष्य मात्रमें होती है। अमुक क्षेत्रमें मैं राजा हूँ, उसमें जो मेरे जीमें आयेगा करूँगा, समाज उसमें टाँग न अड़ावे—कुछ लोगोंकी यह मनोवृत्ति होती है। कुछ विशेष मनोवृत्तिके मनुष्योंको स्वामित्वकी कल्पनासे सुख मिलता है, चाहे उस स्वामित्वका क्षेत्र कितना ही परिमित क्यों न हो, दूसरोंके हिसाबसे बिलकुल नन्हा-सा हो तो भी कोई हर्ज नहीं। स्वामित्वके एक सिरेपर जाकर कुछ लोगोंने उसका दुरुपयोग किया तो समाज इस कारण साम्यकी

दुनियाँका व्यावहारिक रास्ता

दूसरी अतिसीमापर पहुँच गया है। आर्थिक दृष्टिसे इन दोनों अति-सीमाओंके बीच कहीं स्थिर होनेके लिए वह हिलकोरे खाता रहेगा।

पाश्चात्य मनोवृत्ति और भारत

यांत्रिक उन्नतिके पीछे पीछे उसका बच्चा समाजवाद भी भारतमें लगा आया है। इस देशमें पाश्चात्य देशोंके बराबर कल-कारखानोंका विस्तार होनेके पहले ही यदि हम भावी स्थितिका अनुमान कर तदनुकूल अर्थ-शास्त्र और समाज-व्यवस्थाका निर्माण कर लें तो राष्ट्रका बहुत-सा समय, श्रम और जनबल व्यर्थ नष्ट होनेसे बच जाय। लोगोंके खूब कष्ट भोग चुकनेके बाद ही नयी व्यवस्था हो सके, इससे हमारा देश बच जाय।

सञ्चित सम्पत्तिके समाजमें पुनः वितरित होनेके जो दो मार्ग हैं हम उनके सन्धिकालमें खड़े हैं, पूर्वकालके समाजमें धर्मभाव और भूतदयाकी सहायतासे ग़रीब और विपद्ग्रस्त वर्गका कष्ट घटाया जाता था पर आजके समयमें इन भावनाओं-में उतना बल नहीं रहा। वह होता और वर्द्धमान मात्रामें होता, तो भावी समाजवादका ज़ोर बहुत कुछ घटा रहता। परन्तु आज तो धर्म, परोपकार और भूतदयाकी भावनाकी अपेक्षा पाश्चात्य देशोंसे आये हुए स्वार्थनिष्ठ व्यक्तिवादका ही प्रभाव हमारे मनपर अधिक पड़ रहा है। इसलिए उन देशोंमें श्रम-जीवी वर्गमें इस मनोवृत्तिकी जो प्रतिक्रिया हुई वही अपने यहाँ भी होगी, यह अनुमान करनेमें तनिक भी आपत्ति नहीं हो सकती। उसके लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं। मालिकों मज़-दूरोंके झगड़ोंमें पश्चिमके वर्ग-संघर्षकी आवृत्ति यहाँ भी हो रही है। ऐसी स्थितिमें पूँजीवादी और मज़दूरके सम्बन्धमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' देखनेवाले हिन्दू अध्यात्मशास्त्रकी दृष्टिसे नहीं वरन्

वैयक्तिक स्वार्थपूर्ण जड़वादी दृष्टिसे काम लिया जाता है। ऐसी स्थितिमें हमारे भावी आर्थिक-सिद्धान्त क्या होने चाहिये, यह प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होनेवाला है।

समाजवादकी मात्राएँ

पाश्चात्य देशोंके अनुभवोंकी ओर देखनेसे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारे देशमें भी सूक्ष्म वा स्थूल रूपमें, समाजवादके सिद्धान्तोंका प्रवेश होकर ही रहेगा। इस यन्त्र-युगमें निजी सम्पत्ति और धनोत्पादनपर नियंत्रण न होनेसे ग़रीब जनताकी दुर्दशा होती है, इसलिए इनपर कुछ न कुछ नियन्त्रण होना आवश्यक है। निजी सम्पत्ति तथा कमाईपर नियन्त्रण रखना और साधारण जनताका हित देखनेकी दृष्टि स्वीकार करना सूक्ष्म रूपमें समाजवादी नीतिका ही रूपान्तर है। उसीको अति सीमातक लेजायँ तो रूसकी तरह घरद्वार खेती-रोज़गार सबको सरकार अर्थात् समाजके अधिकारमें ले लेना होगा। पर ऐसी आत्यन्तिक वृत्ति भारतवासियोंके मनको रुचेगी, ऐसी आशा नहीं होती। जिस व्यवस्थामें किसी न किसी अंशमें निजी सम्पत्ति और स्वामित्वके लिए अवकाश रहे—उनपर कितना ही नियन्त्रण क्यों न हो,—वही व्यवस्था हमारी मनोवृत्तिके अनुकूल होगी। छोटा ही क्यों न हो पर अपने पास निजका ज़मीनका कोई टुकड़ा और कोई छोटा-मोटा निजी मकान हो, यह इच्छा हर एकके मनमें रहती है।

हम समाजवादको कितनी मात्रामें स्वीकार करें, यह प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है। हमारी वर्तमान पीढ़ीके लिए यह संभव है कि भावी परिस्थितिको ध्यानमें रखकर यान्त्रिक उन्नतिके साथ आनेवाली बुराइयोंसे बचनेके लिए भविष्यमें स्थापित होनेवाले उद्योग-धंधोंका उचित नियंत्रण करे। यन्त्रका उपयोग

यह है कि आदमीकी मेहनत बचे और काममें कम समय लगे, पश्चिमी देशोंमें मालिकोंने यह बात ध्यानमें नहीं रखी, इसीसे मज़दूर वर्गकी दुर्दशा हुई है। भारतने यदि अपने उद्योग-धंधोंकी भावी वृद्धिमें इस सिद्धान्तका अनुसरण किया तो यहाँके मज़दूर यान्त्रिक उन्नतिकी बुराइयों और विपत्तियोंसे बच जायँगे। हमारे औद्योगिक क़ायदे-क़ानून इसी दृष्टिसे बनाये जाने चाहिये। दूसरी बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि उद्योग व्यवसायोंपर अनियन्त्रित व्यक्तिगत स्वत्व बढ़ता गया तो आगे चलकर वह झगड़ेका घर बन जाता है। इसलिए आजसे ही अगर नये उद्योग-धन्धोंपर समाजका नियन्त्रण स्थापित हो जाय तो अत्यधिक स्वार्थ, नफ़ाखोरी और श्रमजीवी वर्गके हिताहितके विषयमें उदासीनता दिखानेकी बुराइयोंका प्रतिबन्ध हो जायगा। ये सिद्धान्त कैसे और किस रूपमें कार्यान्वित किये जायँ, इसको तै करना समाजके नेताओं तथा राजनीतिज्ञोंका काम है। इतनी बात पक्की है कि देशमें आगे चलकर होनेवाली आर्थिक एवं औद्योगिक उन्नतिको इष्ट रूप देने और पश्चिमके दोषोंसे बचनेकी दृष्टिसे हमें अभीसे इसका विचार आरम्भ कर देना चाहिये कि अर्थशास्त्र तथा आर्थिक समाज-रचनाके सिद्धान्त कैसे होने चाहिये।

उनतीसवाँ अध्याय

यांत्रिक उन्नतिके विषयमें पश्चिमका अनुभव

भारतमें यन्त्रयुगका आरम्भ आटा पीसनेकी चक्कीसे हुआ। चक्कीका दूसरा पर्याय 'जाँता' संस्कृतके 'यन्त्र' से बिगड़ कर

बना है। आदमीकी मेहनत घटाने और थोड़े समयमें काम कर लेनेका साधन ही यंत्र है। न्यू-यार्कके औद्योगिक संग्रहालयमें प्रवेश करते ही दर्शकको जो दृश्य देखनेको मिलता है वह है चक्की पीसनेवाली दो मारवाड़ी स्त्रियोंका और इसका कारण शायद यही है कि 'जाँता' यन्त्रयुगका प्रतीक है। चक्की, सिलबट्टा और ओखलीका आविष्कार तो हमने कर लिया पर हमारी यान्त्रिक प्रगति इसके आगे नहीं गयी, क्यों नहीं गयी इसका विचार हमें करना चाहिये। जो हो, इतनी बात पक्की है कि पुराने समयके भारतवासी यान्त्रिक उन्नतिके विरोधी न थे।

चक्की और यन्त्र-युग

उन्नीसवीं शताब्दीमें यूरोप तथा अमरीकामें भौतिक-विज्ञानकी उन्नति हुई और इस विज्ञानकी सहायतासे यान्त्रिक उन्नति तेज़ीसे होने लगी। वैज्ञानिक खोजोंकी प्रसिद्धिका साधन छापेखानोंसे मिला। उच्च शिक्षा-संस्थाओंमें शुद्ध विज्ञान तथा औद्योगिक विज्ञानकी पढ़ाई आरम्भ हुई और इससे वैज्ञानिक अनुसन्धानके कार्यको बहुत ही प्रोत्साहन मिला। एककी खोज तुरन्त दूसरेको और उसकी इसे मालूम होने लगनेसे वैज्ञानिक अनुसन्धानके कार्यमें एक साथ हजारों लाखों दिमाग़ोंकी सहायता मिलने लगी। पहले जहाँ एक एक खोजमें एक एक युग लग जाता था, वहाँ आज यूरोप अमेरिकाकी अनुसन्धान-शालाओंमें प्रतिदिन सैकड़ों खोजें और आविष्कार हो रहे हैं, और पत्र-पत्रिकाओंके द्वारा हजारों-लाखों लोग उन्हें पढ़ते हैं। अनुसन्धानके साधन बढ़नेसे इस कार्यकी गति प्रतिवर्ष अधिक तेज़ होती जा रही है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि मानव इतिहासमें पिछले एक हजार सालमें जितनी वैज्ञानिक प्रगति हुई थी, उससे अधिक प्रगति

यान्त्रिक उन्नतिकी गति

गत ३० वर्षोंमें हो गयी है। अबतक इस खोजमें यूरोप अमेरिका और स्वल्प प्रमाणमें एशियाके जापान भारत जैसे देश ही शामिल हुए हैं। संसारके दूसरे भागोंके लोग भी जब विद्या-सम्पन्न होकर इस प्रगतिमें हाथ बढ़ाने लगेंगे, उस समय दुनियाँ कहाँ जा पहुँचेगी इसकी हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं।

पश्चिमवालोंके अनुभवोंसे शिक्षा ग्रहण

वैज्ञानिक अनुसन्धान और यान्त्रिक उन्नतिका क्रम आगे भी चलता ही रहेगा। यह मानव-प्रवृत्ति है जिसे कोई रोक नहीं सकता। कोई आदमी यदि अपने हाथमें अधिकार लेकर इस यान्त्रिक युगकी घड़ीकी सुईको एक हजार साल पीछे कर दे तो भी वह पहलेसे भी अधिक वेगसे दौड़ती हुई आगेको जायगी। अतः यान्त्रिक उन्नतिका विरोध न कर उसपर केवल नियन्त्रण रखते हुए मानव-हित-साधनमें किस प्रकार उसका उपयोग किया जाय, इसी दृष्टिसे हमें विचार करना चाहिये। भारतमें भी यान्त्रिक-युगका प्रवेश हो गया है और दार्शनिक लोग अपनी कोठरियोंमें बैठकर कुछ भी कहा करें, साधारण लोग सोच-विचारकी उलझनमें न पड़ अपनी सुविधाके अनुसार रेल, मोटर, रेडियो, टेलीफोन, हवाई जहाज आदिका पूरा उपयोग कर रहे हैं। पर ऐसा होते हुए भी इस नयी संस्कृतिको हमें आँख मूँदकर स्वीकार न करना चाहिये, किन्तु उसके साथ आनेवाले सामाजिक परिवर्तनोंके लाभालाभको सोच-विचार कर अपनी नीति स्थिर करनी चाहिये। इस विषयमें भारत एक दृष्टिसे भाग्यवान् है, क्योंकि बिना अपनी गांठसे कुछ खर्च किये वह दूसरोंके अनुभवोंका लाभ उठा सकता है। जिन पाश्चात्य देशोंमें आधुनिक उन्नति आज पराकाष्ठाको पहुँचे रही है वहाँ उसके क्या

क्या सामाजिक सुपरिणाम या दुष्परिणाम हुए हैं, यह देख लेनेका हमें मौक़ा है। इससे हम अपने लिए ऐसी नीति स्थिर कर सकेंगे जिससे पश्चिमवालोंकी भूलोंसे बचते हुए हम यांत्रिक उन्नतिका लाभ उठा सकें।

आधुनिक प्रगतिपर अभिमान

पश्चिमके दार्शनिकोंको खुद भी ऐसा मालूम हो रहा है कि आजकी भौतिक-उन्नति मानव-बुद्धि और कर्तृत्वकी पराकाष्ठा है। उससे उन्हें डर केवल इतना ही लग रहा है कि कहीं इस प्रगतिके पेटसे अन्यान्य रत्नोंके साथ बाहर निकले हुए अद्भुत् संहारसाधन इस प्रगतिका ही संहार न कर डालें। इस एक भयको छोड़कर अन्य सब दृष्टियोंसे पश्चिमवाले इस यांत्रिक उन्नतिपर गर्वका ही अनुभव करते हैं। पाश्चात्य देशोंमें यह सामान्य धारणा हो रही है कि यह उन्नति और संस्कृति अब बहुत आगे बढ़ चुकी है। यंत्रसे पीछे हटनेकी जो प्रवृत्ति भारतमें दिखाई देती है, पश्चिमके देशोंमें वह नहीं दिखाई देती।

ग़रीबोंकी रहन-सहन भी सुधरी

कल-कारखानोंकी उन्नतिसे जीवनकी सुविधाएँ बढ़ी हैं। जो वस्तुएँ किसी समय केवल धनवानोंको ही सुलभ थीं वे आज ग़रीबोंके घरोंमें भी मौज़ूद हैं। जैसी ऊँची रहन-सहन अमीर रख सकते थे, वैसी अब साधारण लोग भी रख सकते हैं। अमेरिकामें आज मामूली आदमी भी मोटर, टेलीफोन, रेडियो, गैसका चूल्हा, बिजलीसे चलनेवाली घरेलू मेशीनें आदि रोजके इस्तेमालके लिए आसानीसे प्राप्त कर सकता है। भारतमें साधारण आदमीको इन वस्तुओंके उपभोगका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। वकील, डाक्टर, रईसज़ादे आदि थोड़ेसे लोग ही इनका लाभ उठा सकते हैं। उन्हें इन चीजोंका सुख भोगते देख दूसरोंको

भी इनकी हवस होती है। यांत्रिक प्रगतिके कारण पाश्चात्य देशोंमें इन साधारण लोगोंकी रहन-सहन भी ऊँची हो गयी है। जो सुख-सुविधाएँ बहुत थोड़े लोगोंको उपलब्ध थीं उनका उपभोग जनसाधारणकी सामर्थ्यकी बात हो गयी और होनेकी संभावना उत्पन्न हो गयी।

सबको मानसिक उन्नतिकी सुविधा

भौतिक दृष्टिसे रहन-सहन ऊँची होनेके साथ साथ आध्यात्मिक दृष्टिसे सांस्कृतिक उन्नति करनेके साधन भी साधारण जनोंको उपलब्ध हुए। विद्वानोंके व्याख्यान, धर्मोपदेशकोंके प्रवचन, उत्कृष्ट संगीत, नवीन कविताएँ—यह सब सुननेकी सुविधा अमेरिकाके हर एक नागरिकको, वह शहरमें या गावँमें कहीं भी हो, प्राप्त हैं। दुनियाँमें क्या क्या हो रहा है, इसे थोड़े खर्चमें हर एक आदमी पढ़ और सुनकर जान सकता है। हमारे गावँ और देशके बाहरका समाज और दुनियाँ कैसी है, इसे देखकर मालूम कर सकता है। नित्यकी साधारण आवश्यकताएँ पूरी करनेके लिए पहले जहाँ रात दिन जुते रहना पड़ता था, वहाँ अब सात आठ घंटे काम करके ही पहलेसे अधिक सुख-सुविधाके साथ रहा जा सकता है और बाकी समय बौद्धिक तथा मानसिक उन्नतिके कामोंमें लगाया जा सकता है। अमेरिकामें यांत्रिक उन्नति इतनी अधिक हो चुकी है कि श्रम और संपत्तिका यदि व्यवस्थित रूपमें विभाग हो सके तो हर एक आदमी केवल एक दो घंटे काम करके ही आजकी अपेक्षा ज्यादा आरामसे रह सकेगा और शेष सारा समय ज्ञान तथा संस्कृतिकी उन्नति करनेवाले कामोंमें लगा सकेगा और यदि अमेरिकाके लोग भारतवासियोंकी तरह खा पहन कर जीवन वितानेका निश्चय कर लें, तब तो हर एकको

प्रतिदिन एक मिनटसे भी कम अर्थात् कुछ सेकंड ही काम करना पड़ेगा। इस कथनमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।

दूसरा पहलू—कलके आदमी

परंतु जनसाधारणकी रहन-सहन और संस्कृतिकी उन्नतिकी दृष्टिसे जहाँ इस यांत्रिक प्रगतिका इष्ट फल हुआ है वहाँ कुछ अनिष्ट परिणाम भी हुए हैं, जिनसे बचना हमारे लिए आवश्यक है।

यंत्रचालित उद्योगोंमें काम करनेवाले आदमी भी मानो यंत्र-निर्मित ही होने लगे हैं। अब काम करनेमें काम करनेवालेको दिमाग़ या अकिल लगानेकी ज़रूरत नहीं, उसे लगातार सात आठ घंटे एक ही काम कलकी-सी तेज़ीसे करना पड़ता है। किसी चीज़को तैयार करनेमें अगर एक हज़ार क्रियाओंकी आवश्यकता होती है तो उनमेंसे एक दो क्रियाएँ ही हर एक मज़दूरके हाथों सम्पन्न होती हैं। आदिसे अंततक सारी वस्तुको स्वयं निर्माण करनेका जो आनंद निजी कारीगरको मिलता है वह कारख़ानेमें काम करनेवालेको नहीं मिलता। अमेरिकाकी फोर्ड फैक्टरी, जेनरल इलेक्ट्रिक आदि विशाल कारख़ानोंमें यह बात अच्छी तरह दिखाई देती है। इस दोषके उपचार रूपमें पश्चिमी देशोंमें बुद्धिवर्द्धक उद्योगोंका प्रचार किया जा रहा है। कारख़ानोंसे काम करके लौटनेपर श्रमिक अपने अपने संघ स्थापित कर साहित्य, चित्रकला, संगीत, हाथकी कारीगरी आदिमें एक दो घंटे लगाते और इस प्रकार अपनी व्यक्तिगत विशेषताओंको विकसित करते हैं। रूसमें संस्कृति-मंदिर (पैलेस आफ कलचर) की योजना इसी उद्देश्य-से की गयी है।

जिन जिन शहरोंमें कल-कारख़ाने हैं, वहाँ वहाँ मज़दूरोंके रहनेके लिए अलग बस्ती है। बम्बई, अहमदाबाद आदिके

'स्लमों' (गंदी तंग गलियोंवाली बस्तियों) से उन बस्तियोंका अनुमान किया जा सकता है। ग़रीबी ज़्यादा, बस्ती बेहद घनी, अपराधोंकी संख्या अधिक, स्वच्छता सफाईके बारेमें लोगोंकी जानकारी बहुत कम, लड़के लड़कियोंकी शिक्षाकी उपेक्षा—यह स्थिति इन बस्तियोंकी होती है। इन बुराइयोंको दूर करानेके लिए धार्मिक प्रवृत्तिवाले लोग तथा समाज-सेवक इन बस्तियोंमें आकर रहते हैं और लोगोंकी सहायता करनेका यत्न करते हैं। मज़-दूरोंकी गंदी बस्तियाँ यांत्रिक उन्नतिका परिणाम हैं। पर वे अनिवार्य नहीं हैं। उनसे बचते हुए भी यांत्रिक उन्नति हो सकती है, दुनियाँको यह दिखा देनेका भार रूसने अपने ऊपर ले रखा है।

शहरोंकी गंदी-बस्ती—स्लम

यांत्रिक उन्नतिका तीसरा दोष यह है कि समाजमें संपत्ति-शाली कारखानेदार तथा संपत्तिहीन बेकार मज़दूर ये दो वर्ग उत्पन्न हो जाते हैं और कारखानेदार तथा पूँजीवाला वर्ग कमजोरोंकी मेहनतका फायदा उठाता है। इससे साधारण जनता धीरे-धीरे निर्धन होती जाती है और थोड़ेसे लोगोंके हाथमें पैसा इकट्ठा हो जाता है। इस बुराईको दूर कर श्रमके अनुपातसे धनका विभाग किस तरह किया जाय, यह प्रश्न पाश्चात्य समाजके सामने संप्रति उपस्थित है।

श्रमिक वर्ग और बेकारी

बेकारी और यांत्रिक उन्नतिका सम्बंध सदा जोड़ा जाता है। नये यांत्रिक आविष्कारोंकी बदौलत थोड़ेसे आदमी बहुतसा काम कर लेते हैं। इसलिए मालिक धीरे धीरे अपने मज़दूर घटाता जाता है, पर थोड़ेसे आदमियोंसे अधिक काम करा ले सकनेके कारण उसका नफा उतना ही बढ़ता जाता है। इस

प्रकार कामसे आदमी घटानेसे बेकारी बढ़ती जाती है, इसीसे लोगोंकी यह धारणा हो गयी है कि कलें बेकारीका कारण हैं।

परन्तु ऊपर जो दोष दिखाये गये हैं वे सभी अनिवार्य नहीं, निवार्य हैं। वे ऐसे नहीं कि यान्त्रिक उन्नतिके साथ ही जन्में और जिंदगी भर उसका साथ न छोड़ें। वास्तविक स्थिति यह है कि यान्त्रिक उन्नतिके कारण समाजके आर्थिक जीवनमें जो क्रान्ति हुई उसके अनुकूल नये सिद्धान्तोंका अनुसरण नहीं किया गया। स्वार्थी व्यक्तियोंने यन्त्रोंका उपयोग अपने निजके लाभके लिए किया। व्यक्तिका जीवन समाज-हितके लिए है, यह सामाजिक सिद्धान्त स्वार्थसे अन्धे बने हुए लोगोंके दिमाग़में न घुस सका। इसलिए यान्त्रिक उन्नतिका लाभ जनसाधारणको किस तरह मिले, इसपर विचार न करते हुए उन्होंने निजके लाभकी ही दृष्टिसे अपनी नीति स्थिर की। स्वार्थ-साधनके सिद्धान्तपर चलनेवाला पूँजीवाद भारतमें स्थापित हुआ तो यूरोप-अमेरिकाके अनुभवोंकी आवृत्ति यहाँ भी शीघ्र ही होगी। पर यान्त्रिक उन्नतिका उपयोग समाज-हितकी दृष्टिसे किया गया तो मज़दूरोंके 'स्लम', उनकी ग़रीबी, उनका यन्त्रवत् जीवन ये बुराइयाँ अपने यहाँ पैदा न होंगी और साधारण जनसमाज सुखी होगा। आज जहाँ हम प्रश्नोंको व्यक्तिकी दृष्टिसे देखा करते हैं, वहाँ समाजकी दृष्टिसे देखनेकी आदत डालनी चाहिये।

स्वार्थवृत्तिके दोष

बेकारी यन्त्रोंके कारण नहीं पैदा होती, उनके दुरुपयोगके कारण पैदा होती है। यन्त्रके आविष्कारका मुख्य उद्देश्य यह है कि आदमीको थोड़े समय काम करना पड़े और शारीरिक श्रम कम पड़े। पर यन्त्रोंका उपयोग इस दृष्टिसे नहीं किया जाता। कारखानेदार इस दृष्टिसे कलोंसे काम नहीं लेता कि मज़दूरोंको

कम समय काम करना पड़े और कम मेहनत पड़े। वह तो दसकी जगह पाँच ही मज़दूर रखता है और उन पाँचसे ही पूरे समय कस कर काम लेकर दसोंका काम निकाल लेता है। अर्थात् आजकी अवस्थामें यन्त्रोंका लाभ मज़दूरोंको न होकर केवल मालिकोंको होता है। कलें बेकारी बढ़ानेका कारण न बनें, इसका उपाय यह है कि मज़दूरोंकी संख्या कायम रखी जाय और ज्यों ज्यों तेज काम करनेवाली नयी कलें निकलती जायँ, मज़दूरोंके कामके घण्टे घटाते चले जायँ। इससे मालिकोंका नफा बना रहेगा, मज़दूरोंको भी काम मिलता रहेगा और वही मज़दूर कारखानेमें बननेवाले मालके गाहक होंगे। समाज जब कलोंसे काम लेनेके इस ढङ्गको समझ लेगा और उसे काममें लावेगा तभी बेकारी तथा व्यापार-व्यवसायकी मन्दीकी रुकावट हो सकेगी।

बेकारी क्यों पैदा होती है ?

गाँवसे अपना घरबार खेतीबारी छोड़कर मज़दूर जो कल-कारखानेवाले नगरोंमें आ बसते हैं, उससे अनेक नयी समस्याएँ उपस्थित हो गयी हैं। घनी बस्तीमें रहना, नैतिक विचारोंमें शिथिलता, स्वास्थ्य-जनक परिस्थितिका अभाव और बेकारीके दिनोंमें भूखों मरना, ये सब दोष औद्योगिक नगरोंमें पैदा हो जाते हैं। उनके निवारणके लिए यूरोप-अमेरिकामें अब कल-कारखानोंको शहरोंसे उठाकर गावोंमें ले जानेका उपक्रम हो रहा है। भारतको इस प्रयोगको ध्यानमें रखते हुए अपनी भावी औद्योगिक उन्नतिकी नीति स्थिर करनी चाहिये। फोर्ड अपने यहाँ यह आज़माइश कर रहे हैं और इस तरह बसाये हुए नये नगरोंको "उद्यान-नगर" (गार्डेन सिटीज़) का नाम दिया है।

शहरोंसे कारखाने हटाओ

भारतमें भी आगे चलकर कल-कारखानोंकी वृद्धि हुए बिना

नहीं रह सकती। इस प्रगतिमें पश्चिमके दोष न आवें इसकी सतर्कता अभीसे हमारे लोकनायकोंको रखनी चाहिये। यन्त्रका उपयोग ज़्यादा नफा कमाना नहीं है, कामका समय और श्रम घटाना है, इस बातको ध्यानमें रखते हुए कल-कारखानोंके सम्बन्धके नियम-कायदे बनाये जाने चाहिये। सब उद्योग-धन्धोंको शहरोंमें ही न बटोरकर शुरूसे ही हम उन्हें छोटे-छोटे गावोंमें फैलने दें, तो यूरोप अमेरिकाके स्लमोंकी समस्या हमारे यहाँ उत्पन्न न होगी। इन दोषोंसे बचते हुए हम यदि यान्त्रिक उन्नतिको स्वीकार कर सकें तभी उसका उपयोग जनसाधारणके जीवनको सुखी बनाने और उन्हें सांस्कृतिक उन्नतिका अवसर मिलनेकी दृष्टिसे हो सकेगा।

भारतकी नीति क्या हो?

तीसवाँ अध्याय

सामाजिक असन्तोष और पुनस्सङ्गठनके मार्ग

सामाजिक प्रगतिका कोई अन्त नहीं। मानव-सृष्टिके आरम्भसे अबतक ऐसा समय नहीं गया जब कोई न कोई सामाजिक आन्दोलन न हुआ हो। हर एक पीढ़ीको यही मालूम होता है कि हमारा समय भारी उथल-पुथल और असन्तोषका है। एक विनोदमय दन्तकथा है कि सृष्टिके आरम्भमें एक दिन आदम और हौवा अदनके बागमें टहल रहे थे जब आदमने हौवासे कहा—"प्रिये, हम जिस कालमें जी रहे हैं वह भारी परिवर्तनोंका है।" वर्तमान पीढ़ीको भी यही मालूम होता है।

पाश्चात्य समाजको देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि वहाँ भी एक प्रकारका असन्तोष और बेचैनी फैली हुई है और लोग इस रूपमें समाजका फिरसे सङ्गटन करनेके यत्नमें लगे हैं जिससे उन्हें सन्तोष प्राप्त हो। जिस तरह अपने समाजमें अस्पृश्यता, जातिभेद, धर्मभेद, आदि की समस्याएँ हैं, उसी तरह अन्य समाजोंमें भी भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रश्न उपस्थित हैं। असन्तोष दोनों ओर बना है। आदर्श समाज-रचनाका जो प्रयत्न सारी दुनियाँमें चल रहा है उसीके रास्तेमें हम भी हैं और दुनियाँके बाकी सब लोग भी। कोई आगे है, कोई पीछे, बस इतना ही अन्तर है।

सर्वत्र असन्तोष

प्रत्येक देशमें समाजका विभाग किसी न किसी सिद्धांतके आधारपर किया गया है। भारतवर्षमें एक समय यह आधार-जन्म-कर्मका सिद्धांत था, आज केवल जन्मका सिद्धान्त है। इंग्लैण्डमें आज भी जन्मका सिद्धांत माना जाता है पर उसकी प्रधानता नहीं है। अर्थात् वहाँ व्यक्तिकी उन्नति सर्वांशमें नहीं पर कुछ अंशोंमें अवश्य ही जन्म और कुलपर अवलंबित है। अमेरिकामें भी ऐसे कुछ घराने हैं जो अपनेको बड़े ऊँचे खानदानका समझते हैं, परंतु जन्मको इस देशमें अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। यद्यपि पाश्चात्य देशोंमें व्यक्तिको कर्म अथवा व्यवसायके आधारपर ऊँचा-नीचा ठहरानेकी प्रथा अधिक नहीं है, फिर भी शारीरिक श्रम करनेवाले वर्गको छोटा दर्जा और मस्तिष्कके काम करनेवाले वर्गको ऊँचा दर्जा देनेकी परंपरा वहाँ चली आ रही है। हाँ रूसमें अवश्य केवल शारीरिक श्रम करनेवाले वर्गको अन्य वर्गोंसे श्रेष्ठता दी जा रही है। उसके सिवा बाकी सब देशोंमें समाज आर्थिक स्थितिके आधारपर विभाजित है।

समाज-विभागके विविध सिद्धांत

पिछली सदीमें यांत्रिक और औद्योगिक क्रांति हो जानेके कारण इस विभागको अधिक तीव्र रूप प्राप्त हो गया है और धनहीन तथा श्रमजीवी वर्गमें अपनी हीन स्थितिके विषयमें असंतोष उत्पन्न हो गया है।

पाश्चात्य देशोंमें आज जो असंतोष दिखाई देता है, उसका मूलकारण उनकी वर्त्तमान समाज-रचना है। उसे बदलनेके यत्न चल रहे हैं और जहाँ संभव है वहाँ भिन्न-भिन्न व्यवस्थाओं-की योजना करके वर्त्तमान व्यवस्थाके दोषोंकी तीव्रता घटानेके विषयमें समाजके नेताओंमें विचार-विमर्श हो रहा है।

जन्म, कर्म्म, संपत्ति आदि कारणोंसे जो जो वर्ग आज छोटे या नीचे माने जा रहे हैं उनमें यह असंतोषका भाव अधिक मात्रामें है। शिक्षाका व्यापक प्रचार होकर ज्यों-ज्यों वह नीचे-की सतह तक पहुँचती गयी त्यों-त्यों इन वर्गोंमें जाग्रति उत्पन्न होती गयी। समाजने जो स्थान उन्हें दे रखा है उसे राज़ी खुशीसे स्वीकार करनेसे उन्होंने इनकार कर दिया। व्यक्ति-गत महत्त्वकी भावना उनके मनमें उत्पन्न हुई। व्यक्तिकी उन्नति-के मार्गमें समाजने जो रुकावटें लगा रखी हैं, वे ईश्वर-निर्मित नहीं, मनुष्य-निर्मित हैं—यह बात उनके ध्यानमें आ गयी। समाजके सब आदमी बराबर हैं, उनमें छोटे बड़ेका भेद न होना चाहिये, छोटाई-बड़ाईका निर्णय व्यक्ति-विशेषके कार्योंके आधार-पर होना चाहिये, अन्य आगन्तुक बातोंके आधारपर नहीं। इस प्रकारके विचारोंसे प्रेरित होकर अनेक वर्ग समाजमें अपने नीचे स्थानसे ऊपर आनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

समाजमें छोटे-बड़े ऊँचे-नीचे वर्गोंका होना स्वभाव-जन्य गुणोंके अनुसार और अनिवार्य है। समता प्रकृतिमें ही नहीं है। परन्तु इन सामाजिक वर्गोंके इर्द-गिर्द जब क़िलेबन्दी कर ली

जाती है और सुस्थित वर्ग दूसरोंको अपने समुदायमें आने देनेसे रोकते तथा आप दूसरोंकी अपेक्षा सामाजिक लाभ अधिक भोगते हैं, तब समाजमें अधिक असन्तोष फैलता है। व्यक्तिगत गुणोंके अनुसार एक वर्गसे दूसरेमें जानेकी सुविधा जितनी ही अधिक हो समाजमें उतना ही शान्ति-सन्तोष विराजता है। अपनेको बड़ा और ऊँचा कहलानेकी अहंकारजन्य आकांक्षा व्यक्तिमात्रमें होती है, कारण पाकर जाग्रत होती अथवा सुप्त रहती है। नीचेको ऊँचा, छोटेको बड़ा, और ग़रीबको धनी होनेका अवकाश या सामाजिक संक्रमणकी सुविधा जिस समाजमें अधिक रहेगी, उस समाजमें असन्तोषकी मात्रा कम होगी। पाश्चात्य राष्ट्रोंने इस वर्ग-संक्रमणकी सुविधा किस तरहकी है, यह देखने और समझनेकी बात है।

वर्ग संक्रमणकी सुविधा

जन्म और कर्म दोनोंसे हीन वर्गको जब आर्थिक दृष्टिसे हीन पद प्राप्त होता है तो उसके हृदयमें अन्यायकी भावना अधिक तीव्र हो उठती है। यूरोपमें आज यही स्थिति है। जन्म और कर्मकी हीनताको वहाँ अधिक महत्व नहीं दिया जाता तथापि इनके साथ आर्थिक हीनताके भी आ मिलनेसे आज वहाँ धनी और निर्धन, पूँजीपति और मज़दूर, उच्चवर्ग और नीचवर्गका सङ्घर्ष चल रहा है। आखिर हीन माने जानेवाले वर्गके सन्तोषके लिए भी कहीं अवकाश होना चाहिये। पाश्चात्य समाजने यह अवकाश नहीं छोड़ा है। भारतमें जातिभेदकी रचना करनेवालोंने उसके दोषोंके परिहारार्थ जन्म-कर्मकी दृष्टिसे श्रेष्ठ और अधिकार-सम्पत्तिकी दृष्टिसे श्रेष्ठ वर्गोंको एक दूसरेसे अलग रखकर समाजमें साम्य रखनेका यत्न किया था। आज प्रत्यक्ष वैसी

पाश्चात्य वर्गभेदकी तीव्रता

स्थिति नहीं दिखाई देती, तथापि सिद्धान्ततः जातिभेदकी जो योजना तैयार की गयी थी उसमें वैसी व्यवस्था रखी गयी थी। यूरोप अमेरिकामें जन्म-कर्मकी दृष्टिसे हीनवर्ग अधिकार और सम्पत्तिसे भी वञ्चित रखा गया। लोकतन्त्रके सिद्धान्तके अनुसार नीची श्रेणीवालोंको उन्नतिका अवसर दिया गया सही पर वह केवल कल्पनामें ही रह गया। इसीसे नीचेवाला वर्ग ऊपरवाले वर्गसे यह अधिकार प्राप्त करनेका यत्न कर रहा है।

व्यक्तिका सम्मान करके हर एकको अपने कर्तृत्वके बलपर समाजमें आगे आनेका अवसर देनेका सिद्धांत प्रथम अमेरिकाने स्वीकार किया। समाज जितना नया होता है उतना ही परिवर्तनशील होता है। अमेरिकाको यह लाभ मिला। अमेरिकन लोगोंने अपने देशके "सुयोगकी स्वर्ण-भूमि" होनेकी घोषणा की। यूरोपवालोंकी अपेक्षा अमेरिकन लोगोंके स्वभावमें यदि कोई विशेषता दिखाई देती है तो यही कि वे योग्य व्यक्तिको अवसर देनेके लिए सदा तैयार रहते हैं। "उसे मौक़ा तो दो" (गिव्ह हिम ए चान्स) इस उक्तिको अमेरिकन स्वभावका निदर्शक कहनेमें कोई हर्ज नहीं। अवसर-समानताका सिद्धांत केवल कागज़पर लिखा ही न रहकर किस प्रकार प्रत्यक्ष व्यवहारमें लाया जाय, इसका एक विशेष उपाय अमेरिकावालोंने ढूँढ़ निकाला। उन्होंने अपने यहाँ सारी शिक्षा निश्शुल्क करके विद्याका द्वार सबके लिए खोल दिया। विद्या ही वह साधन है जिससे आदमी अपनी योग्यता और क्षमता बढ़ा सकता है। सबके लिए वह सुलभ हो जानेसे प्रत्येक कर्तृत्ववान् व्यक्तिको आगे आनेका अवसर मिला। अमेरिकाके कितने ही बड़े आदमी नितांत दरिद्र घरोंमें जन्म लेकर ऊपर उठे हैं। इस देशमें इधर इतनी ज्यादा बेकारी होनेपर भी जो लोग शांत रहे,

इसका कारण यही है कि हर एक कर्मचारी और मज़दूर एक बार अच्छे दिन देख चुका था और उसके मनमें यह आशा बनी थी कि समृद्धिके वसन्तका पुनः आगमन होनेपर शायद हम भी एकाध मिल या बङ्कके मालिक हो जायँ। हर एक आदमी ऊपर नहीं पहुँच सकता पर हमारे लिए वहाँ पहुँचनेका रास्ता खुला है, इस विचारसे ही समाजमें एक प्रकारका सन्तोष रहता है।

अमेरिकाने जैसे आमतौरसे सब व्यक्तियोंको एकसे दूसरे वर्गमें जानेकी स्वाधीनता दे दी, इंग्लैण्डने वैसा नहीं किया।

इंग्लैण्डमें योग्यताका मान

उसने समाज-रचनाकी यह नीति स्वीकार की है कि असन्तुष्ट निचले वर्गके जो व्यक्ति अपने कर्तृत्वके बलसे अपने आप आगे आ जायँ वे ऊपरके वर्गमें सम्मिलित कर लिये जायँ और इस तरह नीचेकी श्रेणीमें असन्तोष अधिक न बढ़ने दें। साधारण लोगोंको उन्नति-के अधिक अवसर देनेकी अमेरिकन नीति इंग्लैण्डने नहीं स्वीकार की। तथापि नीचेकी श्रेणीसे ऊपर आये हुए कुछ थोड़ेसे व्यक्तियोंके जन्म-कर्मकी ओर न देख उन्हें ऊपरके वर्गमें शामिल कर लेनेकी प्रथा प्रचलित होनेसे योग्य कर्तृत्ववान् व्यक्तियोंके सन्तोषका उपाय निकल आया और असन्तोषकी तीव्रता घट गयी।

जर्मनीमें अभी उस दिनतक वर्ग-व्यवस्था कायम थी और आज भी बनी है। वर्गगत विरोध और असन्तोषको दूर करने-

जर्मनीमें भावनाकी प्रधानता

के लिए नयी नाज़ी सरकारने समानताके सिद्धान्तको सिद्धान्त रूपमें स्वीकार कर लिया है। अर्थात् उसकी नीति वर्गभेदके भावको समाजसे हटा देने और शेष सारी स्थितिको जैसीकी तैसी रहने देनेकी है। मालिक-मज़दूर, शिक्षित-अशिक्षित, अमीर-ग़रीब

आदि वर्ग तो समाजमें बने ही रहेंगे पर अमुक छोटा है और अमुक बड़ा, इस साधारण धारणाको दूर करनेका यत्न वहाँ किया जा रहा है। सब अपना अपना काम करें पर सामाजिक दृष्टिसे सब बराबर हैं, यह मनोवृत्ति युवकोंमें उत्पन्न करनेके लिए उन्हें छात्रावासों और श्रम-शिविरोंमें लाकर इकट्ठा रखनेकी व्यवस्था की गयी है। सारांश, रूसके वर्ग-सङ्घर्षके सिद्धान्तका अनुसरण करते हुए वर्गमूलक समाजका निर्मूलन कर एक वर्गवाले समाजकी स्थापना करनेकी नीतिकी विरोधी नीति जर्मनीने ग्रहण की है। नाज़ी दलका यह सिद्धान्त है कि वर्गभेद रहे पर सब वर्गोंका पद और मूल्य समाजमें समान माना जाय जिससे उनमें छोटे बड़ेकी भावना और उसके कारण उत्पन्न होनेवाला सङ्घर्ष न रहे।

पर रूसकी राज्यक्रान्तिका मूल सिद्धान्त ही वर्ग-सङ्घर्ष है। जन्म, कर्म, सम्पत्ति किसी भी आधारपर स्थित वर्ग-व्यवस्था रूसको स्वीकार नहीं। अबतक माने गये उच्च, धनी, सफ़ेदपोश आदि वर्ग नष्ट होकर उनसे केवल एक श्रमजीवी वर्गका निर्माण हो, यही बोलशेविक नेताओंकी महत्वाकांक्षा है। व्यक्तियोंकी प्रकृतिजन्य विषमताको वे मानते हैं। योग्यताकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंमें भेद मानकर उसके अनुसार उन्हें मिलनेवाले पारिश्रमिकमें भी आज वहाँ भेद किया जा रहा है। अमेरिकाके सबको समान अवसर देनेके सिद्धान्तको रूसने अपने यहाँ पूर्ण रूपमें कार्यान्वित किया है। आर्थिक दृष्टिसे वहाँ वैषम्य है पर हर आदमीको अपनी योग्यता बढ़ाने और दिखानेकी पूर्ण सुविधा है।

रूसमें एकवर्गी समाज

पाश्चात्य देशोंकी परिस्थितिपर दृष्टिपात करनेसे हमें यह दिखाई देगा कि समाजकी अनेक अवस्थाएँ हो सकती हैं।

किसी विशेष रूपमें सङ्घटित समाज ही जीवित रह सकता हो, यह बात नहीं है। फिर भी जिस समाजमें अवसरकी समानतासे जन-साधारणमें उत्पन्न सन्तोष-वृत्ति जितनी अधिक होगी वह उतना ही अधिक सुखी होगा। भारतीय समाजके पुनस्सङ्घटनकी दृष्टिसे पाश्चात्य देशोंके अनुभवोंसे हम कई बातें सीख सकते हैं। उन अनुभवोंसे लाभ उठानेसे समाजमें अशान्ति कम होगी और उसकी योग्यता, कार्यप्रवृत्ति और प्रतिकार-क्षमता बढ़ेगी। शिक्षाको अनिवार्य और निश्शुल्क करके अमेरिकाने जो अपने हर छोटे-बड़े आदमीको उन्नतिका समान अवसर दे दिया है वह हमारे यहाँ भी अवश्य किया जाना चाहिये। उच्च शिक्षाकी सीढ़ीसे ही नीचेका आदमी ऊपरकी श्रेणीमें चढ़ सकता है। शिक्षाको अनिवार्य बनाना भारतमें कठिन दिखाई देता है पर राष्ट्रीय सम्पत्तिका उचित विनियोग होनेसे यह बात सम्भव हो जायगी। भावी सामाजिक अनर्थको टालनेके लिए हमें इस कार्य-के लिए इतना पैसा देना ही होगा। भिन्न-भिन्न प्रकारके काम करनेवाले सब आदमी समाजकी दृष्टिसे बराबर हैं, जर्मनीकी यह मनोवृत्ति भी भावनाकी दृष्टिसे हमारे लिए उपयोगी है।

भारतीय समाजके सामने उपस्थित प्रश्न

कोई भी वर्ग अपनेको छोटा माननेको तैयार नहीं होता और सच पूछिये तो समाजकी दृष्टिसे उपयोगी काम करनेवाला कोई भी वर्ग किसी दूसरेसे छोटा नहीं है। ऐसा मानकर हम निम्न श्रेणीवालोंको समाजमें समान पद दे दें और साथ ही अव-सर तथा सुविधाकी समानता भी उन्हें प्राप्त हो जाय, तो समाज-में शान्ति-सन्तोष रहनेकी दृष्टिसे सहायता मिलेगी। पाश्चात्य समाजके साथ सम्बन्ध होनेसे भारतीय समाज आज ऐसा सोचने लगा है कि वर्तमानकी अपेक्षा भिन्न और उत्तम समाज-

की रचना होना सम्भव है। पाश्चात्य समाज और अपने समाजके इतिहाससे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि विश्वकी प्रगति आदर्श समाज-रचनाकी ओर है। हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम अपने तत्कालीन सामाजिक सिद्धान्त और पाश्चात्य समाज-रचनाके सिद्धान्त, दोनोंके उत्तमांशको लेकर अपने लिए एक सुसङ्गत समाज-शास्त्रकी रचना करें। इसके बिना हमारे समाजका विश्वव्यापी जीवन-संग्राममें टिकना संभव न होगा।

इकतीसवाँ अध्याय

विश्वव्यापी वर्णभेद और आधुनिक विज्ञानका निर्णय

चातुर्वर्ण्य व्यवस्थाका भविष्य क्या है, यह प्रश्न अकेले हमारे ही देशके सामने उपस्थित हो सो बात नहीं है। इस प्रकारका प्रश्न आज सारी दुनियाँके सामने उपस्थित है। दुनियाँके सब भागोंके लोगोंका अबाध आवागमन और सम्बन्ध-सम्पर्क आरम्भ हो जानेसे वर्ण-भेदके प्रश्नको आज अधिक महत्व प्राप्त हो रहा है। यह प्रश्न शीघ्र हल होनेवाला नहीं और इसका अन्तिम निर्णय होनेमें एक दो शताब्दियाँ बीत जाना कोई बड़ी बात नहीं।

जिन वर्णोंका आज परस्पर इतना निकट सम्बन्ध हो रहा है, वे एक समय एक दूसरेसे बिलकुल जुदा, हजारों मीलके अन्तरपर, पृथक् भू-खण्डोंमें रहते थे। उनकी संस्कृति, रूप, और शरीर-गठन भी भिन्न था। प्रश्चिमी यूरोपमें श्वेत वर्णवाले,

अमरीकामें रेड-इंडियन, अफ्रिकामें काले हबशी, एशियाके उत्तर-में पीतवर्ण चीनी जापानी और भारतवर्षमें आर्य लोग रहते थे। भाफसे चलनेवाले जहाजोंके आविष्कार, व्यापारिक यातायात और नये साम्राज्य स्थापित करनेकी हवस आदि कारणोंसे विभिन्न भू-खण्डोंमें रहनेवाले ये सब वर्णवाले इकट्ठे हो गये हैं। इसीसे उनके परस्पर-सम्बन्ध और दुनियाँमें हर एकके दरजेका प्रश्न आज उपस्थित है।

दुनियाँके विविध वर्णोंका सम्बन्ध

गोरे चमड़ेवाले यूरोपियनोंकी आक्रमणकारी प्रवृत्ति, अपनी श्रेष्ठताका अहङ्कार, भौतिक बलका ज्ञान और अभिमान तथा उचित-अनुचित सब तरहके उपायोंसे जीते हुए भू-भागोंको अपने अधीन रखनेकी स्वार्थमय महत्वाकांक्षा आदि कारणोंसे यह प्रश्न अधिक गम्भीर बन गया है। इन लोगोंने अमेरिकामें जाकर रेड इंडियनोंका संहार किया और उनका देश अपने कब्जेमें कर लिया, अफ्रिकामें प्रवेश कर हबशी लोगोंका देश और सोनेकी खानोंवाली भूमि हथिया ली, आस्ट्रेलियामें पहुँच कर सर्वस्वके मालिक ही बन बैठे, चीनमें पीत-वर्णवालोंपर अपनी व्यापारिक प्रधानता स्थापित कर ली और भारतपर अपना साम्राज्य स्थापित किया। इन सभी स्थानोंमें श्वेताङ्गोंकी नीति स्थानीय लोगोंसे हर बातमें अपनी श्रेष्ठता जतानेकी रही है। फिर जिन अश्वेतवर्णवालोंके साथ अपने घरमें ही परायेका सा व्यवहार होता हो, खास गोरोंके देशमें उनका विशेष आदर-मान न होना स्वाभाविक ही है।

गोरोंकी प्रधानता

वर्णभेद और दूसरोंसे अपनेको बड़ा समझनेकी भावना गोरी जातियोंमें पश्चिममें सर्वत्र दिखाई देती है; हाँ, कुछ थोड़ेसे लोग इसके अपवाद होते हैं। अमेरिकाके गोरोंका वहाँके हबशियोंके

साथ कैसा सम्बन्ध है इसे सारी दुनियाँ जानती है। सन्तोषकी बात इतनी ही है कि उसी अमेरिकामें हबशियोंके हिमायती भी हैं जिनकी संख्या ५० फी सदीसे कम न होगी। इसीसे इन अभागे हबशियोंको गुलामीसे छुड़ानेके लिए अमेरिकाके गोरे आपसमें ही लड़ पड़े और इस गृहयुद्धके फल-स्वरूप हबशी लोगोंको दासतासे मुक्ति मिली। भिन्न वर्णवालोंका पक्ष लेकर अपने ही लोगोंसे लड़नेका उदाहरण दुनियाँमें अमेरिकाके सिवा दूसरा नहीं है। तथापि हबशी लोगोंके प्रति पुराने समयसे चला आनेवाला द्वेष और घृणाका भाव वहाँ अब भी बना है। कुछ प्रान्तोंमें तो ऐसा जान पड़ता है कि हबशी लोगोंको गोरों-की बराबरीका दरजा मिलनेमें अभी कई शताब्दियाँ लगेंगी। उत्तरी अमेरिकाके राज्योंमें हबशी लोगोंके साथ सहानुभूति दिखलायी जाती है पर वहाँ भी छोटे काम ही उनके बाँटे पड़ते हैं। मेहनत-मज़दूरी, बावर्चीगिरी, बिजलीके खटोले चलाना, बस इसी तरहके काम उनके लिए छोड़ रखे जाते हैं। हाँ, कोई हबशी अच्छा गवैया या नर्त्तक बन सका तो सभ्य नाट्य-शालाओंमें प्रवेश पा सकता है और गोरे लोग उसकी कलाका मनसे सम्मान भी करते हैं। बस यही एक क्षेत्र है जिसमें हबशी अपनी श्रेष्ठता दिखा सकता है।

हबशी लोगोंकी दुरवस्था

हबशी और गोरेके मिश्रणसे अमेरिकामें कुछ अधगोरे लोग भी पैदा हो गये हैं इसलिए अमेरिकन हबशियोंमें काले कोयले-से लगाकर गोरे-चिट्टेतक सब तरहके रङ्ग आपको मिलेंगे। अमेरिकामें प्रवास करनेवाले किसी भारतीयको अगर लोग जानते-पहचानते न हों तो इसका डर रहता है कि कहीं वह हबशी समझ कर

हिन्दुस्तानीके लिए खतरा

अपमानित न हो। इस कारण हिन्दुस्तानी वहाँ सिरपर पगड़ी या साफ़ा बाँधा करते हैं। फिर उनको कोई डर नहीं रहता। एक कृष्णवर्ण भारतीयको लोगोंने एक बार सभामें नहीं जाने दिया। तब उसने बाज़ार जाकर एक सफेद कपड़ा खरीदा और ठाठसे साफा बाँध लिया। फिर देखिये चमत्कार कि उसी आदमीको लोगोंने बड़े आदरसे मञ्चपर ले जाकर अध्यक्षके पास बिठाया।

अमेरिकावाले प्रवासी रूपमें भारतीय अथवा अन्य एशियाइयोंका अपने देशमें स्वागत करते हैं, पर वे यह नहीं चाहते कि ये लोग स्थायी रूपसे उनके देशमें जाकर जम जायँ। यूरोपीय देशोंके लोग हरसाल नियत संख्यामें अमेरिकामें जाकर आबाद होने पाते हैं पर यही सुविधा एशियाइयोंको नहीं दी जाती। गोरोंके बीचमें भिन्न वर्णवालोंके जा बसनेसे हबशियोंकी तरह इनकी समस्या भी उपस्थित हो जायगी। इस दृष्टिसे अमेरिकन राजनीतिज्ञोंकी यह नीति ठीक ही है, पर श्वेताङ्गोंको उचित है कि इसी सिद्धान्तका अनुसरण कर अपने लिए भी दूसरे भू-खण्डोंमें भिन्न वर्णवालोंके देशोंमें जाकर बसनेकी रुकावट कर लें। जबतक वे ऐसा नहीं करते तबतक एशियावाले यही सोचते रहेंगे कि उनके साथ अन्याय किया जा रहा है।

इंग्लैण्ड और अंग्रेज़ लोगोंका अश्वेत वर्णवालोंके साथ कैसा बर्ताव है, भारतवासियोंको यह मालूम ही है। जो लोग इंग्लैण्ड हो आये हैं उनसे यह छिपा नहीं है कि मकानोंमें किरायेपर कमरा देने, ऊँचे दरजेके होटलोंमें टिकाने, स्नानगृहके उपयोग आदिमें अश्वेत वर्णवालों और भारतीयोंके साथ वहाँ कैसा भेदसूचक व्यवहार किया जाता है। और यह हुई खास इंग्लैण्डकी बात। उपनिवेशोंमें तो ये गोरे

इंग्लैण्डमें वर्णभेद

चमड़ेवाले लोग जैसे जैसे उपायोंसे अपना बड़प्पन कायम रख रहे हैं उन्हें देखकर इन लोगोंकी स्वाधीनता और समानताकी संकुचित भावनाके प्रति मनमें तिरस्कार उत्पन्न होता है। अधिकार, शक्ति और ऊपरी दिखावेके बलपर अश्वेत वर्णवालोंपर अपनी प्रधानता कायम रखनेके लिए इन लोगोंका अखण्ड प्रयत्न चल रहा है।

जर्मनीमें यहूदी-उत्पीड़न

जर्मनीमें अबतक यह वर्णभेदकी भावना अधिक न थी। परन्तु हिटलरके नाज़ी दलके जन्मके बादसे तो वहाँ यहूदियोंके विरुद्ध आर्य जर्मनोंने चढ़ाई ही बोल रखी है। यहूदी लोग इतने तीक्ष्णबुद्धि हैं कि जर्मनीके विद्वानोंकी सूची बनायी जाय तो उन्हींकी संख्या अधिक निकलेगी। ऐसे लोगोंपर खड्गहस्त होकर जर्मनीके 'आर्य' सारी दुनियाँकी निगाहमें अपनेको निरा जंगली साबित कर रहे हैं। यहूदियोंको आगेसे जर्मनीमें सरकारी नौकरी न मिलेगी, वकालत-डाक्टरी आदि करनेकी इजाज़त न होगी और शिक्षा-प्राप्तिकी भी पूर्ण स्वाधीनता न होगी।

फ्रांस-रूसकी सहिष्णुता

अमेरिका, इंग्लैण्ड और जर्मनीने भिन्न वर्णवालोंको हीन तथा अस्पृश्य बना रखा है, परंतु फ्रांस और रूसमें इसकी बिलकुल उलटी स्थिति है। फ्रांसमें एक हबशी गोरोंसे आज़ादीके साथ मिलजुल सकता है। फ्रांसकी राज्यक्रांतिके समय स्वाधीनता, समानता और बंधुत्वकी जिस सिद्धांत-त्रयीका जन्म हुआ था यह उसीका प्रभाव है। रूसने तो अपनी समाज-रचना ही समानताकी नींवपर की है। वहाँ जैसे स्त्री-पुरुषमें भेद नहीं किया जाता वैसे ही वर्ण-वर्णमें भी नहीं किया जाता। यही नहीं, वर्णभेद और वर्णद्वेषका परिचय देना अपराध समझा जाता और

इसके लिए बहुत ही कड़ी सज़ा दी जाती है। एक बार एक अमेरिकन गोरे मज़दूरने एक हबशीका अपमान किया। उसे इस अपराधकी जो सबसे बड़ी सज़ा हो सकती है वह दी गयी–वह निर्वासित कर दिया गया। वर्ण-साम्यके सिद्धांतका आजतक किसी देशने इतनी कड़ाईके साथ पालन नहीं किया था।

रूसकी वर्ण-समताकी यह भावना सभी देशोंके युवक वर्गोंमें अब थोड़ी बहुत दिखाई देने लगी है। अमेरिकाके युवक आंदोलनके उद्देश्योंमें वर्णसाम्य भी है। अधिकांश देशोंके युवकोंमें एक दल समाजवादियों और कम्यूनिस्टोंका भी है। यह दल किसी भी प्रकारका वर्णभेद, वर्गभेद अथवा जातिभेद नहीं मानता। यह दल इसी तरह बढ़ता गया तो दो तीन पीढ़ियोंमें संभवतः ऐसा समाज बन जायगा जिसमें वर्णभेदकी भावना तीव्र रूपमें न होगी।

युवकोंकी वर्ण-साम्य-दृष्टि

दुनियाँसे वर्णभेदके उठनेके लिए एक बात और भी आवश्यक है। श्वेतवर्णवाले जो औरोंपर अपनी श्रेष्ठता दिखाते हैं, उसका कारण है अश्वेत वर्णवालोंका भौतिक उन्नति, शक्ति और शिक्षामें उनसे हीन होना। इन क्षेत्रोंमें आगे बढ़कर वे अपनी समानता सिद्ध कर दें और जापानकी तरह पश्चिमवालोंको भी कुछ बातोंमें नीचा दिखा सकें तो यह छुटाई-बड़ाईकी भावना अपने आप बिदा हो जाय। ऐसा न हुआ तो दो समबल प्रतिस्पर्धियोंके सदृश अश्वेत वर्णवालोंको भी आगे चलकर क्षात्रबलके द्वारा अपनी उच्चताका प्रमाण देना होगा।

वर्ण-श्रेष्ठताकी कल्पना

लौकिक वर्णभेदके अनेक कारण हैं। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारण उनमें मुख्य हैं। श्वेतवर्ण वालोंको अश्वेत

जातियोंपर अपना साम्राज्य क़ायम रखना है। मालिकोंको डर है कि ग़ुलामोंको बराबरीका दरजा दिया तो कल ये हमारे सिरपर बैठने लगेंगे। भारतमें इंग्लैण्डको, इंडोचायनामें फ्रांसको और डच द्वीपोंमें हालैण्डको जो प्राधान्य प्राप्त है उसको स्थिर रखना है। राजनीतिक और आर्थिक कारण एक दूसरेमें मिला-जुला दिये गये हैं। जहाँ-जहाँ गोरोंका राज्य है वहाँ-वहाँ व्यापारिक प्राधान्य, मोटी तनख़ाहोंकी जगहोंका इजारा, उपजाऊ ज़मीन और सोनेकी खानें आदि प्राकृतिक संपत्तिका स्वामित्व अपने हाथमें रखनेके लिए, अर्थात् मुख्यतः आर्थिक कारणोंसे, अश्वेत वर्णवालोंको अपनेसे नीचे दरजेपर रखना, उन्हें दबाये रखना गोरोंको आवश्यक जान पड़ता है। जर्मनीमें यहूदी-द्वेषका आंदोलन मुख्य करके आर्थिक कारणोंसे ही उत्पन्न हुआ। अपने बुद्धिबलसे यहूदियोंने व्यापार, वकालत, डाक्टरी, सरकारी नौकरी आदि क्षेत्रोंपर क़ब्जा जमा रखा था। उनसे छीनकर ईसाई-जर्मनोंको इन्हें देनेके लिए हिटलरने वर्ण-द्वेष-मूलक आंदोलन चलाया और आर्थिक प्रतियोगिताको वर्ण-श्रेष्ठताका श्रुति-मधुर नाम दे दिया।

वर्णभेद और राजनीति

वर्णभेदका तीसरा और महत्वका कारण अपनी जातिकी वर्णशुद्धि और रक्तशुद्धि बनाये रखनेकी चिंता है। प्रत्येक जाति ऐसा समझती है कि हमारी जाति शुद्ध, उच्च, सुसंस्कृत, बुद्धिमान्, सुरूप और शौर्यादि गुणोंसे युक्त है। अन्य सब जातियाँ हमसे हीन हैं। इसलिए अन्य वर्णोंसे हमारे वर्णका संकर न होना चाहिये। दो जातियोंके अधिक हिल-मिलकर रहनेसे वर्ण-संकर होता है। अतः दूसरी जातिको अपनेसे हीन मानकर उससे अपने एक-वर्ण-

वर्णशुद्धिकी चिंता

समाजको दूर रखनेसे उसका शुद्ध रूप बना रहेगा। यह भावना सभी समाजोंमें है।

मनोविज्ञानके पंडितोंने इस विषयमें बहुतसे प्रयोग करनेके अनन्तर यह निर्णय दिया है कि बौद्धिक-दृष्टिसे अमुक जाति श्रेष्ठ और अमुक कनिष्ठ है, यह सिद्ध नहीं होता। सभी जातियोंमें मानसिक शक्तियोंके विकासकी दृष्टिसे छोटेसे लगाकर बड़ेतक हर दरजेके लोग समान अनुपातमें ही होते हैं। जो अंतर दिखाई देता है उसका कारण परिस्थिति है। सभी वर्ण वा जाति-वालोंको सांस्कृतिक उन्नतिके समान अवसर मिलें तो आज दिखाई देनेवाला फ़र्क़ दिन दिन घटता जायगा। परन्तु यद्यपि विज्ञानने सभी वर्णोंमें समान गुणोंका होना सिद्ध कर दिया है तथापि वर्णसंकर होना इष्ट है या नहीं, इस विषयमें उसने अभी निश्चित और अंतिम निर्णय नहीं दिया है। दोनों ही पक्षोंमें ऐसे वैज्ञानिक विद्यमान हैं जो उतने ही ज़ोरके साथ अपने पक्षका समर्थन करते हैं और जो उतनी ही प्रामाणिकता तथा अधि-कारके साथ बोल सकते हैं।

आधुनिक विज्ञानका निर्णय

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बुद्धि तथा योग्यताकी दृष्टिसे मानी गयी छोटाई-बड़ाई भ्रममूलक और काल्पनिक है। वस्तुतः न कोई वर्ण दूसरोंसे बड़ा है और न कोई छोटा। योग्यताकी दृष्टिसे सब बराबर हैं। अवसर और सुविधा मिले तो सबके सद्गुण और दुर्गुण समान मात्रामें ही प्रकट होंगे। पर वर्णसाम्यके इस वैज्ञानिक आधारको स्वीकार कर लेनेके अनंतर हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि जो चाहे उसे अपने वर्ण वा जातिकी रक्तशुद्धिकी रक्षाका अधिकार होना चाहिये, वर्ण-संमिश्रणकी बाध्यता न

वर्णसंकरकी सीमा

होनी चाहिये। अमेरिकाके श्वेतवर्णवालोंकी यह इच्छा स्वाभ विक ही है कि हमारी जातिमें काले रंग, मोटे ओठ और कुंचि केशवाले बालक न जन्में। भारतीयों और हबशी लोगोंक सम्बंध बढ़ जाय तो उनके मनमें भी यही इच्छा होगी। पीले रंगवाले चीनियों जापानियोंसे श्वेतवर्णवाले अपने वर्णको जितना अलिप्त रखते हैं उतना ही अलिप्त रखनेका यत्न भारत वासी भी करेंगे। कहनेका मतलब यह कि अपनी वर्ण-शुद्धि बनाये रखनेका यत्न दूसरे वर्णवालोंको छोटा समझना नहीं है किंतु यह मानना है कि हमारी रूप-गुणकी कल्पना औरोंसे भिन्न है। सारांश, अपने वर्णके मूलरूपकी रक्षाका अधिकार प्रत्येक वर्णको होना चाहिये और विज्ञानके अंतिम निर्णय देनेतक वर्ण संकरका आग्रह अथवा बाध्यता न होनी चाहिये। हाँ, प्रत्येक वर्णको संस्कृतिकी दृष्टिसे ऊँचे दरजेपर पहुँचनेका अवसर और सुविधा माँगनेका हक़ है। इस प्रकार समान संस्कृतिवाले अनेक वर्णोंके हो जाने पर उनमें किसी अंशमें रक्तमिश्रण होना अनिवार्य है, पर इसके लिए कोई आग्रह नहीं कर सकता। दुनियाँ और समाजमें ऊँचा पद प्राप्त करनेकी सुविधा प्रत्येक वर्णको मिलनेके बाद आज दिखाई देनेवाले वर्णद्वेषका रूप वैसा ही रह जायगा, ऐसा अनुमान नहीं होता।

बत्तीसवाँ अध्याय

स्त्री-जीवन और कुटुम्ब-संस्थाका भविष्य

भारतवर्षसे यूरोप, वहाँसे अमेरिका और फिर रूस, इस क्रमसे भ्रमण करके वहाँके समाजमें स्त्रियोंका क्या स्थान है

आप इसे देख लें तो मानो तीन चार शताब्दीके नारी-जीवनके इतिहासका चित्रपट आपने देख लिया। स्त्रीके सर्वांशमें पुरुषके अधीन रहने और उसकी मरजी-पर चलनेकी पहली अवस्था आपको भारतमें मिलेगी। इसके बादकी, सांसारिक और वैयक्तिक विषयोंमें पुरुषसे स्वतन्त्र पर आर्थिक दृष्टिसे उसी पर अवलम्बित रहनेकी दूसरी अवस्था यूरोपमें दिखाई देती है। अमेरिका इससे भी एक कदम आगे बढ़ गया है। वहाँ अपनी निजी बातोंमें और आर्थिक दृष्टिसे भी स्त्रीको स्वावलंबन प्राप्त है, पर जिम्मेदारी और महत्व-के जीवन-क्षेत्रोंसे वहाँ भी वह दूर रखी जाती है। सबसे अन्त-की और चौथी स्थिति रूसमें है, जहाँ कर्तव्य और अधिकार दोनोंमें स्त्रीको पुरुषकी पूर्ण समानता प्राप्त है। दुनियाँमें स्त्री-जीवनका विकास इसी क्रमसे और इसी रूपमें होनेवाला है या नहीं, कहा नहीं जा सकता। आज अवश्य स्त्रियोंकी ये विविध अवस्थाएँ दुनियाँमें दिखाई देती हैं।

स्त्री-जीवनका चित्रपट

महायुद्धके बादके समयमें अमेरिकन स्त्रियोंको आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और दिन-दिन अपने परिश्रमसे निर्वाह करने-वाली स्त्रियोंकी संख्या बढ़ती गयी। विवाहके बाद पैसा कमाने और नौकरी करनेकी आव-श्यकता न रही तो भी ऐसा समय आ ही पड़े तो अपने पास स्वावलम्बनका साधन तो रहे—इस विचारसे अमेरिकन लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। विवाहके अनन्तर पतिकी आर्थिक स्थितिके अनुसार कुछ स्त्रियाँ नौकरी छोड़ देती हैं, कुछ अपने कपड़े-लत्तेके खर्च भरके लिए काम करती हैं और कुछ अपनी नौकरी क़ायम रखकर समाजकी सहायता करती हैं। समाजमें स्त्रियोंके कार्यक्षेत्र कुछ बँधे हुए हैं। कारखानोंमें जितने काम

स्त्रियोंके कार्यक्षेत्र

अल्पश्रम और सूक्ष्म कौशलके हैं वे स्त्रियाँ ही करती हैं। प्रारम्भिक पाठशालाओंमें पढ़ानेका काम उन्हींको मिलता है। टाइप करना, स्टीनोग्राफ़रका काम, सेक्रटरीका काम—ये सब भी स्त्रियोंके ही काम समझे जाते हैं। बस यही अमेरिकन स्त्रियोंके कार्य-क्षेत्रकी सीमा है। बीच बीचमें कालेजोंमें पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको भी प्रोफेसरीका पद मिलता रहता है और श्री रूजवेल्टने अपने मन्त्रिमण्डलमें कुमारी परकिन्सको नियुक्त किया है, पर ये उदाहरण अपवादरूप और नयी नीतिके निदर्शक मात्र हैं। राजनीति, व्यापार-व्यवसाय आदिमें जिम्मेदारीके काम स्त्रियोंको सौंपनेकी प्रथा अभीतक नहीं चली है। परन्तु स्वाभाविक उन्नतिक्रमसे स्त्रियाँ इस पदपर पहुँच जायँ तो अमेरिकन लोकमत इसका अधिक विरोध भी न करेगा। फिर भी यह प्रवृत्ति खूब तेज़ीसे बढ़ रही है, ऐसा नहीं कह सकते। प्रारम्भिक पाठशालाओंमें जिस उदारतासे स्त्रियोंकी नियुक्ति की जाती है वह उदारता माध्यमिक विद्यालयों अर्थात् (लड़कोंके) हाई स्कूलोंमें उनकी नियुक्ति करनेमें नहीं दिखाई जाती। इसी तरह शिक्षा-विभागके जिम्मेदारीके पदोंपर भी अधिकतर पुरुष ही रखे जाते हैं।

इंग्लैंड और फ्रांसमें यद्यपि अमेरिका जैसी ही स्थिति है तथापि कुल मिलाकर पेशों-धन्धोंमें स्त्रियोंकी संख्या कम ही है। अमेरिकामें जो क्षेत्र सोलहो आने स्त्रियोंके अधिकारमें है, इंग्लैण्डमें उन क्षेत्रोंमें बहुसंख्यक पुरुष भी काम करते दिखाई देते हैं। कोई पर्यटक उत्तर भारतके परदे और बुर्क़ा-प्रथाको देखकर महाराष्ट्र गुजरातकी स्त्रियोंको देखे तो उसे बहुत भारी अन्तर मालूम होगा। वैसे ही यूरोपसे अमेरिका जानेवाले यात्रियोंको यह दिखाई देता है कि वहाँ स्त्रियोंको अपेक्षाकृत

अधिक स्वाधीनता प्राप्त है। इस विषयमें यूरोपवाले अपनेको अमेरिकनोंसे अधिक सनातनी कहते हैं और अमेरिकावाले अपनेको रूसवालोंसे अधिक सनातनी मानते हैं। पर इस सनातनत्वकी कोई तोल-माप नहीं है।

सारांश, बुद्धि, कार्यकुशलता और शारीरिक सामर्थ्यकी दृष्टिसे स्त्रियाँ सब कामोंमें पुरुषोंकी बराबरी कर सकती हैं, यह विश्वास आज भी यूरोप-अमेरिकावालोंके मनमें नहीं हुआ है। पर इस बातको खोलकर कहनेवाला कोई नहीं है। किसी जिम्मेदारीके पदपर किसी उम्मेदवारको नियुक्त करना हो तो जान-बूझकर वैसा न करते हुए भी पुरुषको तरजीह दी जाती है।

रूसकी बात

रूसने तो सिद्धान्त-दृष्टिसे स्त्री-पुरुषका भेद ही नहीं रखा है। किसी विशेष स्थानपर किसीकी नियुक्ति करते समय केवल उसकी योग्यता देखी जाती है, वह स्त्री है या पुरुष इसका विचार नहीं किया जाता। "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः"—संस्कृतकी इस उक्तिपर हमारी अपेक्षा रूसवालोंका अधिक विश्वास है। इसी कारण पुलिससे लगाकर दायित्वयुक्त राजनीतिक विभागतक सभी क्षेत्रोंमें स्त्रियाँ प्रमुख रूपमें दिखाई देती हैं।

स्त्रियाँ कमज़ोर अथवा न्यूनबुद्धिवाली होती हैं इसलिए उन्हें अमुक अमुक काम ही देने और अमुक अमुक न देने चाहिये, रूसमें ऐसा नहीं सोचा जाता। रूसी जहाज़पर पाँव रखते ही आपको वहाँ स्त्रियाँ मर्द खलासियोंके साथ शारीरिक श्रमके काम करती दिखाई देंगी; लेनिनग्राडमें प्रवेश करते ही सम्भवतः कोई स्त्री ही आपका पासपोर्ट जाँचने आवेगी; रेलपर गार्डका काम करती हुई भी कोई स्त्री दिखाई पड़ सकती है; वर्षा और बर्फमें ओवरकोट ओढ़े, ट्रामके जङ्क्शनपर लाइन

बदलनेका काम करते हुए भी आप उन्हें देख सकते हैं; बड़े-बड़े दफ़्तरोंमें जानेपर जिम्मेदार कर्मचारीकी हैसियतसे आपसे बात करनेके लिए कोई स्त्री ही आपके पास आवेगी; और न्यायासन-पर बैठकर पुरुष गवाहों एवं अभियुक्तोंसे निर्विकार मनसे किन्तु सहानुभूतिके साथ प्रश्न करती हुई भी स्त्रियाँ दिखाई देंगी। छात्राएँ कारखानोंमें दहकती भट्टियोंके पास खड़ी होकर तपे लोहेपर घन चलाती हैं। यह दृश्य दुनियाँमें और कहीं भी देखनेको नहीं मिलेगा।

जर्मनीकी विचारधारा

अमेरिका और इंग्लैण्डमें स्त्रियोंका जो पद और स्थान है, वही महायुद्धके बाद १४ वर्षोंतक जर्मनीमें भी उन्हें प्राप्त था, परन्तु नाज़ी-क्रान्तिके कारण वहाँ स्त्रियोंके जीवनमें भी क्रान्ति हो गयी। पुरुषों और स्त्रियोंके कार्यक्षेत्र अब वहाँ बिलकुल अलग-अलग हैं। पुरुष पैसा कमावे और स्त्री घर-गृहस्थी और बच्चों-को सम्हाले, यह व्यवस्था की गयी है। डाक्टर, शासक आदि-का कार्य करनेकी अनुमति उतनी ही स्त्रियोंको मिलती है जितनीकी नितान्त आवश्यकता होती है। वीरपत्नी और वीर-प्रसू बनना ही स्त्री-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है, इस प्रकारकी विचारधारा युद्धोन्मुख जर्मनीमें बह रही है।

स्त्री जीवनके लक्ष्य

प्रत्येक समाजमें स्त्री-जीवनके लक्ष्यका कुछ विशेष रूप है। अमेरिकन स्त्रीको ऐसे व्यवसायकी तलाश रहती है जिसमें उसे अपनी योग्यता दिखानेका अवसर मिले। अपनेमें जो विशेष गुण हों उन्हें समाजके सामने रखकर जितनी लौकिक उन्नति सम्भव हो उतनी कर लेना उसका लक्ष्य होता है। रूसमें तो अब स्त्री और पुरुष-जीवनके लक्ष्योंमें कोई भेद रहा ही नहीं। वहाँकी स्त्री अपने सामने यह

लक्ष्य रखती है कि उसके गुणोंका समाजको अधिकसे अधिक उपयोग होनेकी दृष्टिसे सरकार जो काम बतावे वह उसे करना चाहिये और उसके साथ साथ सन्तानोत्पादनके अपने नैसर्गिक कर्तव्यका भी पालन करना चाहिये। जर्मनीमें हिटलरने नारी-जीवनके लक्ष्यको मर्यादित कर दिया है। उसकी भूमिका ही यह है कि स्त्री कभी नेता नहीं बन सकती, उसे पुरुषके पीछे-पीछे ही चलना होगा। नाज़ी सिद्धान्त यह है कि उत्तम माता और उत्तम पत्नी बनना ही स्त्रीके जीवनका लक्ष्य होना चाहिये, इसके आगे उसे न देखना चाहिये। जर्मनीकी स्त्रियोंको यह व्यवस्था कहाँतक मान्य है यह कहना कठिन है, क्योंकि आज तो हिटलरके खिलाफ वहाँ कोई ज़बान भी नहीं हिला सकता। केवल वही लोग मुँह खोल सकते हैं जिन्होंने हिटलरकी चाप-लूसी करके अधिकारकी जगहें हथिया ली हैं। सम्पूर्ण यूरोपका सामान्य मत यह है कि स्त्री-जीवनके विषयमें जर्मनीकी वर्तमान नीति प्रतिगामी है और उसके कारण नारी-समुदायकी गत अर्द्धशताब्दीकी सम्पूर्ण प्रगति नष्ट होकर वह एकदम पचास साल पीछेकी अवस्थाको पहुँच गया है।

सह-शिक्षाके विविध रूप

सह-शिक्षा अथवा लड़के-लड़कियोंकी एक साथ पढ़ाईके विषयमें अमेरिका अपनी भावात्मक नीतिपर स्थिरसा दिखाई देता है। कुछ पुरानी संस्थाओंको छोड़कर बाक़ी सभी स्कूल-कालेजोंमें लड़के-लड़कियोंके साथ पढ़नेकी व्यवस्था है। परन्तु कुछ कक्षाएँ पार कर लेनेके बाद जो लड़की चाहे वह कुछ भिन्न विषय भी ले सकती है। गृह-प्रबन्ध, टाइप-राइटिङ्ग, रोगि-परिचर्या, सिलाई आदि सिखानेके लिए अलग कक्षाएँ और स्त्रियोंके स्कूल भी हैं। इस तरह रूसवालोंके शब्दोंमें कह सकते हैं कि अमेरिकामें सह-

शिक्षा नहीं है, केवल कुछ विषयोंकी पढ़ाई एक साथ होती है। रूसके स्कूल-कालेजोंमें अवश्य ही सच्चे अर्थमें सहशिक्षा और समान शिक्षा आरम्भ हो गयी है। वहाँ लड़कोंके लिए अलग विषय और लड़कियोंके लिए अलग विषय, ऐसी व्यवस्था नहीं है। आप वहाँके कारखानोंमें जायँ तो लड़के-लड़कियाँ दोनोंको एक साथ लोहारका काम करते हुए पायेंगे। अर्थात् वहाँ लड़के लड़कियाँ एक ही स्थानपर और एक ही उद्देश्यसे पढ़ाये-सिखाये जाते हैं। इंग्लैण्ड और फ्रांसमें सहशिक्षा नहीं है। कुछ विश्व-विद्यालयोंमें उच्च कक्षाओंमें लड़के-लड़कियोंको साथ पढ़ानेकी व्यवस्था है और अब कुछ हाई स्कूलोंमें भी ऐसा होने लगा है। पर इसका कारण यह है कि लड़कियोंके लिए अलग स्कूल खोलनेमें खर्च पड़ता है। अर्थात् इन देशोंने सहशिक्षाके सिद्धान्तको अभी स्वीकार नहीं किया है। जर्मनीमें भी लड़कों और लड़कियोंके हाई स्कूल अलग अलग हैं। अभीतक तो उनमें पढ़ाई एक ही थी पर आगेसे लड़कियोंको कुछ भिन्न विषय भी सिखाये जायँगे। सारांश, सहशिक्षा और समान शिक्षाकी दृष्टिसे यूरोप अमेरिकामें विविध प्रकारकी व्यवस्थाएँ चल रही हैं, सर्वत्र एक ही सिद्धान्त मान्य और प्रचलित नहीं है।

विवाह-वय

विवाह, नीति और समाजके आर्थिक सङ्गठनमें परस्पर कितना सम्बन्ध है, पाश्चात्य देशोंकी अवस्था देखनेसे इसका पता चल जाता है। पश्चिमके लोग प्रौढ़ वयके विवाहको ठीक समझते हैं पर इस प्रौढ़ावस्थाकी सीमा कहाँ है, यह बताना कठिन है। आर्थिक परिस्थिति ऐसी है कि उच्च शिक्षा प्राप्त किये बिना अच्छी नौकरी मिलती नहीं और नौकरी मिल जानेपर भी काफी रुपया इकट्ठा किये बिना

पुरुष ब्याहका बोझ उठानेको तैयार नहीं होते। इस कारण स्त्री-पुरुष दोनों अधिक उम्रतक अविवाहित रहते हैं। इसका प्रभाव प्रचलित सामाजिक नीति-नियमोंपर पड़ना अनिवार्य ही है। इस आपत्तिसे बचनेके दो रास्ते हैं। या तो समाजका आर्थिक सङ्गठन इस तरह बदल जाय कि युवावस्था प्राप्त होनेपर हर एकको काम-धन्धा अवश्य मिल जाय और उसकी आमदनी इतनी हो कि विवाहकी दृष्टिसे वह स्वावलम्बी हो सके। या फिर सामाजिक सुनीति दुर्नीतिके विषयमें हमारी कल्पना बदल जाय। भारतके समाज-नेताओंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि नीति आर्थिक परिस्थितिपर अवलम्बित होती है। हमें अपनी नीतिविषयक कल्पनाको कायम रखना हो तो केवल सदाचारका उपदेश करते रहनेसे काम न चलेगा। इसके लिए हमें आर्थिक परिस्थितिपर आवश्यकतानुसार नियन्त्रण रखना होगा और ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिसमें प्रत्येक कार्यक्षम युवकको इतना पैसा मिल सके कि वह ब्याह करके गृहस्थीका बोझ उठा सके और इतनी देरको न मिले कि उसकी जवानीकी आशाएँ और उमंगें विदा हो चुकी हों। रूसमें पूर्णवयस्क विद्यार्थियोंको सरकार छात्रवृत्ति देती है और विवाहित विद्यार्थियोंके लिए छात्रावासमें रहनेकी सुविधा कर दी जाती है। अमेरिकामें भी युवा छात्रों और छात्राओंका झुकाव ब्याह करके साथ रहनेकी ओर होता जा रहा है। सारांश, आर्थिक परिस्थिति अनुकूल हो तो मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति यही है कि वह सामाजिक नीति-नियमोंका पालन करते हुए जीवन यापन करे; किसी तात्कालिक आन्दोलनके कारण वह लुप्त हो गयी सी भले ही जान पड़ती हो पर वह अन्ततक बनी रहनेवाली है।

स्त्री-जीवनका विचार करते हुए गृह-संस्था और कुटुम्बका प्रश्न भी उपस्थित होता है। हम लोगोंमें यह भ्रम फैल रहा है कि पश्चिमके देशोंमें कुटुम्ब-संस्था नामशेष होती जा रही है और रूसने तो उसकी जड़ खोद डालनेका सङ्कल्प ही कर लिया है। पाश्चात्य देशोंमें भ्रमण कर सूक्ष्म दृष्टिसे कोई वहाँकी स्थितिका अवलोकन करे तो गृह-संस्था नष्ट हो गयी अथवा हो रही है, इसका कोई चिह्न उसे न दिखाई देगा। यह सच है कि बड़े शहरोंमें कुछ लोगोंकी प्रवृत्ति होटलोंमें रहनेकी ओर हो रही है, परन्तु साधारण जन-समाजकी रुचि ऐसी नहीं दिखाई देती। आम तौरसे सबकी इच्छा अपने बाल-बच्चोंके साथ स्वतन्त्र रूपसे रहनेकी ही दिखाई देती है। शहरोंसे हटकर गाँवोंमें जाने पर निजी घर-गृहस्थीका क्रम मजेसे चलता हुआ देख पड़ेगा। हाँ, घरोंमें स्त्रियोंको जो कष्ट और झंझट-झमेलेके काम करने पड़ते थे, वे अवश्य दिन-दिन कम होते जा रहे हैं। हमारी तरह उधरके लोग यह नहीं मानते कि घरमें रसोई पकनेसे ही वह कुटुम्ब कहा जा सकता है। रूसने तो 'पाकशालाका अन्त करो' (डौन विथ दि किचेन) को अपना सिद्धान्त-वाक्य ही बना रखा है। अर्थात् पश्चिमके लोग कुटुम्ब-व्यवस्थाको ऐसा रूप देनेके प्रयत्नमें लग रहे हैं कि जिसमें स्त्रियोंको अधिक श्रम और कष्टवाले तथा उनका अधिक समय ले लेनेवाले काम कम हो जायँ और उन्हें अपनी योग्यता बढ़ानेके लायक काम तथा सांस्कृतिक उन्नति करनेका अवकाश मिले। सब लोग अपनी घर-गृहस्थी समेट कर होटलोंमें जा बसें, इस तरहकी समाज-व्यवस्था न रूसमें है न और कहीं।

भावी कुटुम्बसंस्था

सामुदायिक जीवनक्रमके सांस्कृतिक रूपका लाभ उठाना केवल थोड़ेसे धनिकोंके लिए ही सम्भव न रहे किन्तु छोटे बड़े

सभी कुटुम्बोंको वह मिल सके—इसके लिए कुटुम्ब विषयक अपनी रूढ़ कल्पनाको थोड़ा बहुत बदलने और ऐसी नयी गृह-संस्थाका निर्माण करनेका यत्न पश्चिममें चल रहा है जिसमें सामुदायिक और कौटिम्बिक दोनों प्रकारके जीवनक्रमोंका लाभ सबको मिल सके। समाजकी प्रगतिमें इस अवस्थाका आना सर्वथा स्वाभाविक है।

व्यापक प्रश्नका अंश

स्त्री-जीवनपर विचार करते समय अनेक आर्थिक सामाजिक बातोंका विचार करना पड़ता है। स्त्रियाँ नौकरी करें या नहीं, विवाह किस उम्रमें करें, घरके काम-काज करें या नहीं, शिक्षा लड़कोंके साथ प्राप्त करें या अलगसे इत्यादि प्रश्नोंको अलग-अलग हल करना संभव नहीं। हमारे समाजका आर्थिक संघटन किस प्रकारका होना चाहिये, कैसा है और होगा, उपर्युक्त प्रश्नको इसी दृष्टिसे हल करना चाहिये। स्त्रियाँ, वैवाहिक जीवन, नीति और समाजका आर्थिक संघटन, ये बातें इस प्रकार अन्योन्याश्रित हैं कि इन सबपर प्रत्येक समाजको समष्टिगत दृष्टिसे विचार कर अपनी समस्याओंको हल करना चाहिये। पाश्चात्य देशोंमें स्त्रियोंका प्रश्न जो आज इस तरह उपस्थित है, उसका कारण वहाँकी विशेष आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति है।

स्त्री-पुरुषोंके लिए अलग अलग स्कूल-कालेज खोलनेमें ज़्यादा खर्च पड़ता था इसलिए सह-शिक्षाकी प्रथा चली, महायुद्धके समय पुरुष युद्धक्षेत्रको चले गये इसलिए स्त्रियाँ दफ्तरों और कारखानोंमें काम करने लगीं। पुरुषोंको जल्दी नौकरी न मिलनेसे अधिक उम्रमें ब्याह होने लगे। इस प्रकार एक ओर आर्थिक परिस्थितिका प्रभाव नारी-जीवनपर पड़ रहा है, दूसरी ओर समाजशास्त्र भी उसको एक खास सांचेमें ढाल रहा है।

पाश्चात्य देशोंमें जो परिस्थिति बरसों पहले उत्पन्न हो गयी थी यहाँ हालमें ही उसका आरंभ हुआ है। पश्चिमवालोंकी आर्थिक जीवन-प्रणाली जबसे हमने स्वीकार कर ली, तभीसे समाजकी अन्य बातोंपर भी अज्ञात रीतिसे उसका असर पड़ रहा है। इसी कारण आज सह-शिक्षानीति, विवाह, कुटुम्ब-प्रथा आदिके विषयमें विभिन्न विचारोंके आंदोलन चल रहे हैं।

भविष्यमें हमारे समाजके सामने दो रास्ते होंगे। एक होगा समाजकी तात्कालिक आर्थिक बनावटकी दृष्टिसे कुटुंब, नीति, विवाह इत्यादि विषयक विचारोंको बदलते रहना। ऐसा करनेसे हमारे यहाँ भी पश्चिमी देशोंके इतिहासकी दुहरौनी होगी; दूसरा मार्ग यह होगा कि समाजके नेता व्यापक दृष्टिसे काम लेकर जीवन-प्रणाली और समाज-व्यवस्थाके विषयमें पहले सिद्धांत स्थिर कर लें, फिर तदनुकूल समाज-रचना करें। सदाचार, विवाह, कुटुंब, शिक्षा, व्यवसाय, आश्रम इत्यादिके सम्बंधमें अपने विचार पहले स्थिर कर लें, फिर समाजका आर्थिक संघटन इस रूपमें करें जो उनसे मेल खाता हो और उनका पोषक हो। अर्थात् आर्थिक परिस्थितिके अनुसार समाज-व्यवस्थाके सिद्धांतोंको बदलते रहनेके बदले सामाजिक सिद्धांतोंके अनुसार हमारी आर्थिक परिस्थितिका निर्माण किया जाय। परिस्थितिके अनुसार अपनेको बदलनेकी अपेक्षा अपनी योजनाके अनुसार परिस्थितिको बदलनेका यत्न किया जाना चाहिये। इन दोनोंमेंसे कौनसा मार्ग हमें स्वीकार करना चाहिये, इसका निश्चय कर डालनेकी आवश्यकता आज हमारे समाजके सामने उपस्थित है।

तैंतीसवाँ अध्याय

युवकोंका विद्रोह

महायुद्धके पेटसे नयी नीतिका जन्म हुआ। १९१४ से १९१९ के बीच जो युवक लड़ाईके मैदानपर गये वे वहाँसे लौटने पर पहलेके जैसे नहीं रहे। घर छोड़कर युद्ध-क्षेत्रपर जानेके बाद घरके बड़े-बूढ़ोंका दबाव स्वभावतः ही उनपरसे उठ गया। शिक्षा और नैतिक आचरणके विषयमें दूसरे किसीका नियंत्रण उनपर नहीं रहा। येनकेन प्रकारेण विजय-प्राप्ति ही राजनीतिज्ञों और सैनिक अधिकारियोंका मुख्य लक्ष्य हो रहा था, इसलिए दूसरी छोटी-मोटी बातोंकी उपेक्षा की जाती थी। यह भी कह सकते हैं कि फौजके सिपाही और देश-विदेश मारे-मारे फिरनेवाले ख़लासीकी नीतिमत्ताकी ओर पश्चिमी देशोंके लोग अधिक छानबीनके साथ नहीं देखते। ऐसे धंधेमें दाखिल हुए नवयुवक विद्यार्थियोंके नीतिविषयक विचार बदल जायँ, इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। यूरोपके रणक्षेत्रोंपर गये हुए जो विद्यार्थी अमेरिका लौटकर फिर अपने अपने कालेजोंमें पहुँचे, उन्होंने अपनी नयी नीतिकी परम्परा वहाँ स्थापित की। इस नीतिके मूलमें एक ही ताब था—हमारे लिए कोई भी बंधन न रहे। युद्ध-क्षेत्रपर रहते समय जिस प्रकार नैतिक आचरणके विषयमें विशेष विधि-निषेध नहीं था, सेनाके अनुशासनकी रक्षा करते हुए स्वच्छन्द आहार-विहारकी जिस तरह उन्हें मूक अनुमति थी, वही ढंग आगे भी चलता रहे, यह उनकी इच्छा थी। अमेरिकाके कालेजोंमें लड़के लड़कियोंके साथ पढ़नेकी व्यवस्था

युद्धक्षेत्रसे लौटे हुए युवक

होनेसे इस प्रवृत्तिके कारण होनेवाले अनर्थोंका खूब ढिंढोरा पिटा। जज लिंडसेने अपनी "रिवोल्ट आव माडर्न यूथ" नामक पुस्तकमें जिस स्थितिका अतिरंजित चित्र खींचा है, वह इसी कालकी है। जर्मनी आदि देशोंमें भी जहाँ सहशिक्षाका चलन नहीं था, इस स्वच्छन्दाचार वृत्तिका प्रतिबिम्ब पड़ा हुआ दिखाई दिया।

रूढ़ नीति-नियमोंके विरुद्ध जो विप्लवकी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई, उसका प्रचार अन्य क्षेत्रोंमें भी हुआ। कुछ कालेजोंमें यह नियम है कि धर्मोपदेशके समय विद्यार्थियोंको अवश्य उपस्थित रहना चाहिये। विद्यार्थियोंने इस बाध्यताके विरुद्ध आन्दोलन उठाया। धर्मशिक्षामें बाध्यता न होनी चाहिये, जिसकी इच्छा हो वह उसे ग्रहण करे, दूसरोंको स्वतन्त्रता होनी चाहिये, यह माँग विद्यार्थियोंकी ओरसे उपस्थित की गयी। कुछ सरकारी कालेजोंमें आर० ओ० टी० सी० नामसे सैनिक शिक्षाकी व्यवस्था है, और प्रत्येक विद्यार्थीके लिए उसमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। विद्यार्थियोंने जब इसके विरुद्ध भी आन्दोलन चलाया, तब कितने ही विद्यार्थियों और अध्यापकोंको भी कालेजसे बिदा लेनी पड़ी। अमेरिकामें मद्यपानके विरुद्ध क़ानून है, परन्तु विद्यार्थी लुक छिपकर मनमानी शराब पीते थे। अगर क़ानून हमारे निजके मौज-चैनमें बाधक हो तो उसकी भी अवहेलना करो और जो मनमें आवे वह करो—विद्यार्थी वर्गकी यह मनोवृत्ति हो गयी। उनका कालेज-जीवन स्वाधीनता, स्वच्छन्दाचार तथा भोग-विलासका और सामाजिक बन्धनोंके विरुद्ध विद्रोहका मूर्तिमान् रूप हो रहा था।

बन्धनके बाहर

महायुद्धके बाद १९२० से १९३० तकका समय अमेरिकाके

पूर्ण उत्कर्षका युग था। व्यापार-व्यवसाय खूब धड़ल्लेसे चल रहा था। इससे हरएकको पैसा कमा लेनेकी सुविधा थी। तीन-चार घण्टे रोज़ाना काम कर देनेसे ही विद्यार्थियोंको मौज-चैनके लिए काफी पैसा मिल जाता था। पढ़ाई समाप्त होने पर कहीं-न-कहीं नौकरी या कोई काम मिल जानेका पूरा इतमीनान रहता था, बीचमें कालेज छोड़ देनेकी भी सुविधा थी। इन सुविधाओं और आर्थिक निश्चिन्तताके कारण विद्यार्थियोंकी विद्रोह, विलास और स्वच्छन्दाचरण वृत्तिको मानो अनुकूल वातावरण मिल गया। परन्तु १९३० से अमेरिकाकी आर्थिक स्थिति बदली और तबसे विद्यार्थियोंकी मनोवृत्ति भी बदलने लगी।

समृद्धिका काल और विलास

१९३० ई० से अमेरिकामें व्यापार-व्यवसायकी मन्दी आरम्भ हुई। बेकारोंकी टोलियाँ जेबमें हाथ डाले और मुँहमें सिगरेट दबाये जहाँ तहाँ निठल्ली बैठी दिखाई देने लगीं। विद्यार्थियोंको स्वावलम्बी बनकर रहनेमें कठिनाई और मौज-शौकके लिए पैसेकी कमी पड़ने लगी। शिक्षा-समाप्तिके बाद बेकारोंकी टोलीमें सम्मिलित होनेका भयानक चित्र उनकी कल्पना दृष्टिके सामने उपस्थित रहने लगा। अभिभावकोंका रुपया शेयरोंमें डूब जानेसे घरमें भी तबाही आ गयी। इस प्रकार नवयुवकोंके लिए घरसे भी कोई आशा न रही और भविष्य भी अन्धकारमय हो गया। देशमें विपुल धन-वैभव रहते हुए भी बहुतोंके लिए दोनों समय पेटभर अन्न मिलना कठिन हो गया। इस परिस्थितिने युवकवर्गको धक्का देकर सचेत कर दिया और उसे सोचने-विचारनेको लाचार किया।

बेकारीका भविष्य

देशमें विपुल धन-सम्पत्तिके रहते लोग क्यों भूखों मर रहे

हैं, इस प्रश्नका उत्तर ढूँढ़नेका यत्न होने लगा। लोगोंको ऐसा दिखाई दिया कि आर्थिक क्षेत्रमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य-के सिद्धान्तका अतिरेक होनेसे दुर्बल जन बल-वानोंके भक्ष्य बन रहे हैं। हर एक आदमी जितना चाहे उतना धन कमाये और जिस तरह चाहे उसका उपयोग करे, इस स्वाधीनताके कारण समाजमें आर्थिक विषमता हद दरजेको पहुँच गयी है। इस स्थितिको हटाना हो तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, नफाखोरी और धन-सञ्चय-का समाज द्वारा नियन्त्रण होना चाहिये। व्यक्तिको समाजके हितका ध्यान रखते हुए चलना चाहिये, केवल अपना ही हानि-लाभ देखकर कार्य करना ठीक नहीं। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके बदले समाज-बन्धनके सिद्धान्तपर जीवनका सञ्चालन होना चाहिये।

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य अथवा समाजबन्धन ?

इस ढङ्गसे विचार करते करते विद्यार्थी-वर्गके जीवनसे पहलेका छिछलापन मिटने लगा और उसकी जगह गम्भीरता पैदा होने लगी। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और व्यक्ति-गत सुखभोगके सिद्धान्तोंपर निर्मित हमारा जीवन-क्रम सदोष है, ऐसा अनुभव उन्हें होने लगा। दुनियाँमें अपने मौज-चैनके सिवा समाज नामकी एक वस्तु भी है और उसके लिए हमें कुछ करना चाहिये, यह बात उनके जीमें उठने लगी। पहलेके नैतिक तथा धार्मिक बन्धन शिथिल पड़ जानेपर भी हमें अपने मनसे ही अपने आचार-व्यवहारपर कुछ बन्धन लगा लेने चाहिये, यह भावना उनके मनमें उत्पन्न हुई। जो विद्यार्थी प्रेम-लीला, नाच-रङ्ग, मद्यपान आदिमें निमग्न होकर दीन दुनियाँको एकदम भूल गये थे, वे राजनीति, समाज, आर्थिक समस्या, श्रमिक वर्गकी स्थिति, अस्पृश्य वर्ग (हबशी), अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आदि

युवकोंका विवेक जागा

गम्भीर प्रश्नोंपर दिमाग लड़ाने लगे। उनका सङ्गठन हुआ, संस्था बनी, सभाएँ होने लगीं और विद्यार्थी-वर्गमें जीवन है इसका परिचय मिलने लगा।

मजदूरोंके हिमायती

जिस आन्दोलनका जन्म विश्वव्यापी अर्थ-सङ्कटसे हुआ हो, उसका झुकाव खासकर आर्थिक पुनस्सङ्गठनकी ओर होना स्वाभाविक ही था। अतः पूँजीपतियोंपर समाजका अधिक नियन्त्रण रहे और श्रमजीवी वर्गकी स्थिति सुधारी जाय, यह भावना युवकवर्गमें प्रबल हो उठी। प्रस्तुत लेखक १९३१ में अमेरिकामें ही था, उस समय केन्टकी प्रान्तके खान-मज़दूरोंने हड़ताल कर दी थी और वे बड़े कष्टमें थे। उनकी स्थितिको अपनी आँखोंसे देखनेके लिए कोलम्बिया विश्वविद्यालयके कुछ विद्यार्थी खास मौक़ेपर पहुँचे पर वहाँके अधिकारियोंने उन्हें भीतर जानेकी मनाही कर दी। इस मौकेपर विद्यार्थियोंके आन्दोलनका ज़ोर और बढ़ा।

'न योत्से'

युवकोंने एक और आन्दोलन उठा रखा है। वह यह है कि अमेरिका आगेसे किसी युद्धमें शामिल न हो। १९१८-१९ में महायुद्धमें सम्मिलित हुए विद्यार्थियोंकी आँखों-के सामने उस कालका भयानक चित्र अब भी घूम रहा है। पूँजीपति वर्ग अपने निजी फायदोंके लिए देशको लड़ाईमें फँसाता है और उससे अपना स्वार्थ साधता है, गरीब जनता अकारण बलि पड़ती है, इसलिए भविष्यमें युद्ध होने ही न चाहिये और हों भी तो उनमें अमेरिकावालोंको शामिल न होना चाहिये, इस तरहके विचार इस समय सारे देशके युवकोंमें फैल रहे हैं। १९३२ में वाशिङ्गटनमें अखिल अमेरिका विद्यार्थी सम्मेलन हुआ जिसमें युद्ध-विरोधी प्रस्ताव पास हुआ। १९३४ में २५ हजार विद्यार्थियोंने युद्धके विरोधमें विशाल जुलूस

निकाला था। कालेजोंमें अनिवार्य सैनिक शिक्षाकी व्यवस्थाके विरुद्ध आन्दोलन चल ही रहा है। विद्यार्थी लारियोंपर बैठकर देहातमें जाते, इस विषयपर वक्तृताएँ देते, परचे बाँटते और कालेजमें सभा करके वाद-विवाद करते हैं।

विद्यार्थियोंके आन्दोलनकी तीसरी दिशा वर्णभेदको मिटाना है। उनका विचार है कि नीग्रो या हबशी लोगोंके विरुद्ध जो द्वेषभाव दिखाया जाता है वह दूर होना चाहिये। वे यह भी चाहते हैं कि समाजके अन्तर्गत सब वर्णोंके लोग समान समझे जायँ।

वर्णभेद और समाजवाद

रूसके समाजवाद (सोशलिज़्म) और अमेरिकन युवकोंके समाजवादमें अन्तर है। अमेरिकन युवकोंमें क्रान्तिवादियोंका अभाव नहीं है, पर उनका बहुमत शान्ति-मार्गसे चलनेके ही पक्षमें है। दूसरी बात यह है कि रूसके आन्दोलनके धर्मविरोधी भावको अमेरिकन युवकोंने ग्रहण नहीं किया है। बल्कि कह सकते हैं कि अमेरिकाके समाजवादी नेता धार्मिक वृत्तिवाले और अध्यात्मवादी हैं। यह अन्तर विशेष रूपसे ध्यानमें रखने योग्य है।

महायुद्धके बादवाले शान्ति और सुखसमृद्धिके कालमें जिस स्वच्छन्दतावादी नीतिका प्रचार हुआ था, व्यापार-व्यवसायकी मन्दीसे उसकी धाराको धक्का लगा और विद्यार्थी-वर्गमें उत्तरदायित्व, अनुशासन तथा समाज-बन्धनके विचारोंका उदय हुआ। समाजके अत्यावश्यक प्रश्नोंको अपने हाथमें लेकर वे उसके लिए कष्ट सहनेको तैयार हैं, इसका परिचय भी विद्यार्थियोंने दिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि विद्यार्थियोंके इस आन्दोलनकी प्रेरणा कहीं बाहरसे नहीं आयी किन्तु स्वयं उन्हींके अन्दर उत्पन्न हुई है।

अन्तःप्रसूत प्रेरणा

विद्यार्थी-आन्दोलनका नेतृत्व भी विद्यार्थी ही कर रहे हैं। इस आन्दोलनका झुकाव समाजवादकी ओर होते हुए भी रूसी समाजवादके धर्मद्वेष और क्रान्तिवादको उसने स्वीकार नहीं किया है।

अंग्रेज युवकोंमें जागृति

अंग्रेज लोगोंका स्वभाव पुराणप्रिय और जहाँतक हो सके परम्पराको पकड़े रहनेका है और इसका प्रतिविम्ब ब्रिटिश विद्यार्थी-वर्गकी मनोवृत्तिमें भी दिखाई देता है। अंग्रेज युवक घरमें माँ-बापके विचारों और अपने विश्वविद्यालयोंमें प्रचलित विचारोंसे अधिक आगे नहीं बढ़े थे। महायुद्धके बाद यूरोपमें श्रमिकवर्गमें जो जागृति उत्पन्न हुई उसकी लहर उनके जीवन-प्रदेशतक बहुत देरसे पहुँची। १९२६ ई० में इंग्लैण्डमें सब श्रमजीवीवर्गोंने मिलकर आम हड़ताल की थी। विद्यार्थियोंने उसे भङ्ग करानेमें सरकारको सहायता दी। इस नीतिकी विवेचना करना कठिन नहीं है। अमेरिकामें साधारण मजदूरसे लगाकर करोड़पतीतक सबके लड़के कालेजमें जाकर जिस तरह शिक्षा ग्रहण करते हैं इंग्लैण्डमें वैसी स्थिति नहीं है। वहाँ धनी कुलमें जन्मे हुए और उच्च शिक्षाप्राप्तिमें समर्थ विद्यार्थी ही कालेजमें दाखिल हो सकते हैं। इस कारण मध्यम और धनीवर्गके युवकोंकी सहानुभूति श्रमिकवर्गके प्रति होना सम्भव नहीं था। पर पिछले सात आठ वर्षोंके अन्दर यह स्थिति बदली है।

अबतक ब्रिटिश विद्यार्थियोंकी दृष्टि अपनी पढ़ाई और कालेजकी चहार-दीवारीके बाहर अधिक नहीं जाती थी। परन्तु गत १५ वर्षोंके अन्दर दुनियाँमें जो उथल-पुथल बनाव-बिगाड़ हुए हैं, उनके कारण उनकी निगाह धीरे-धीरे पुस्तकों और कालेजके बाहर जाने लगी है। देशके श्रमिकवर्गके प्रति उन्हें

सहानुभूति मालूम होने लगी है। वीचमें उक्त मजदूरोंकी हड़ताल होने पर इस भाव-जागृतिका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला। उस समय कुछ विद्यार्थियोंने हड़तालियोंका पक्ष लिया और कुछने पहलेकी तरह मालिकोंको मदद दी।

इस समय ब्रिटिश विद्यार्थियोंमें तीन दल हैं। एक है क्रान्तिवादी कम्यूनिस्टोंका। इनकी संख्या थोड़ी है पर इनमें अध्ययनशील और बुद्धिमान् विद्यार्थियोंकी अधिकता है। दूसरा दल वैधमार्गावलम्बी समाजवादियोंका है। तीसरा दल अभी एक दो सालसे ही सामने आने लगा है। वह है सर ओसवाल्ड मोस्लेके अनुयायी फासिस्ट युवकोंका।

नये राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विचारोंका प्रचार युवकवर्गमें हो रहा है और आज नहीं तो कल इन विचारोंको आचारका रूप मिलकर रहेगा। सरकारको डर है कि दो परस्पर-विरोधी और क्रान्तिवादी विचारवाले दलोंका आमना-सामना होनेसे उनमें सङ्घर्ष हो जायगा, इसलिए विद्यार्थियोंके आन्दोलनकी गति कुंठित करनेके लिए एकाध क़ानून बनानेके बारेमें वह सोच रही है। सारांश यह कि अंग्रेज विद्यार्थी भी अपने कालेजकी खिड़कीसे समाज और दुनियाँके आन्दोलनोंकी ओर देखने लगे हैं।

फ्रांसीसी युवकोंका तीसरा पन्थ

ब्रिटिश विद्यार्थी-वर्गमें यद्यपि विचार-जागृति हो चुकी है तथापि उसमें कोई विशेषता नहीं दिखाई देती। परन्तु फ्रांसीसी युवकोंके आन्दोलनमें उसके दर्शन होते हैं। फ्रान्सकी राजनीतिमें भी "अन्य देशोंकी तरह पूँजीवादी तथा समाजवादी ये दो पक्ष हैं और अधिकार-प्राप्तिके लिए वे आपसमें लड़ा झगड़ा करते हैं। परन्तु फ्रांसीसी युवकोंने अपने बड़े-बूढ़ोंके इन अतिवादी सिद्धान्तों-

का अनुसरण कर एक तीसरा ही रास्ता अपने लिए निकाला है। वे न पूँजीवादका अंधसमर्थन करते हैं और न भावुकताके वश होकर विशुद्ध समाजवादके ही हिमायती बनते हैं। उन्हें इन दोनों ही विचार-प्रणालियोंमें दोष और त्रुटियाँ दिखाई देती हैं।

सन्तुलित विचार-धारा

पूँजीवादी समाज-व्यवस्थामें बहुसंख्यक श्रमजीवी-वर्गको अपने श्रमका न्यायसङ्गत पुरस्कार और सामाजिक पद नहीं मिलता। राष्ट्रीयताके मधुर नामकी ओट लेकर सत्ताधारी वर्ग ग़रीबोंको अपने लाभके लिए लड़ाईके गढ़ेमें ढकेल देता है। सम्पत्तिका विषम विभाग होनेसे बेकारीका रोग समाजको सदा दबाये रहता है। स्वार्थ और नफ़ाखोरी सामाजिक व्यापारका आधार होनेसे सद्गुणोंका ह्रास होकर दुर्नीतिकी वृद्धि होती रहती है। अतः पूँजीवादी व्यवस्था समाजमें कदापि न रहनी चाहिये। परन्तु उसे हटानेपर समाजवादकी स्थापना करनी ही होगी, यह सिद्धान्त फ्रांसीसी युवकोंको स्वीकार नहीं। समाजवादका झुकाव जड़वादकी ओर बहुत अधिक है। जिन लौकिक सुखों-के लिए पूँजीवादी वर्ग आज जान दे रहा है, उन्हीं सुखोंको समाज अपना एकमात्र लक्ष्य माने, मानवप्रगतिकी दृष्टिसे यह बात इष्ट नहीं है। आर्थिक और भौतिक जीवन महत्वपूर्ण है, पर व्यक्ति और समाजके जीवनमें इनकी अपेक्षा भी श्रेष्ठतर विभाग हैं और उन्हें प्रधानता मिलनी चाहिये। समाजवादमें व्यक्तिका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। आर्थिक क्षेत्रमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका दुरुपयोग किया गया तो उसके कारण सब प्रकार-के व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका गला घोंटकर व्यक्तिको समाजका गुलाम बना देना ठीक नहीं। आर्थिक समाज-व्यवस्थाकी दृष्टिसे व्यक्ति परतन्त्र रहे तो भी आध्यात्मिक दृष्टिसे उसे पूर्ण स्वतन्त्रता रहनी

चाहिये। इस प्रकार फ्रांसीसी युवकोंने आर्थिक समाजवाद और आध्यात्मिक व्यक्तिवाद इन दोनों सिद्धान्तोंका अपने विचारोंमें समावेश किया है। पूँजीवादके स्वार्थमय व्यक्तिवाद और समाजवादके सीमारहित समाजबन्धन इन दोनोंके बीचसे अपना रास्ता निकालनेका वे यत्न कर रहे हैं। औद्योगिक और भौतिक उन्नतिके इस युगमें व्यक्तिके आध्यात्मिक जीवनकी रक्षा किस प्रकार की जाय, इस नये दलके सामने यह एक महत्वका प्रश्न है।

विशेषताकी रक्षा

यद्यपि फ्रांसीसी युवकोंका आन्दोलन अभी आकार विस्तारमें छोटा है पर उसकी विशेषता ध्यान देने योग्य है। प्रत्येक समाज तथा राष्ट्रकी विचार करनेकी कोई विशेष दिशा अथवा भूमिका होती है। उस समाजका इतिहास, पूर्व जीवन और परम्परा इन तीनोंसे मिलकर उसका एक विशेष तत्वज्ञान बन जाता है। उस समाजकी मनोवृत्ति उसीके अनुरूप होती है। अब यदि समाजका पुनस्सङ्गटन ऐसे रूपमें हो जो इस तत्वज्ञान और मनोवृत्तिसे मेल खाता हो तो वह उस समाजको विशेष रूपसे रुचेगा। फ्रान्सके युवकोंने इसी ढङ्गसे समाज-सङ्गटन करनेका विचार किया है।

भारतीय युवकोंके सम्मुख उपस्थित प्रश्न

दुनियाँमें जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक हलचल मची हुई है, उसकी लहर भारतमें भी आ पहुँची है। पुराने ढङ्गकी समाज-रचना और आर्थिक व्यवस्थाके विषयमें युवकोंका मन सशङ्क हो उठा है। आगे चलकर वह और भी श्रद्धाहीन हो जायगा। समाजके ढाँचेको जड़मूलसे बदलकर नया रूप देनेकी अनेक योजनाएँ उनके सामने आवेंगी। पिछले १५

वर्षोंके अन्दर पाश्चात्य देशोंमें जिन सिद्धान्तोंका निर्माण हुआ है, सम्भवतः यहाँ भी उन्हें प्रधानता दी जायगी। यूरोपमें आज जिस तरह राष्ट्रवादी, समाजवादी, फासिस्ट, कम्यूनिस्ट आदि दलोंका सङ्घर्ष चल रहा है, उसी तरह अपने यहाँ भी इन दलोंकी स्थापना और उनके द्वारा यूरोपके इतिहासकी दुहरौनी होगी। पर इस विषयमें दूरदर्शी तथा विचारशील व्यक्तियोंको इसपर विचार करना चाहिये कि समाजके पुनस्सङ्गठनका वह कौन सा सिद्धान्त है जो हमारे समाजकी विचारधारा और मनोवृत्तिके अनुकूल हो। इस दृष्टिसे विचार करने पर यह दिखाई देगा कि हम अपने लिए ऐसे समाजशास्त्रकी रचना कर सकते हैं जिसमें यूरोपीय समाजशास्त्रकी अच्छी बातोंको लेते हुए भी हमारे अपने समाजकी विशेषताओंका ध्यान रखा गया हो और जो उसे स्वीकार हो सकता हो।

जर्मन और भारतीय युवक

राजनीतिकी दृष्टिसे जर्मन विद्यार्थियोंमें जो सजीवपन दिखाई देता है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देता। गत महायुद्धमें पराजित हुए और विजयी राष्ट्रों द्वारा निहत्था बना दिये गये जर्मनीका जो आतंक यूरोपपर छा रहा है, उसका सारा श्रेय जर्मन युवकोंको ही है। डेढ़सौ साल पहले पराजित हुए और १८५७ ई० में निहत्था बनाये गये भारतके युवकोंको जर्मन विद्यार्थियोंकी कार्यावलीको ध्यानपूर्वक देखना, समझना और उसके उपयुक्त तथा विधायक भागको ग्रहण करना चाहिये।

महायुद्ध आरंभ होनेपर दस लाख जर्मन युवक स्वदेशके नामपर बलिदान होनेको युद्धक्षेत्रपर गये थे। युद्धके अंतमें जर्मनीमें क्रांति हुई और कैसरकी एकतंत्र राज्यसत्ता नष्ट होकर सोशल डेमोक्रैट दलका लोकतंत्र शासन स्थापित हुआ। इस

मौकेपर रणक्षेत्रमें उपस्थित जर्मन युवकोंको ऐसा जान पड़ा कि हम लोग जब युद्धमें लग रहे थे, तब सोशल डेमोक्रेटिक दलने हमारे पीठ पीछे बग़ावत कर जर्मनीको हार खिलायी। इस कारण इस नयी राज्यव्यवस्थाके विषयमें जर्मन-युवकोंको कभी अपनेपनका अनुभव नहीं हुआ। उनका मन कहता था कि यह नयी शासनव्यवस्था राष्ट्रीयताका बलिदान करके स्थापित की गयी है। देशमें एक बार फिर राष्ट्रीय भावनावाली सरकार स्थापित हो और जर्मनीके पराभवका परिमार्जन हो, यह आग भीतर ही भीतर उनके दिलमें सुलग रही थी। महायुद्धके बाद ऊपर ऊपरसे देखने पर यद्यपि जर्मनीमें शांति दिखाई देती थी पर प्रतिहिंसाकी आग युवकोंके हृदयोंमें बराबर धुधुआ रही थी और अनुकूल अवसर आने पर वह सारे देशमें वनदाहकी तरह फैल गयी।

प्रतिहिंसाकी धुधुआती आग

जर्मनीके उदाहरणसे यह प्रश्न मनमें उठता है कि राष्ट्रवाद और समाजवादमेंसे कौनसा सिद्धांत युवकोंके मनको आकृष्ट करेगा। समाजवादकी कल्पना आकर्षक और उदार अवश्य है, परंतु पराधीन राष्ट्रकी राष्ट्रीयताकी कल्पनासे जब उसका विरोध होने लगेगा तब जर्मन-युवकोंकी भाँति किसी भी देशके युवक पहले स्वदेशाभिमानसे प्रेरित होकर राष्ट्रीयताका ही पक्ष ग्रहण करेंगे। पर जिस देशमें पराधीनताका प्रश्न न हो, वहाँ जब राष्ट्रवाद और समाजवादके सिद्धांतोंमें विरोध उत्पन्न हो, तब समाजवादके ही सिद्धांत युवकोंको अधिक उदार और आकर्षक जान पड़ेंगे, यह बात अमेरिकाके उदाहरणसे स्पष्ट है। हिटलरने युवकोंकी इस दो भागोंमें बँट जानेवाली मनोवृत्तिको ध्यानमें रखकर दोनों

राष्ट्रवाद या समाजवाद ?

चरम पंथोंको अलग कर दिया और राष्ट्रीय समाजवाद नामसे एक तीसरा रास्ता अपने लिए निकाला। जर्मन युवकोंके सामने जो प्रश्न उपस्थित हुआ था, वही १०-५ सालमें भारतके युवकोंके सामने भी आवेगा। उस समय देशका नेतृत्व अपने ऊपर लिये हुए नेता यदि युवकोंके अन्तःकरणको समझकर नये सिद्धान्त-निर्माणकी योग्यता अपनेमें दिखा सके, तभी उन्हें युवक-वर्गका समर्थन प्राप्त हो सकेगा।

१९३३ में जर्मनीमें नाज़ी क्रान्ति हुई। इसके पहले बारह तेरह सालसे विद्यार्थियोंमें राजनीतिक आन्दोलन चल रहा था। कम्यूनिस्ट, समाजवादी, लोकतन्त्रवादी और राष्ट्रवादी, ये चार दल उनमें थे। उनके सभा-सम्मेलन होते थे और समय समय-पर वे राजनीतिमें प्रत्यक्ष रूपसे भी योग देते थे।

सोशल डेमोक्रेटिक दलने अधिकारारूढ होनेके बाद युवकोंको अपनी ओर करनेका अधिक यत्न नहीं किया। पर हिटलरने

हिटलरकी चतुराई

इसके विरुद्ध युवकोंको ही पहले अपने हाथमें लिया। उन्होंने उनके लिए एक वर्दी नियत कर दी, अभिवादन-पद्धति निश्चित कर दी, उन्हें स्वस्तिक चिह्नांकित पताका दी और उनमें सैनिक अनुशासन उत्पन्न किया। जिस समय अमेरिकाके विद्यार्थी व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका नाम लेकर स्वच्छन्द विहार कर रहे थे, उसी समय जर्मन युवक नेताओंके चरणोंपर अपना सर्वस्व रखकर उनके अनुशासन और बन्धनके अधीन कार्य कर रहे थे। इस तुलनात्मक विवेचनका सार यह है कि जबतक युवकोंके सामने कोई प्रभावोत्पादक लक्ष्य तथा नेता नहीं होता, तबतक उनका निरंकुश व्यक्तिस्वातन्त्र्य और स्वच्छन्दाचार ज़ोरपर रहता है। पर उनके सामने कोई आकर्षक लक्ष्य रखनेवाला नेता मिलने पर वही युवक अपनी सारी

स्वाधीनता उसके चरणोंमें अर्पण कर देनेको तैयार रहते हैं। जो युवकोंकी इस मनोवृत्तिको समझकर व्यवहार करता है वही चतुर नेता है।

वर्त्तमान नाज़ी राज्यमें जर्मनीमें युवकोंका खूब आदरमान है। प्रौढ़ वयके विद्यार्थी नाज़ीदलके सदस्य हो सकते हैं। विद्यार्थियोंका संघटन इस प्रकारका है कि उसमें प्रविष्ट होनेवाला युवक कुछ दिन बाद अपने आप नाज़ी दलका सदस्य हो जाता है। युवकोंको राष्ट्रके लिए कष्ट सहनेका अभ्यास कराया जाता है। नेता रूपमें हुक्म किस तरह चलाया जाता है और अनुयायी रूपमें किस प्रकार आज्ञापालन करना चाहिये, दोनोंकी शिक्षा उन्हें दी जाती है।

रूसके समाजमें नवयुवक वर्ग और प्रौढ़ वर्गका भेद नहीं है। बच्चा माँके पेटसे बाहर आते ही रूसी नागरिक हो जाता है।

रूसी नागरिक तथा विद्यार्थी

विद्यार्थी और नवयुवक होनेके कारण किसीको नागरिक कर्त्तव्यसे छुटकारा नहीं मिलता। दूसरे देशोंमें युवक और प्रौढ़वर्गोंमें जो विरोध दिखाई देता है वह रूसमें नहीं दिखाई देता। वहाँ दोनों वर्गोंमें पूर्ण मतैक्य है।

विद्यार्थीवर्गकी ओर हम जिस दृष्टिसे देखते हैं, रूसकी दृष्टि उससे भिन्न है। हमारी दृष्टि यह है कि विद्यार्थी अवस्था अथवा विद्याभ्यास समाप्त होनेतक बीस-पचीस वर्षकी उम्रतकका समय सुविधा और समाजसे अलिप्त वायु-मण्डलमें बीतना चाहिये। इस अवधिमें विद्यार्थीको व्यवहार और समाजके कठोर वातावरणकी आँच न लगनी चाहिये। अभिभावक अथवा समाज उन्हें पैसा दिया करें और वे केवल खर्च किया करें। पैसा कमानेमें कैसे कैसे कष्ट उठाने होते हैं, इसकी कल्पना

उन्हें न होने पावे। उनका समय सुख-सुविधामें बीते। पढ़ाई सम्हालते हुए हो सके तो थोड़ा बहुत 'रोमांस' वे कर लें। इस अवधिमें हम अपने विद्यार्थियोंको उपदेश देते हैं—प्यारे बच्चो, कल तुम्हें नागरिक बनना है, उसकी तैयारी करो। मानो नागरिक कर्त्तव्य कोई ऐसी वस्तु है कि पहले उसका पाठ याद किया जाय, फिर धड़ाधड़ उसके अनुसार किया जाय।

विद्यार्थी अवस्थाके सम्बंधमें रूसके विचार इसके सर्वथा विपरीत हैं। पहले केवल ज्ञान करा दिया जाय और फिर कुछ वर्ष बाद तदनुसार आचरण कराया जाय, मानव-स्वभावको देखते यह बात असंभव है। ज्ञान और कर्मको एक हलके दो बैलोंकी तरह एक ही जुएमें जोतना चाहिये। कर्मका रूपांतर ज्ञानमें होता है और ज्ञानकी भी हितकर प्रतिक्रिया कर्मपर होती रहती है। विद्यार्थी जब विद्यार्थी-अवस्थामें ही नागरिक रूपसे अपने कर्त्तव्योंका जिम्मेदारीके साथ पालन करेंगे तभी आगे चलकर अपने दायित्वयुक्त कार्योंको निश्चित रूपसे संपादन कर सकेंगे। इसलिए रूसी विद्यार्थियोंके लिए प्रत्येक अवस्थामें उनकी सामर्थ्यके अनुसार सार्वजनिक कर्त्तव्य रख दिये गये हैं।

कर्ममूलक विद्या

गत १५ वर्षोंमें रूसी युवकोंने अपने समाजको लाभ पहुँचानेवाले बहुतसे कार्य किये हैं। १२ वर्षके अंदर संपूर्ण जातिको साक्षर बना देनेका जो मानवी शक्तिके लिए असाध्य दिखाई देनेवाला कार्य रूसने कर दिखाया है, उसका अधिकतर श्रेय रूसी विद्यार्थियोंको ही है। हाई स्कूलमें पढ़नेवाले १५ वर्षके वयवाले लड़के-लड़कियोंने ४०-५० सालके प्रौढ़ स्त्री-पुरुषोंको लिखना पढ़ना सिखाया है। रूसकी सारी खेतीको सरकारी मिलकियत बनानेके काममें २५ हजार विद्यार्थियोंने सरकार-

की मदद की। स्थान स्थानपर उन्होंने और कितने ही लोकोपयोगी कार्य किये हैं। जब मैं मास्कोमें था, उस समय ज़मीनके नीचेसे रेल चलानेके लिए सुरंग बनानेका काम चल रहा था, पर उसके लिए सरकारके पास पैसा नहीं था। विद्यार्थियोंने यह काम अपने ऊपर लिया और मज़दूरोंकी तरह काम कर सुरंगका एक भाग तैयार कर डाला। उनके इस उत्साहके प्रतीक रूपमें मास्कोमें रूसी युवककी एक विशालकाय मूर्त्ति स्थापित करायी गयी है। रूसी विद्यार्थी स्कूल कालेजमें पढ़ते हुए विभिन्न कारखानोंमें जाकर भी काम किया करते हैं। औद्योगिक खोजके कार्य वहाँ उन्हींके जिम्मे रहते हैं। सार यह कि रूसी नवयुवकोंके भीतर यह भावना रहती है कि हम समाजके सजीव अंग हैं और इसी दृष्टिसे हमें अपने कार्य करने चाहिये।

व्यापक अभ्यासकी प्रवृत्ति

प्रत्यक्ष सार्वजनिक कामोंके अतिरिक्त रूसके विद्यार्थी अनेक प्रकारके दिमागी कामोंमें भी लगे रहते हैं। हर एक स्कूल-कालेजमें उनकी वाद-समितियाँ हैं जिनमें राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयोंपर बहस हुआ करती है। प्रत्येक वर्गका एक 'वाल न्यूज़पेपर' अथवा हस्तलिखित समाचारपत्र होता है, इसे विद्यार्थी अपने हाथसे लिखकर प्रति सप्ताह अथवा नियत अन्तरके बाद किसी सार्वजनिक स्थानपर चिपका देते हैं। विद्यार्थियोंके अभ्यास-मण्डल (स्टडी सर्किल्स) हैं जिनमें प्रत्येक सदस्य निश्चित विषयपर अध्ययन कर अपना मन्तव्य मण्डलमें पेश करता है। इस प्रकार रूसी नवयुवकोंके सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनोंके लिए बौद्धिक आधार है।

रूसकी राज्यक्रान्ति प्रौढ़ पुरुषोंके द्वारा हुई, पर इस समाज-

क्रान्तिको चिरस्थायी बनानेमें नवयुवकोंसे सहायता मिली और अब भी मिल रही है।

चौतीसवाँ अध्याय

युवकोंकी मनोवृत्तिमें क्रान्ति

महायुद्धके बादके १५-१६ वर्षोंका समय यूरोप-अमेरिकाका बिलकुल आन्दोलनोंमें बीता है। इस कालमें राजनीतिक और सामाजिक क्रान्तियाँ हुईं, आर्थिक सङ्कट आये, पुराने शास्त्र और सिद्धान्त बदलकर नयी संस्थाओंका जन्म हुआ। इन सबका प्रभाव नवयुवकों तथा विद्यार्थियोंके मनपर पड़ा और उसका प्रतिबिम्ब हमें विद्यार्थियोंके आन्दोलनों एवं विचारधारामें दिखाई देता है।

एक युगके अन्दरकी क्रांतियाँ

१९१९ में महायुद्ध समाप्त होकर जर्मनीमें कैसरके राज्यका अन्त हुआ और सोशल डेमोक्रेसीकी स्थापना हुई। बारह वर्ष बीतते न बीतते उसके अन्तकी भी घण्टी बजी और दूसरी क्रान्ति होकर राष्ट्रीय समाजवादी-दलका अधिकार स्थापित हुआ। रूसमें राज्य-क्रांति होकर ज़ारके सिंहासनपर श्रमजीवी वर्ग आसीन हुआ। वहाँ शुद्ध राजनीतिक क्रान्ति ही नहीं हुई किन्तु आमूल समाज-क्रान्ति हुई। सरदार-रईस, अमीर-ग़रीब, मालिक-मज़दूर इन सब विविध वर्गोंका नाश होकर विशुद्ध श्रमजीवी वर्गकी स्थापना हुई। इटलीमें फासिस्ट शासन स्थापित हुआ और एक निराले सिद्धान्तका प्रयोग आरम्भ हुआ। पूर्वीय यूरोपके

छोटे-मोटे देशोंमें भी राज्यक्रान्तियाँ हुईं और नये नये सिद्धान्तोंकी परीक्षा की जाने लगी।

युवकोंकी शंकावृत्ति

यूरोपमें इन विविध राज्य-व्यवस्थाओं और समाज-व्यवस्थाओंकी स्थापना हो जानेसे युवकोंके मनमें देशमें स्थापित व्यवस्थाके विषयमें एक प्रकारकी शंका-संशयकी मनोवृत्ति उत्पन्न हुई। "जो कुछ हो रहा है वह सब ठीक है, हमें उससे क्या करना है"-यह भाव जाता रहा और उसकी जगह "इन सब उलझनोंमेंसे हम किस तरह अपना रास्ता निकालें"—की खोजी और जिज्ञासु मनोवृत्ति उत्पन्न हुई।

राज्यक्रान्तिका सिद्धान्त समाज, धर्म और नीतिमें प्रविष्ट हो गया। शङ्का और विद्रोहकी मनोवृत्ति एक बार उत्पन्न हो जाने पर एक ही क्षेत्रमें सीमित नहीं रहती, उसकी व्याप्ति अन्य क्षेत्रोंमें भी होती है। नये दृष्टिकोणसे विचार करनेकी आदत पड़ने लगती है। प्रस्थापित व्यवस्था ही दुनियाँमें सर्वश्रेष्ठ नहीं है, इससे और अच्छी व्यवस्था भी हो सकती है और उसकी खोज या परीक्षा हमें करनी चाहिये—इस भावकी उत्पत्ति होती है। पुरानी प्रामाण्य मर्यादा नष्ट हो जाती है और जबतक नयीका निर्माण न हो जाय तबतक बीचके समयमें अराजकता, अव्यवस्थाकी स्थिति रहती है। धार्मिक, सामाजिक और नैतिक तीनों क्षेत्रोंमें यह स्थिति थी कि पुराने प्रमाण-वचनोंका कुछ मूल्य नहीं रहा और नये प्रमाण-वचन अभी निर्माण होनेको बाकी थे। पुरानी समाज-व्यवस्था, पुराने धर्म-विचार और पुराने नीति-बन्धनोंके विषयमें मनमें शङ्कावृत्ति उत्पन्न हो गयी। श्रद्धाका नाश होते ही बन्धन शिथिल पड़ गये, नये सामाजिक तथा नैतिक विचारोंका प्रयोग होने लगा। इन सबका प्रभाव

युवकोंके मनपर हुआ और उसकी पहलेकी निश्चित दिशा नहीं रह गयी। बड़ोंको जिन प्रश्नोंके उत्तर न मालूम हों उनके विषयमें युवकोंके मनमें भी अनिश्चय रहना स्वाभाविक ही है।

सुख-स्वप्नका भंग

अर्थ-सङ्कटसे इस परिस्थितिको और ज़ोर मिला। सुख-समृद्धिके समय मनुष्यके मनमें अधिक विचार नहीं उठते। पेट खाली रहने पर दिमाग जागता और सोचने-विचारने लगता है। जबतक माँ-बापसे मिलने-वाले पैसेसे मज़ेसे पढ़ाई चल रही थी अथवा थोड़ा-सा काम कर देनेसे इसके लिए काफी पैसे मिल जाते थे, तबतक सब कुछ ठीक था। जबतक पढ़ाई समाप्त होते ही नौकरी और काम-धन्धा तैयार मिलता था, तबतक विद्यार्थी वर्ग सहज ही सुख-स्वप्नोंका आनन्द लेता रहा। परन्तु व्यापार-व्यवसायकी मन्दीने यह अवस्था बदल दी। बड़े बड़े रोज़गारी और ठेकेदार मिट्टीमें मिल गये। पढ़ाई समाप्त होने पर कोई काम-धन्धा मिलनेकी आशा नहीं रही और बाहर निकलने पर हमें भी इधर-उधर भटकती हुई बेकारोंकी टोलियोंमें शामिल होना होगा, इस चिन्ताका भयानक चित्र कालेजके विद्यार्थियोंके सामने उपस्थित रहने लगा। भविष्यके विषयमें नैराश्यकी भावना उत्पन्न होनेसे विचारशक्ति जाग्रत हुई।

विचारशक्तिको धक्का लगा

इस विपत्तिके कारण विद्यार्थियोंके मनमें यह बात उठने लगी कि जिस समाजमें हम रहते हैं उसकी आर्थिक और नैतिक घड़ीका कोई पुरजा अवश्य बिगड़ रहा है, समाजके तत्वज्ञानमें, उसके परिचालक सिद्धान्तोंमें कहींपर कोई त्रुटि अवश्य है। अतः इस समाजके ढाँचेको जड़मूलसे बदल देना चाहिये और नयी समाज रचनामें हमें प्रत्यक्षरूपसे योग देना चाहिये, तभी

आगेके लिए हम कुछ आशा रख सकते हैं। इस तरह अर्थ-सङ्कटसे विचारशक्तिको धक्का लगा और विद्यार्थियोंके जागनेमें सहायता मिली।

राज्यक्रान्ति-सामाजिक क्रान्ति और सङ्कटकी आँच जिस न्यूनाधिक मात्रामें विद्यार्थी-वर्गको पहुँची, उसी हिसाबसे भिन्न भिन्न देशोंमें आगे पीछे उसमें जाग्रति उत्पन्न हुई। विद्यार्थियों-के विचारों तथा आन्दोलनोंपर स्थानीय परिस्थितिका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और इस कारण भिन्न भिन्न देशोंमें उनके आन्दोलनोंकी दिशा भिन्न भिन्न है। प्रत्येक राष्ट्र और समाजकी विशेषताओंके अनुसार उसके विद्यार्थी-वर्गके आन्दोलनको भिन्न भिन्न रूप प्राप्त हुआ है। परन्तु उन सबकी जड़में कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। उनसे इसका कुछ अनुमान कर सकते हैं कि अगली पीढ़ीके समयमें दुनियाँमें कौन कौनसे बनाव-बिगाड़ होनेवाले हैं।

पिछले चार-पाँच वर्षोंके अन्दर दुनियाँमें जो उथल-पुथल और परिवर्त्तन हुए हैं, उनसे युवकोंको कम-से-कम इस एक

बेकारीका असर

बातका निश्चय हो गया है कि समाजका वर्त्तमान आर्थिक सङ्घटन सदोष है और वह बदला जाना चाहिये। सशक्त, बुद्धिमान्, शिक्षित और चरित्रवान् युवकोंको जिस समाजमें दो समय पेटभर अन्न मिलनेका भी ठिकाना न लगता हो और पढ़ाई समाप्त कर स्कूल कालेजसे निकलने पर बेकार रहकर दर दर मारे मारे फिरना पड़े, उसमें कहीं कोई भारी दोष अवश्य होना चाहिये और उसे दूर करना होगा। युवकोंकी बेकारीका दुनियाँकी राजनीतिपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है और आगे भी पड़ेगा। समाजके इस दोषको दूर करनेके लिए वर्तमान पूँजीवाद और नफाखोरीकी व्यवस्थापर

समाजका नियन्त्रण होना चाहिये, इस विषयमें सबका एकमत है। इस नियन्त्रणकी मात्रा कितनी हो, केवल इसीमें भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न मत है।

जिस व्यवस्थामें पूँजीवादपर किसी भी प्रकारका नियन्त्रण रखा जाता हो उसे मोटे तौरपर 'सोशलिज्म' या समाजवाद कहते हैं। परन्तु समाजवादमें अनेक अर्थोंका समावेश होनेके कारण सर्वत्र उसका एक ही अर्थ नहीं किया जाता। प्रत्येक देशके समाजवादी युवक-आन्दोलनका रूप उस देशकी सामाजिक परम्परा, मनोवृत्ति और दार्शनिक विचारों-पर अवलम्बित है। अमेरिकामें समाजवाद, धर्म और शान्ति वादका संयोग किया गया है। फ्रान्समें आध्यात्मिक और व्यक्ति-विकास वादके सिद्धान्तोंके साथ उसका गठबन्धन किया गया है। जर्मनीमें वह राष्ट्रीयता, जर्मन-संस्कृति और जर्मन जातिके उत्कर्षके फ्रेममें जड़ दिया गया है। रूसका समाजवाद क्रान्ति-वादी, विश्वराष्ट्रवादी और आर्थिक जीवनपर ज्यादा ज़ोर देने-वाला है। इस प्रकार एक ही वस्तुके भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न रूप दिखाई देते हैं। पर इन सबमें जो सामान्य तत्व दिखाई देता है उसपर सभी देशों और समाजोंको विचार करना पड़ेगा। राष्ट्रकी सम्पत्तिका उपयोग समाजके हर एक आदमीको होना चाहिये और खासकर शरीर तथा दिमाग़से काम करने-वाले वर्गोंको उनकी मेहनतका मुनासिब मुआवज़ा मिलना चाहिये—यह सिद्धान्त उदार तथा आकर्षक है और इस कारण जिन जिन आन्दोलनोंमें इसका समावेश हुआ है, उन्हें युवक वर्गका समर्थन मिले बिना नहीं रह सकता, फिर चाहे उस आन्दोलनको आप समाजवाद कहें या और किसी नामसे पुकारें।

समाजवादके रूप

अबतक समाजमें 'शूद्र' माने गये श्रमजीवी वर्गके लिए

युवकोंके हृदयमें सहानुभूतिकी मात्रा बढ़ रही है। अबतक यह वर्ग अज्ञान और दरिद्रताके गढ़ेमें डाल रखा गया, समाजमें उसको नीचा स्थान दिया गया। अतः इस वर्गके साथ न्याय होना चाहिये, इसे इसके श्रमका उचित पारिश्रमिक, पढ़ने-लिखनेकी सुविधा और समाजमें दूसरे वर्गकी बराबरीका पद मिलना चाहिये—इस प्रकारके विचार युवकोंके मनमें उत्पन्न हो गये हैं। अभीतक विद्यार्थी वर्गमें धनिकोंके ही लड़के होते थे पर अब साधारण लोगों और ग़रीबोंके लड़के भी स्कूल-कालेजोंमें पहुँचने लगे हैं, इस कारण विद्यार्थी-वर्गमें साधारण जनताकी स्थितिके विषयमें विचार-जागृति उत्पन्न हुई है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि सभी देशोंके युवक-आन्दोलनमें यह बात प्रमुख रूपसे दिखाई देती है।

श्रमजीवी वर्गके प्रति सहानुभूति

कुछ दिनोंतक विद्यार्थी-वर्गमें समाजके धार्मिक और नैतिक बंधनोंके विरोधकी प्रवृत्ति दिखाई देती थी। इसका कारण यह था कि उच्च-शिक्षाके कारण जिस बुद्धिवादकी वृद्धि हुई, रूढ़ धर्म और नीति उसका संतोष न करा सकी। इससे विद्यार्थी वर्गमें एक समय व्यक्ति-स्वातंत्र्यकी हवा बही। परंतु अर्थ-संकटने उन्हें बता दिया कि इस स्वतंत्रताका परिणाम समाजके लिए कैसा होता है। समाजके साथ कुछ बंधन आवश्यक है। यह बात उनके मनमें बैठ गयी, फलस्वरूप वे स्वतः कुछ बंधन अपने ऊपर लाद लेनेको तैयार हो गये। जर्मनी, रूस, इटली और इंग्लैण्डके युवकोंने अपना अपना संघटन करके अनुशासनका बंधन स्वीकार कर लिया है। सार यह कि युवक-आंदोलन रूपी दिग्दर्शनके यंत्रकी सुई अब समाज-बंधनकी ओर मुड़ती दिखाई दे रही है।

स्वाधीनतासे समाज-बंधनकी ओर

विद्यार्थी-वर्गकी दृष्टि अबतक अपनी पढ़ाई और मौज-चैनसे अधिक आगे नहीं जाती थी। उनके कालेजके बाहर भी कोई दुनियाँ है और उसमें कुछ महत्वकी घटनाएँ घटित हो रही हैं, इसकी खबर उन्हें न थी। पर वर्त्तमान परिस्थितिका धक्का खाकर उन्हें यह अनुभव होने लगा है कि हमें कुछ देरके लिए अपनी निगाह पुस्तकोंसे हटाकर दुनियाँकी और बातोंपर भी डालनी चाहिये। विद्यार्थी अब सामाजिक आंदोलनों और परिवर्त्तनोंकी ओर ध्यान देने लगे हैं और जहाँ संभव होता है वहाँ उनमें प्रत्यक्ष-रूपसे सम्मिलित भी होते हैं। वे संन्यास मार्गसे कर्म-मार्गपर आ गये हैं। कालेजकी चहार-दीवारीको तोड़कर संपूर्ण समाजको उन्होंने अपने अध्ययनका क्षेत्र बना लिया है। समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र, मानसशास्त्र, इतिहास, साहित्य आदि विषयों-का अभ्यास केवल शाब्दिक पद्धतिसे न कर ये शास्त्र जहाँ सजीव-रूपमें विकसित हो रहे हैं वहाँ जाकर इनका अभ्यास करें, यह इच्छा उनके मनमें उत्पन्न होने लगी है।

संन्याससे कर्ममार्ग-की ओर

विद्यार्थियोंको वर्त्तमान आंदोलनमें एक प्रकारकी अध्ययन-वृत्ति दिखाई देती है। किसी तरह हुल्लड़ मचाकर अपने आंदो-लनका विज्ञापन कर लेनेकी प्रवृत्ति अब नहीं रही। इसका एक विशेष कारण है। आज विद्यार्थियोंके सामने जो समस्याएँ और कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, उनका उत्तर; उन्हें अपने शिक्षकों अथवा घरके बड़े बूढ़ोंसे नहीं मिलता। ये उत्तर उन्हें खुद ही ढूँढ़कर निकालने पड़ते हैं। अतः पढ़ो, सोचो, वाद-समिति और अभ्यास-मण्डल बनाकर एकत्र विचार करो और अपने कामोंके लिए कोई सैद्धां-तिक तथा बौद्धिक आधार अवश्य ढूँढ़ निकालो—यह उत्सु-

बौद्धिक आधार

कता युवकोंमें दिखाई दे रही है और इस प्रकार ज्यों ज्यों गहरे विचारकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उनके जीवनका छिछलापन भी मिटता जाता है। लेनिनने एक जगह लिखा है कि "दुनियाँका सारा ज्ञान प्राप्त हुए बिना युवक सच्चा कम्यूनिस्ट नहीं हो सकता"। कह सकते हैं कि इस उक्तिका प्रभाव युवकोंके सारे आंदोलनोंपर हुआ है।

नयी और पुरानी पीढ़ीमें दो प्रकारका सम्बंध दिखाई देता है। कुछ देशोंमें उनमें सनातन विरोध चला आ रहा है तो कुछमें दोनों पीढ़ियोंमें पूरी तरहसे एकमत और एकज्ञान है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस आदिमें नयी पुरानी पीढ़ियोंमें विरोध है, समाजके लक्ष्य और व्यक्तिगत जीवनकी प्रणालीके विषयमें उनका आपसमें मतभेद है। नये-पुराने विचारोंका संघर्ष इन देशोंमें दिखाई देता है। यहाँ युवकोंके नेता युवक ही हैं, प्रौढ़-वर्गने उन्हें अपने निकट लानेका यत्न नहीं किया। परंतु रूस, जर्मनी और इटलीमें इसकी बिलकुल उलटी स्थिति है। वहाँ युवकोंने अपना सर्वस्व पुरानी पीढ़ीके चरणोंमें रख दिया है और उनकी आज्ञा तथा अनुशासनमें रहनेको तैयार हैं। कारण यह कि प्रौढ़वर्गवालोंने उन्हें अपने नज़दीक लानेका यत्न किया है, उन्हें कुछ निश्चित लक्ष्य दिये हैं, उनके सामने व्यवस्थित कार्य-क्रम रखा है और समाजके नवसंघटनमें उन्हें जिम्मेदारीके स्थान दिये हैं। इन तीनों देशोंमें युवकोंका संघटन करके कम्यूनिस्ट, नाज़ी और फासिस्ट दलोंके साथ उनका सम्बंध जोड़ दिया गया है। उद्देश्य यह है कि पुरानी पीढ़ीके बाद युवकवर्ग अपने आप नेतृत्वकी गद्दीपर आकर आसीन हो जाय।

दुनियाँके युवकोंके विषयमें विचार कर चुकने पर स्वभावतः हमारी दृष्टि भारतके युवकोंकी ओर जाती है। पश्चिमी देशों-

के युवक जिन स्थितियोंमेंसे होकर गुज़रे हैं या अब भी गुज़र रहे हैं उन सब स्थितियोंके यहाँ भी सूक्ष्म रूपमें दर्शन हो रहे हैं। युवकोंकी मनोवृत्ति सर्वत्र एकसी ही होनेके कारण आजके वायुमण्डलमें दोनों जगह उनकी मनोवृत्तिमें साम्य दिखाई दे, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। महायुद्धके बादके समृद्धिकालमें अमेरिकाके युवकोंमें जिस मनोवृत्तिका प्रादुर्भाव हुआ था, कह सकते हैं कि आज भारतीय युवकोंमें भी यही मनोवृत्ति थोड़ी बहुत प्रविष्ट हो रही है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका अनुभव प्राप्त करो, दुनियाँके मज़े लो, धर्म-नीति और रूढ़ाचारोंके विषयमें मनमें शङ्का-सन्देह होनेके कारण इनकी उपेक्षा करो, केवल अपनी चिन्ता करो—इस प्रकारकी मनोवृत्ति भारतीय युवकोंमें आज साधारणतः दिखाई देती है।

आजके भारतीय युवक

भारतीय युवकोंके आन्दोलनोंके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे यह दिखाई देता है कि महत्वके अवसरोंपर जब समाजने उन्हें पुकारा है तो अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंको तिलाञ्जलि दे वे उच्च कर्तव्योंका पालन करनेको तैयार हो गये हैं। परन्तु पिछले दो तीन अवसरोंके अनुभवसे उनके मनमें अपने इस स्वार्थ-त्यागके विषयमें शङ्का उत्पन्न हो गयी है। हम कितना ही यत्न करें तो भी कुछ होता नहीं, फिर हम व्यर्थमें उस रास्तेपर क्यों जायँ—इस प्रकारका विचार और उसके साथ सार्वजनिक जीवनके विषयमें निरुत्साह तथा उदासीनताका भाव उनके मनमें उत्पन्न हो गया है।

सार्वजनिक कार्योंमें एकके बाद दूसरी पीढ़ीका जो सिलसिला क़ायम रहना चाहिये, अपने देशमें वह टूटा हुआ सा दिखाई देता है। युवकोंको देश-कार्य करनेवालोंकी संख्या

बढ़ानी चाहिये थी, पर ऐसा हुआ दिखाई नहीं देता। अमेरिका, इंग्लैण्ड और फ्रांसमें प्रौढ़ और युवकवर्गोंमें जो विरोध दिखाई देता है, वही थोड़ी मात्रामें अपने यहाँ भी है। इस स्थितिको किस तरह दूर करें, यह प्रश्न हमारे समाजके सामने उपस्थित है।

युवकोंका मनोविज्ञान

युवकोंकी यह विशेषता है कि उनका स्वभाव भाव-प्रधान होता है। उदार, आकर्षक और भावोंको जगानेवाला लक्ष्य सामने रहे बिना उनमें काम करनेका उत्साह नहीं पैदा होता। उच्च लक्ष्यपर अपनेको न्यौछावर कर देना उनकी महत्वाकांक्षा होती है। उनका मन ऐसा कहता है कि वर्तमान संसारमें जो कुछ विभूतिमत्, श्रीमत् और ऊर्जित है उससे अपनेको एक रस कर दो, मिला दो। इसलिए जिस समाज अथवा व्यक्तिको युवकोंकी श्रद्धा पानेकी इच्छा हो उसे अपने लक्ष्यमें ऐसे तत्वोंका समावेश करना चाहिये जो उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर सके और जिसमें उनकी श्रद्धा हो सके। युवकोंमें शक्ति होती है पर उन्हें रास्ता दिखानेका काम प्रौढ़ पीढ़ीको अपने ऊपर लेना चाहिये।

आज्ञार्थक कार्यक्रम

समाजको चाहिये कि युवकोंके सामने ऐसा कार्यक्रम, जो उनकी शक्तिके बाहर न हो, रखकर उनसे कहें कि "तुम इन कार्योंको करो।" उस कार्यक्रमको राष्ट्रकी स्वीकृति मिलनी चाहिये, और उक्त कार्य अपने ऊपर लेनेके कारण उनका सम्मान करना चाहिये। यही नीति स्वीकार करनेके कारण रूस और जर्मनीके नेता अपने युवकोंसे देशहितके महत्वपूर्ण कार्य करा लेते हैं।

कार्य-कर्ताओंकी अटूट श्रृङ्खला बनी रहे, इस उद्देश्यसे इटली, जर्मनी और रूसने अपने युवकोंका जो सङ्गठन किया है वह अध्य-

यन करनेकी वस्तु है। उससे यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि युवकोंको अपने सम्पर्कमें लेकर उन्हें निश्चित कार्यक्रम देनेसे उनके हाथों महत्वपूर्ण कार्य होते और कार्य-कर्ताओंका अटूट सिलसिला बना रहता है, साथ ही कार्य और लक्ष्यमें मेल भी बना रहता है।

युवकवर्ग एक शक्ति है। वह कोई स्वतन्त्र सिद्धान्त अथवा लक्ष्यनिर्माण नहीं कर सकता, पर कोई ऐसा आदमी मिल जानेपर, जो उसे ऐसा सिद्धान्त अथवा लक्ष्य दे सके, वह सम्पूर्ण भावसे उसका अनुगमन करनेको तैयार रहता है। अपने देशके युवकोंका आज यदि समाजको उपयोग नहीं हो रहा है तो उसमें दोष युवकोंका नहीं है, किन्तु उनकी मनोवृत्तिको पहचान कर उनके सामने आकर्षक निश्चय तथा व्यावहारिक कार्यक्रम न रखनेवाले प्रौढ़वर्गका है। आत्मीयता दिखाकर आप युवकोंसे चाहे जो बन्धन स्वीकार करा लीजिये और वे देशके लिए उपयोगी कार्य करते हुए कार्यकर्ताओं तथा नेताओं-की शृङ्खलाको कभी टूटने न देंगे। अपने यहाँके और पाश्चात्य देशोंके युवकोंका इतिहास हमें यही बताता है।

पैंतीसवाँ अध्याय

रहन-सहनका दरजा और विचारोंकी उच्चता

महाराज जनकके विषयमें यह कथा है कि उनके एक पैरमें सुन्दरी स्त्रियाँ सुकोमल हाथोंसे मक्खन मलती हों और दूसरा पैर दहकते अङ्गारोंपर रख दिया जाय तो उन्हें दोनोंका सुख-

दुःख एकसा ही मालूम होता था। निष्काम और संन्यस्त वृत्तिसे वैभवका भोग करते हुए उससे अलिप्त रहनेवाले राजर्षियों और पुण्यपुरुषोंके उदाहरणोंकी हमारे इतिहासमें कमी नहीं है। अर्थात् अपने यहाँ भी एक समय ऐसा था जब ऊँची रहन-सहन और ऊँचे विचारोंमें विरोध नहीं माना जाता था।

जनकका "स्टैंडर्ड आव लाइफ"

पाश्चात्य देशोंके धनिक लोगोंकी रहन-सहन देखनेसे मनमें यह प्रश्न उठता है कि अपने देशमें इस बातका आना इष्ट होगा या अनिष्ट। वैज्ञानिक खोजोंके साथ साथ यान्त्रिक प्रगति होती है, यान्त्रिक प्रगतिके साथ उद्योग-धन्धोंकी उन्नति होती है, उद्योग-धन्धोंके बढ़नेसे प्रचुर परिमाणमें वस्तुओंका निर्माण होने लगता है, चीज-वस्तु सस्ती होनेसे उनका व्यवहार ग़रीबोंके लिए भी सुलभ हो जाता है और साधारण लोगोंकी रहन-सहन ऊँची हो जाती है। पश्चिमी देशोंमें कितनी मन्दी और बेकारी क्यों न हो, पर वहाँके साधारण व्यक्तिकी रहन-सहन अपने देशके धनी कहानेवालोंसे भी ऊँचे दरजेकी होती है। पर यह तुलना केवल ऐहिक दृष्टिसे की जानी चाहिये।

उपर्युक्त कार्य-कारण-मीमांसाको ठीक मान लें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतमें यान्त्रिक उन्नति होनेसे—कल-कारखानोंके बढ़नेसे—साधारण लोगोंकी रहन-सहन आजकी अपेक्षा ऊँची हो जायगी। पर प्रश्न यह उठता है कि वैसा होनेसे क्या हम लोग जड़वादी तथा केवल सुखवादी हो जायँगे? ऐसा होना हो तो फिर आजसे ही इस नयी सभ्यताका विरोध होना चाहिये। पर दूसरी ओर यदि ऊँची रहन-सहन और अध्यात्म वृत्तिका विरोध न हो तो जनसाधारणकी रहन-सहन सुधारनेके लिए

क्या हम जड़वादी हो जायँ?

उन्हें अधिक अच्छा खाना, कपड़ा, मकान मिले, इसके लिए उद्योग होना चाहिये।

यहाँ इतनी दूरसे बैठे बैठे जो हम यह कल्पना कर लेते हैं कि पाश्चात्य देशोंके सभी सुखी सम्पन्न लोग जड़वादी, स्वार्थी और सुखलोलुप होंगे, यह ग़लत है। उन देशोंके प्रत्येक वर्गमें आपको ऐसे लोग मिलेंगे जो चरित्र, उच्च दार्शनिक वृत्ति, स्वार्थ-त्याग, समाजसेवा और अध्यात्मवृत्तिकी दृष्टिसे अपने देशके इस प्रकारके लोगोंकी बराबरीके ठहरेंगे। ऐहिक ऐश्वर्य उनके चरित्रोत्कर्षमें बाधक नहीं हुआ।

तीन मनोवृत्तियाँ

सुखकी खोज मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। तत्वज्ञानसे उसका नियन्त्रण किया जाता है, फिर भी बीच बीचमें चार्वाक सरीखे जड़वादी विद्रोह करके कह उठते ही हैं कि—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

यह सुखवाद जैसे एक ओर अति सीमापर पहुँच गया, वैसे ही त्यागवादने दूसरी सीमापर जाकर यह निर्णय किया कि "निवृत्तिस्तु महाफला" सुखका त्याग करनेमें ही विशेषता है, भोग तो पशु और मनुष्यका सामान्य धर्म है। इन दोनोंके बीचसे रास्ता निकालनेवाला एक तीसरा पन्थ निकला कि वैभव और सुखका ऊपरसे उपभोग करते रहो पर मनको अनासक्त रखो। ये तीनों प्रकारके दार्शनिक विचार यद्यपि हमारे देशमें प्रचलित हैं, फिर भी इनमेंसे त्यागके सिद्धान्तका प्रभाव जितना हमारे मनपर हुआ उतना अन्य दोनों सिद्धान्तोंका नहीं हुआ। इस कारण पश्चिमवालोंके आदर्शवादसे हमने अपनी रुचिके आदर्श ही ग्रहण किये। 'सादी रहन-सहन और ऊँचे विचार

रखना' मानो इस उक्तिपर भाष्य रूपमें ही भर्तृहरिने भी "शैय्या भूमितलं दिशोपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्" लिख रखा है। इस मनोवृत्तिका परिणाम यह हुआ कि हमने जीवनकी ओरसे पीठ फेर ली। ऐहिक वैभवकी बात हमें अप्रिय थी। हम उसकी ओरसे उदासीन थे, इसीसे तो पश्चिमवालोंने आकर हमारा बोझ हलका कर दिया!

इस विषयमें पश्चिमवालोंसे हम यह सीख सकते हैं कि ऊँची रहन-सहन और ऊँचे विचार परस्पर विरोधी नहीं हैं। ये दोनों जिस तरह अलग अलग सुखसे रह सकते हैं वैसे ही एक साथ भी रह सकते हैं। आज दुनियाँमें "भौतिक उन्नति अथवा आध्यात्मिक उन्नति?" की बहस नहीं रही, सबका निर्णय यही है कि इन दोनोंका समन्वय होना चाहिये।

जीवनकी दृष्टिसे देखनेपर ऐसा दिखाई देता है कि आज सभी देशोंमें लोगोंकी रहन-सहनको ऊँची बनानेका उद्योग चल रहा है। इस आन्दोलनका सुपरिणाम साधारण जनताके जीवनपर होगा, यह बात ध्यानमें रखनेकी है। कारण यह कि समाजमें ऐसी स्थिति है कि हम जिसे 'सादी रहन-सहन' समझते हैं, समाजके ९० प्रतिशत आदमियोंके लिए वह भी सुलभ नहीं है। मध्यम वर्गके लिए जो सादी रहन-सहन है, साधारण जनोंके लिए वही ऊँची रहन-सहन है। मध्यम और धनिक श्रेणीके लोग सादी रहन-सहनका समर्थन किया करते हैं। अपने निजके आचरणसे वे साधारण लोगोंके सामने सरल जीवनका उदाहरण रखें तो जनताका जीवनक्रम बहुत कुछ सुधर जाय। इस दृष्टिसे विचार करने पर यह दिखाई देगा कि हमारे देशके जनसाधारणकी रहन-सहनको ऊँचा बनानेका संकल्पपूर्वक यत्न होना चाहिये।

जनसाधारणकी रहन-सहन

धनोत्पादन और रहन-सहनमें अन्योन्य सम्बंध है। जबतक कोई देश दूसरे देशके कारखानों और उद्योग-धंधोंपर अवलंबित है, जबतक जीवनकी आवश्यक वस्तुएँ देशमें ही उत्पन्न नहीं होतीं, तबतक जनसाधारणकी रहन-सहन सुधर नहीं सकती। उद्योगकी प्रवृत्ति बढ़े बिना औद्योगिक उन्नति हो नहीं सकती। आजकी अपेक्षा हमें और अच्छी तरह रहना चाहिये, जीवनमें हमें फलां दरजेकी रहन-सहन प्राप्त करनी चाहिये, मनमें यह भाव हुए बिना जनताकी ओरसे उत्साहपूर्वक उद्योग नहीं हो सकता। आज अपने देशकी जनतामें जो शिथिलता और उदासीनता दिखाई देती है, उसका कारण यही है कि उद्योगवादको प्रेरणा देनेवाली, पुरुषार्थको जगानेवाली, वस्तुका अभाव है। दुनियाँमें हमें अमुक वस्तु प्राप्त करनी है, यह निश्चयात्मक भाव मनमें हुए बिना मानव प्रयत्नको उत्तेजन नहीं मिलता। ऐहिक पुरुषार्थ-की प्रेरणा समाजसे लुप्त हो गयी है, उसके वापस आये बिना स्थिति सुधरनेवाली नहीं।

उद्योगवादके लिए प्रेरणाका अभाव

ऊँची रहन-सहनके विषयमें पश्चिमवालोंके आदर्शको सामने रखते समय हमें उसमें एक सुधार कर लेना चाहिये। वह यह है कि ऐहिक दृष्टिके साथ जनताको आध्यात्मिक और तात्विक दृष्टि भी दी जाय। नहीं तो जिस सुखके लिए इस ऊँची रहन-सहनकी आवश्यकता है वह सुख व्यक्तिको कभी मिलनेका नहीं, कारण यह कि 'उच्च' का कहीं अंत नहीं, कोई सीमा नहीं। हम किसी भी सीढ़ीपर क्यों न पहुँच जायँ, उससे ऊपर कोई सीढ़ी रह ही जायगी। हमसे अधिक धनी, अधिक सुखी, अधिक अच्छे मकानमें रहनेवाला, अधिक अच्छी मोटरमें घूमनेवाला कोई न कोई रहेगा ही। अतः केवल ऊँची रहन-सहनपर ज़ोर

देनेसे मनको कभी सुख-संतोष मिलनेका नहीं और यही स्थिति आज यूरोप अमेरिकावालोंकी हो रही है। दुनियाँमें सांसारिक दृष्टिसे जो कुछ उच्च है वह उन्हें प्राप्त है, फिर भी मनको जो सुख और संतोष होना चाहिये वह नहीं है। पश्चिमवालोंके इस अनुभव और अपने इतिहाससे हमें दो महत्वकी शिक्षाएँ ग्रहण करनी हैं। हमें अपनी एकांगी त्यागवृत्ति छोड़कर पाश्चात्योंकी भोगवृत्ति ग्रहण करनी चाहिये पर इस भोगवृत्तिको आध्यात्मिक विचारोंके नियंत्रणमें रखना चाहिये। दुनियाँमें आकर हमें पुरुषार्थ करना है, ऊँचे प्रकारसे जीवन-यापन करना है, ऊँची रहन-सहन प्राप्त करनी है—ये भाव समाजके वातावरणमें रहने चाहिये। वैदिककालमें आर्योंमें ऐहिक जीवनके प्रति जो उत्साह और जो प्रयत्नवाद था उसका समाजमें पुनः निर्माण होना चाहिये, और इस प्रयत्नवाद तथा फल-प्राप्तिकी सीमा कहाँ है यह जाननेके लिए उच्च तत्वज्ञानको अवगत करना चाहिये। ऐसी आध्यात्मिक भूमिकापर स्थित रहकर हम पश्चिमवालोंके सांसारिक जीवन और ऊँची रहन-सहनकी कल्पनाको ग्रहण कर लें, तो मानो हम उनसे भी कुछ अधिक कर दिखावेंगे। ऐहिक दृष्टिसे हम उनके बराबर हो जायँगे और मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे उनसे चार अंगुल ऊँचे ही रहेंगे।

छत्तीसवाँ अध्याय

धर्मका भविष्य

अमेरिकावालोंकी कितनी ही मिशनरी संस्थाएँ एशिया

खण्डमें हैं। उनपर सालाना वे लाखों डालर खर्च करते हैं।

चर्च विषयक अनुभव

हर एक गिरजेमें रविवारकी साप्ताहिक प्रार्थनाके अनन्तर विदेशोंमें धर्म-प्रचारके लिए चन्दा किया जाता है और लोग बड़ी श्रद्धाके साथ धन देते हैं। न्यूयार्कके एक गिरजेमें मैं एक बार व्याख्यानके लिए बुलाया गया। संयोगवश उसी दिन चर्च-कमेटीकी बैठक भी थी जिसके सब सदस्य बूढ़े स्त्री-पुरुष थे। सामाजिक और राजनीतिक स्थितिपर भाषण होनेके बाद श्रोताओंको प्रश्न करनेका समय दिया गया। एक श्रोता भारतके ईसाई मिशनोंके विषयमें पूछ बैठा। "आपने पूछा है इसलिए कहना पड़ रहा है" की प्रस्तावनाके साथ मैंने कहा कि ईसाई मिशनरी शिक्षा और स्वास्थ्य-रक्षाके विषयमें जो कुछ कर रहे हैं उसके लिए भारतीयोंके मनमें आदर है, पर उनका धर्म-प्रचार हमें पसन्द नहीं। यह उत्तर उपस्थित वृद्ध स्त्री-पुरुषोंको नहीं रुचा और उन्होंने अपने पक्षका समर्थन किया। मुझसे पूछा गया—"फिर आप अपने समाजके हीन, अस्पृश्य और पिछड़े हुए लोगोंमें शिक्षा और स्वास्थ्य-ज्ञानका प्रचार क्यों नहीं करते?" मैंने आर्यसमाजका नाम लिया। सभा समाप्त होनेपर वहाँके एक नवयुवक सेक्रेटरीसे मैंने कहा—"जान पड़ता है मेरी बात सुनकर आपकी कमेटीवालोंके दिलको चोट लगी।" उसने जवाब दिया—"उन्हें ऐसे ही थप्पड़ मिलने चाहिये।" वहाँ उपस्थित युवकोंमें यह भिन्न मनोवृत्ति देखनेमें आयी। इस छोटी-सी घटनासे हम इसका अनुमान कर सकते हैं कि धर्मके विषयमें अमेरिकाकी नयी पीढ़ीकी नीति क्या होगी।

हमारे मिशन विदेशोंमें क्या काम कर रहे हैं और भविष्यमें उसका क्या परिणाम होगा, इसकी जाँचके लिए अमेरिकाके

नेताओंने एक कमीशन नियुक्त किया था जिसका नाम था "लेमेन्स कमीशन"। इस कमीशनने जो रिपोर्ट पेश की उसका खुलासा यह था कि 'अमेरिकन मिशनरी' आगेसे धर्म-प्रचारके झगड़ेमें न पड़कर केवल शिक्षा और आरोग्य सम्बन्धी अर्थात् केवल सामाजिक कार्य करें और इन कामोंका नेतृत्व भी जहाँतक सम्भव हो स्थानीय लोगोंको ही दिया करें। इस रिपोर्टपर बड़ा आन्दोलन उठा और चर्चमें नये और पुराने विचारवाले दो दलोंका अस्तित्व स्पष्टतः दिखाई दिया। इस तिनकेसे हम हवाके रुखका अन्दाज़ा लगा सकते हैं।

मिशनोंकी नयी नीति

धर्मोंका इतिहास ऐसा है कि कोई भी दो धर्म आजतक विशेष मैत्रीके साथ एकत्र नहीं रहे। प्रत्येकमें दूसरेपर आक्रमण करनेकी प्रवृत्ति रही है। किसीने शांतिके मार्गसे यह काम किया तो किसीने तलवारका सहारा लेकर। ऊपर ऊपरसे देखनेसे ऐसा जान पड़ेगा कि धर्मों वा सम्प्रदायोंकी यह परस्पर लड़नेकी प्रवृत्ति आज भी नष्ट नहीं हुई है। परन्तु आज वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्येक धर्मका पुराण-पन्थी वर्ग जब एक दूसरेसे लड़ने-झगड़नेमें लगा हुआ है, दुनियामें जड़वादियों, निरीश्वरवादियों, नास्तिकोंका एक तीसरा दल ऐसा निर्माण हो रहा है जो सभी धर्मोंका अन्त कर देनेवाला है। पुराने धर्मोंने आपसमें लड़ने और दक़ियानूसी विचारोंसे लिपटे रहकर जनसमाजके मानसिक विकासमें बाधक होनेकी अपनी आदत न छोड़ी तो यह नया पन्थ सभी धर्मोंका सफ़ाया कर देगा और उनके नामपर कोई आँसू बहानेवाला भी न मिलेगा। इस अन्तसे बचना हो तो सब धर्मोंको आत्म-निरीक्षण करके आत्म-शुद्धिमें लग जाना चाहिये।

सभी धर्मोंपर मारकेश

आज सभी देशोंका युवावर्ग समाजवादकी ओर झुक रहा है। रूसके उदाहरणसे ऐसा दिखाई दे सकता है कि समाजवाद और निरीश्वरवाद दोनोंको एक साथ ही स्वीकार करना होगा, दोनों अविभाज्य और एक रूप हैं। समाजवादके आदि संस्थापक और पोषक रूसवालोंने अपने देशमें एक साथ सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्रान्तियाँ करके समाजवादके साथ साथ निरीश्वरवादकी चढ़ाई भी शुरू कर रखी है। पर रूसके ऐसा करनेसे यह सिद्ध नहीं होता कि समाजवादके साथ साथ जड़वादको स्वीकार करना अनिवार्य है। अमेरिका और यूरोपमें क्रिश्चियन सोशलिस्टोंकी संख्या दिन-दिन बढ़ती जारही है और वह इस बातका प्रमाण है कि अध्यात्म दृष्टिको त्याग न करते हुए भी समाजवादका ग्रहण सम्भव है।

समाजवादियोंका जड़वाद

धर्म-नेता यदि चाहते हों कि समाजवादको स्वीकार करनेवाला युवकवर्ग निरीश्वरवादी और जड़वादी न हो तो उन्हें चाहिये कि अपनी धर्म रूपी इमारतकी अच्छी तरह मरम्मत कर डालें, जिन जिन बातोंसे आधुनिक अन्तःकरणकी धर्मश्रद्धा घट रही है उनका सुधार करें। धर्मकी ऐसी नयी व्याख्या करें जो नये समाजशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान और भौतिक-विज्ञानसे मेल खाती हो। धर्मको अब ऐसा रूप मिलना चाहिये जिसमें बुद्धिप्रधान, समीक्षक और आधुनिक विज्ञानकी जानकारी रखनेवाले अन्तःकरणोंका भी समाधान हो सके।

धर्ममें सुधारकी आवश्यकता

धर्मके दो रूप हैं। एक है सामाजिक आधार और रूढ़ियाँ। यह रूप प्रत्येक कालमें बदलनेवाला, परिवर्त्तनीय और प्रगतिशील है। दूसरा रूप है तत्त्वज्ञान और आध्यात्मिक-विचार। यह

पहले अर्थात् सामाजिक रूपकी तुलनामें स्थिर और सार्वकालिक है। धर्मका 'सनातन' विशेषण इसी दूसरे रूपपर घटित होता है, पहलेपर नहीं होता। इन दोनों रूपोंके परस्पर मिल जुल जानेसे एकके दोष दूसरेपर लादे जाते हैं। सामाजिक धर्मके अग्राह्य होनेके कारण तत्व-ज्ञान और अध्यात्म विचारको भी अग्राह्य माननेकी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। दूसरी ओर पुराणपन्थी समुदाय यह मान बैठा है कि अध्यात्मतत्व शाश्वत और सनातन है इसलिए आचार अथवा बाह्य धर्म भी सनातन है। अतः धर्मके इन दोनों रूपोंमें भेद मानकर हमें ऐसी नीति स्वीकार करनी चाहिये जिसमें उसका सामाजिक रूप परिवर्त्तनशील और प्रवाही रहे और आध्यात्मिक तथा तत्वज्ञानवाला रूप उसकी अपेक्षा स्थिर, शाश्वत किन्तु सतत विकासशील रहे।

धर्मके सनातन और परिवर्तनीय रूप

तत्काल सभी देशोंके युवकवर्गोंकी मनोवृत्तिकी ओर देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि धर्मका प्रभाव उनपरसे दिन-दिन घटता जा रहा है। यही स्थिति भारतवर्षमें भी दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि धर्मकी दृष्टिसे विचार करते समय हम अपनेको हजार दो हजार साल पूर्व निर्मित विचारोंके वातावरणमें पाते हैं, और उससे बाहर निकलनेके साथ २०वीं शताब्दीके भौतिक विज्ञान, समाज-शास्त्र और मानस-शास्त्रके वातावरणमें आ जाते हैं। इन दोनों वातावरणोंका पूरा-पूरा विरोध दिखाई देता है। एकमें श्रद्धा और अन्धानुसरण-वृत्तिकी प्रधानता है तथा स्वतन्त्र विचारके लिए अवकाश नहीं, तो दूसरेमें बुद्धिवाद परीक्षा-समीक्षाकी वृत्ति और प्रत्यक्ष अनुभवका प्राधान्य है और बुद्धि उसमें अधिक जीती-जागती रह सकती है। बुद्धिका प्राधान्य स्वीकार करनेमें धर्म ज्ञानके अन्य विभागोंके बराबर

आगे नहीं बढ़ सका, इसीसे आजके समयमें धर्मके प्राचीन रूपसे विचारशील व्यक्तियोंका समाधान नहीं होता।

धर्म-श्रद्धाके ह्रासका एक विशेष कारण यह भी है कि धर्म-रक्षाका भार जिन लोगोंको सौंपा गया, उनका अपना आचरण आक्षेपसे परे नहीं रह सका। रूसमें जिस तरह ईसाई धर्म-रक्षकोंने चर्चकी सहायतासे धन और अधिकार दोनों हथिया लिये थे, वही बात अन्य सब धर्मोंमें भी हुई है। प्राचीन धर्म और धर्म-रक्षक बने हुए लोगोंका स्वार्थ, इन दोनोंका गठबन्धन हुआ देखकर युवक-वर्ग सोचने लगा है कि हमें दोनोंकी ही ज़रूरत नहीं।

पाश्चात्य देशों और भारतमें भी धर्मकी वर्त्तमान स्थितिको देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि धर्मभावको हमें फिरसे जीती-जागती वस्तु बनाना हो तो हमें धर्मकी ओर देखनेकी अपनी दृष्टि बदलनी होगी।

धर्म-विषयक नयी दृष्टि

जब भिन्न भिन्न भूखण्डोंमें बसे हुए मानव-समुदायोंका आपसमें मिलना-जुलना, यातायात मर्यादित था, उस समय विभिन्न स्थानोंमें जिन अध्यात्म-विचारोंकी सृष्टि हुई उन्हींको धर्मकी संज्ञा दी गयी। आज दुनियाँके भौतिक-विज्ञानके पंडित परस्पर सहयोगका भाव रखकर सम्पूर्ण शास्त्र-विज्ञानको एक मान रहे हैं। प्राचीन कालवालोंके लिए यह भाव और दृष्टि रखनेकी सुविधा न थी पर आज हमारे लिए वैसी दृष्टि रखना संभव है। सब धर्मोंके मूलभूत आध्यात्मिक सिद्धांतों और तत्व-विचारको एक मानकर शास्त्रकी दृष्टिसे उनकी उन्नति तथा वृद्धिका यत्न सबको करना चाहिये।

भौतिक शास्त्रोंमें पहलेके विद्वान् जिन सिद्धांतोंको स्थायी

कहकर प्रतिपादित कर गये हैं, भावी विज्ञान-पंडित अपनी खोजसे उन्हें बदल सकते हैं अथवा नये सिद्धांत भी ढूँढ़ निकाल सकते हैं। यही प्रवृत्ति अध्यात्मशास्त्रके विषयमें भी रखनी चाहिये। आजसे दो हजार साल पहले हिन्दू, यहूदी, ईसाई और मुसलमान दार्शनिकोंने जिन सिद्धांतोंका अन्वेषण और प्रतिपादन किया वे त्रिकालाबाधित हैं। उसके बादके दो हजार वर्षोंमें जिस नये ज्ञान-विज्ञानकी वृद्धि हुई है उससे परिचित होते हुए भी हम धर्म-सिद्धांतोंमें कोई परिवर्त्तन-परिवर्द्धन नहीं कर सकते, यह वृत्ति हमें छोड़ देनी चाहिये। पुराने सिद्धांतोंकी परीक्षा कर हमें देखना चाहिये कि उनमें क्या खरा है और क्या खोटा; और यह दृष्टि रखनी चाहिये कि अपने विचार और अनुभवसे हम नये धर्म-सिद्धांतोंका निर्माण कर सकते हैं। धर्मके सभी अंतिम तत्त्वोंका अन्वेषण हो चुका हो, सो बात नहीं है। हमारे लिए भी धर्म-तत्त्वोंकी खोज करनेका अवसर है, युवकोंको ऐसा सोचना चाहिये। जो अन्वेषणवृत्ति और उत्साह हमारे धर्म-संस्थापक प्राचीन ऋषियोंमें था वही हममें भी है, यह अध्यात्म-विश्वास जब वर्त्तमान पीढ़ीमें उत्पन्न होगा, तभी धर्मका स्वरूप विकासशील रह सकेगा।

वर्त्तमान युगकी यह विशेषता है कि इसमें साधारण जनसमाजको प्राधान्य दिया गया है। व्यक्ति-निष्ठाका काल चला गया। समाजनिष्ठाका आया है। ईसाई धर्मके नेताओंने इस बातको समझ लिया और अपने धर्मान्दोलनकी बाग जनसाधारणकी स्थिति सुधारनेकी ओर मोड़ दी। यह नयी सामाजिक दृष्टि स्वीकार कर लेनेके कारण उन्हें नयी पीढ़ियोंका समर्थन मिलता गया। यांत्रिक युगके कारण श्रमजीवी वर्गपर आयी हुई विपत्तिके

समाजनिष्ठ धर्मकी आवश्यकता

निवारणके उद्देश्यसे पाश्चात्य देशोंमें ईसाई धर्म-संस्थाएँ प्रशंसनीय उद्योग कर रही हैं। जनसाधारणकी दृष्टिसे ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा होनेवाले कार्योंकी कुछ कल्पना अपने देशमें आर्यसमाजके कार्योंसे की जा सकती है। वैयक्तिक मुक्तिका मार्ग बतानेवाले हिन्दू धर्मको अब समाजके कल्याणकी दृष्टि स्वीकार करनी चाहिये। वैयक्तिक मुक्ति और सामाजिक मुक्ति इन दोनों लक्ष्योंका समन्वय कर सकने पर ही नये भाववाले युवक धर्मके झंडेके नीचे जमा हो सकेंगे। अन्यथा, पुरानी पीढ़ीवालोंको समझ लेना चाहिये कि वृद्धोंके मुक्ति-लाभके अनन्तर हिन्दू-धर्म और तत्त्वज्ञानकी परम्परा आगे चलाते रहनेके लिए नयी पीढ़ीमें कोई न मिल सकेगा।

सारांश, कितने ही धर्मोंने अभीतक अपनी पुराणपंथी दृष्टिको नहीं छोड़ा है। वे आपसमें लड़ने-झगड़नेमें लगे हुए हैं और उधर उनका संहार करनेवाले जड़वाद, निरीश्वरवादका उनपर आक्रमण हो रहा है। धर्मने यदि नयी दृष्टि स्वीकार कर वर्त्तमान युगसे मेल खानेवाली नीतिका अवलंबन किया, तभी वह नयी पीढ़ीका सहारा पानेकी आशा रख सकता है। उसे यदि विकासशील और प्रवाही रूप प्राप्त हुआ तभी वह जीयेगा, नहीं तो चल बसेगा।